कविता अति उत्तम है. यामें सर्व मिलिके अष्ट विश्राम किये हैं.
संपूर्ण ग्रंथके प्रत्येक दोहाका गुजराती भाषामें अर्थ किया है.

गुजराती लीपीमें अर्थसहित किमत रू० ।

बालबोध लीपीमें मूल; औ गुजराती लीपीमें अर्थ;

किंमत आने ३.

श्री

सर्व सार उपदेश.

साधु श्री अनाथजी कृत.

यह ग्रंथ हिंदुस्थानी भाषामें पद्यात्मक (दोहाबद्ध) है. इसकी रचना संस्कृत भाषाके "प्रबोधचंद्रोदय" नामक नाटकके अनुसार हुई है. तामें मोह औ विवेककूं नायक किये हैं, औ शुभाशुभ सब मनोविकारनकूं और पात्र किये हैं; तातें अति सुंदर भया है.

यह ग्रंथ बिसनजी चतुर्भुजने यथामति शुद्ध करिके छपाया है. मूल किमत रू० १ लिखी है परंतु अब रंगित कपडेके पूठे साथ.

किमत रू० ॥=

श्री

गुजराती पद संग्रह.

प्रथम खंड.

इस पुस्तकमें वेदांतपर अनेक पदनका संग्रह किया है, सो गावने योग्य होनेतें अति रस उत्पादक हैं; औ तिनतें अद्वैत वस्तुका बोध भी होवै है; तातें अति उपयोगी है. यामें सब मिलिके २९ कविनकी कविता है; ७१ पद हैं.

किमत रू० ।

ऊपर लिखे हुवे ग्रंथ नीचे लिखे हुवे
ठिकानेपर मिलेंगे.

ग्रंथनपर लिखी किमतमें.

श्री मुंबईमें, खोजा शरीफ सालेमहमद.
श्री मुंबईमें निर्णयसागर प्रेस.

नीचे लिखी किमतमें.

श्री कानपुरमें, मारवाडी रामचंद्र केदारनाथ.
श्री (काठियावाड) महुवामें, खोजा कानजी भगा.
श्री भावनगरमें, खोजा अलादिन देवजीभाई.
श्री कच्छ मांडवीमें, खोजा मामद इब्राम.
श्री दिल्हिमें, मारवाडी रामभगत देवकरनदास.
श्री कलकत्तामें, खोजा मनजी नथ्थु.
श्री अमदाबादमें, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी.
श्री कराचीमें, खोजा सालेमहमद गुलामहुसेन.

किमत.

श्री विचार सागर कि० .... रु० १–१५–०
श्री योगवासिष्ठके वैराग्य
 औ मुमुक्षु प्रकरण कि० .... रु० ०–१३–६
श्री विचारमाल अर्थसहित,
 गुजराति लीपीमें कि० .... रु० ०–५–०
 बालबोध लीपीमें मूल,
 औ गुजरातिमें अर्थ कि० .... रु० ०–२–०
श्री सर्वसारउपदेस कि० .... रु० ०–११–०
श्री गुजराती पदसंग्रह कि० .... रु० ०–४–०

श्री सुंदर विलास.

साधु श्रीसुंदरदासकृत.

यह ग्रंथ हिंदुस्थानी भाषामें पद्यात्मक है; पुरातन औ अति प्रख्यात है. याकी कविता अति सुरस है. यह ग्रंथ देवनागरी (बालबोध) लीपीमें बहुत ठौर छपा है, परंतु सो अति अशुद्ध औ. पदच्छेद रहित छपे हैं; तातें पढनेवालेकूं अति श्रम होवै है, सो निवारण करनेके वास्ते विभक्त्यंत पदच्छेद करिकें औ प्रत्येक चरणकी भिन्न पंक्ति करिके तिसी लीपीके टाइपके अक्षरोंमें छपानेका आरंभ किया है. जहां जहां कठिन शब्द आवै है, तहां तहां ताका अर्थ लिख्या जावै है. अछी तरहसें शुद्ध करिकें इसं अक्षरमें छपा जावै है; तातें सब मुमुक्षुकूं अति उपयोगी होवैगा.

इस ग्रंथके ३४ अंग हैं; तिनमें विपर्जय अंग अति कठिण हैं; सो क्रमपूर्वक टीकासहित छपां जावैगा.

इस ग्रंथमें मुमुक्षुनकूं और ग्रंथके बोधार्थ श्री अष्टावक्र नामक संस्कृत ग्रंथके (श्रीधर पंडितकृत हिंदुस्थानी पद्यात्मक) भाषांतरका प्रत्येक पृष्ठपर एक एक दोहा छपा जावै है; सो केवल अद्वैतपर होनेतें यह पुस्तक अति उपयोगी होवैगा.

साधु श्री निश्चलदासजी कृत.

दो अनुक्रमणिका औ मंगलकी टीका सहित,

सर्व मुमुक्षुके हितार्थ,

शरीफ सालेमहंमदने,

छपाईके प्रगट कीया.

दोहा

"ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी बानी वेद;
भाषा अथवा संसकृत, करत भेद भ्रम छेद. १०"

(वि. सा. तृ. त.)

मुंबईमध्ये

"न्याशनल" छापखानेमें छपा.

विक्रम संवत १९३०——इंग्रेजी सन् १८७४

किंमत रु० १॥।

अर्पण पत्र

श्री[1]युत श्री[2]मय श्री[3]श सम, श्री[4]पतिको निजरूप;
अ[5]कल अखंड अकाम अ[6]ज, गुरुवर परम अनूप. १

पीनै[7] म[8]नीषा लक्ष[9]में, दक्ष[10] बाँधकी रीति;
नमन करत प्रत्यक्ष मैं, अक्षय करहु सुप्रीति. २

ता[11]न सदा निर्वा[12]नको, मान अमान विहीन;
ज्ञानवान गुरु चरनमें, रहूं सदा अति दीन. ३

बहुत युक्तिसूं बोध किय, जानि बद्ध जग मोहि;
तातें नित बलिहारि व्है, नमन करतहूं तोहि. ४

रहत सदा आनंदमें, भावा भाव न रंच;
तिनकी करुनातें भयो, यह उ[13]त्कृष्ट प्रपंच. ५

गुन अगिनित शुभ जाहिमें, देखि भली विध ताहि ;
अर्पन करत सप्रेम यह, ग्रंथ रम्य जग मांहि. ६

रुचत सदा मनमाहि सो, जो दैशिकवर आहि;
रहौ हृदयमें रयन दिन, क्षण इक छांडहु नाहि. ७

शा० सा०

---

१ ब्रह्मविद्यावान्. २ सुद्ध संवितरूप. ३ ईश्वर समान. ४ विष्णु. ५ सप्तदस कला रहित. ६ अजन्मा. ७ पुष्ट. ८ बुद्धि. ९ ब्रह्मात्मा-की एकतामे. १० चतुर. ११ ध्यान. १२ मोक्षस्वरूप ब्रह्म. १३ श्री विचार सागर.

श्री परमात्मनेनमः

प्रस्तावना.

प्रानिमात्र केवल सुषकूं चाहै हैं; औ दुषकी अत्यंत निवृत्तिकूं इच्छे हैं; परंतु ऐसी सर्वकी इच्छा पूर्न नहीं होवै है. अनेक पुरुष सुषके निमित्त, धन, पुत्र, स्त्री, आदिक पदार्थनकी प्राप्तिका, प्रयत्न करैं हैं; औ दुषकी निवृत्ति अर्थ, दान, तप, योग, औषध, मंत्र आदिकका आश्रय लेवै हैं; परंतु दीनके दीनहीं रहै हैं. काहेतें, सुष प्राप्ति औ दुष निवृत्तिके हेतु, उक्त पदार्थ नहीं हैं. तिन पदार्थों करिके उलटी दुषकी प्राप्ति औ सुषकी न्यूनता होवै है. जैसे कोइ पुरुष अफीम मदिरादिकके अधिक अधिक ग्रहन करि सुष मानै हैं; परंतु तिनकरि दुषकूंही अनुभव करिके मरै हैं. तैसे, जो जो पुरुष सुष प्राप्ति औ दुष निवृत्ति अर्थ, देह आसक्ति करि जगतके तुच्छ पदार्थरूप मदिरादिक व्यसनका आश्रय करैं हैं; सो दुषकूं अनुभव करीके जन्मैं हैं; औ मरै हैं.

केवल सुषकी प्राप्ति औ दुषकी अत्यंत निवृत्ति अर्थ, पुरुष, विचित्र पंथ औ तिनके आचार्यनका आश्रय लेवैं हैं; तिस करि बी तिनोकी इच्छा पूर्न नहीं होवै है; किंतु वृथा कष्टकूंही अनुभव करै हैं.

केवल सुषकी प्राप्ति औ दुषकी अत्यंत निवृत्ति अर्थ, केइ न्यायादि अनेक पांडित्य मतकूं आश्रय करैं हैं; तथापि तिनो करि बी पुरुषनकी इच्छा पूर्न नहीं होवै है. यातें,

केवल सुषकी प्राप्ति औ दुषकी अत्यंत निवृत्ति अर्थ, आत्म

ज्ञान (आपका ज्ञान) ही उपयोगी है ; अन्य नहीं. जैसे, मृग अपनी कस्तूरीकी सुगंधका अनुभव करिके, और ठौर कस्तूरी ढूंढै है ; औ दुषकूं अनुभव करै है ; तैसे पुरुष वांछित विषयके लाभ निमित्तैं, अंतरमुष वृत्तिमैं, स्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभव करिके, विषयमैं आनंदकूं ढूंढै है. तिसकरी दुषकूंही अनुभव करै हैं.

बडा आश्चर्य है, जो पुरुष समुद्रकी गंभिरता, पवनका वेग, अनेक यंत्र, तारोंकी गति, इत्यादिककी सोध करै हैं ; परंतु आपके ज्ञानकी सोध नहीं करै हैं ; औ जैसे और बुद्धि रहित प्रानि आपकूं जाने बिना, अहार, निद्रा, भय, औ मैथुनका अनुभव करि करिके मरै हैं ; तैसैं यह बुद्धि सहित मनुष्य प्रानि बी मरै हैं !

आत्मज्ञान (आपका ज्ञान) बहुत अद्वितीयके प्रतिपादक संस्कृत ग्रंथनसैं गुरुद्वारा पुरुषकूं प्राप्त होवै है. तेसैं फारसी, अरबिन, इंग्रेजी आदिक भाषामैं बी, कोइ कोइ आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं; परंतु संस्कृतमैं जैसे विस्तिर्न ग्रंथ हैं, तैसे और भाषाविषे नहीं है. हिंदुस्थानि भाषामैं बी आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं; परंतु आत्मज्ञानमैं उपयोगी एसा संपूर्न प्रक्रिया ग्रंथ दूसरा नहीं है. श्री निश्चलदासजीने भाषावालोंपर बडी कृपा करिके, स्थुल बुद्धिवालोंकों बी उपयोगी होवे ; ऐसा यह **श्री विचारसागर** ग्रंथ रच्या है.

आत्मज्ञानके अर्थ और पदार्थनका ज्ञान अपेछित है. जैसे भोजनकी सिद्धि अर्थ, अग्नि, अन्न, जल, आदिककी अपेछा रहै है ; तैसे आत्मज्ञान अर्थ, जीव, ईश्वर, औ जगतका ज्ञान अपेछित है; औ तिनकी सिद्धि अर्थ और पदार्थनका ज्ञान अपेछित है; सो ज्ञान ग्रंथ औ गुरु करी, औ अपने विचार करि प्राप्त होवै है. यातैं,

• प्रक्रियाके ज्ञानबिना आत्म ज्ञानकी दृढता होवै नहीं. यद्यपि; इस ग्रंथमें केवल महावाक्यके श्रवनसेंही ज्ञान होवे है; ऐसा अंक १८ से अंक २३ पर्यंत प्रतिपादन किया है. तथापि तहां कहा है:—असंभावना औ विपरीतभावना रहित जिसकी बुद्धि होवै, तिस उत्तम अधिकारिकूंहीं, केवल महावाक्यके श्रवन करि ज्ञान होवे है; सर्वकूं नहीं. ऐसे उत्तम अधिकारी जगतमें क्वचितही होवे हैं. यातें जिसकूं महावाक्यके श्रवनसे, असंभावना औ विपरीतभावना सहित बोध हुवा है; तिसकूं तिनकी निवृत्ति अर्थ; अनेक जुक्ति सहित पद पदार्थ श्रवन करिके विचारे चाहिये.

आत्म बोधमें उपयोगी प्रक्रिया इस ग्रंथमें अनेक हैं. यातें जिस पुरुषकूं परमानंदकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा होवै; तिसकूं यह ग्रंथ, मानो दुषरूप संसार समुद्रसें, लंघावनेकूं सिघ्र चलने वाला अगनबोट है. किंवा, विमानही है, ऐसे कहें तो अनुचित नहीं है.

इस ग्रंथमें द्वेष करिके कोइ पंथकी निंदा नहीं है. औ पक्ष करिके कोइ पंथकी स्तुती नहीं है. तैसे, न इसमें कोइ पंथ, वा, धर्मका प्रतिपादन है. केवल आत्म ज्ञान (आपका ज्ञान) जो सर्वका निजधर्म है; तिसका प्रकारही अनेक युक्ति करि दिषाया है.

केइ पुरुष उपासनामें, केइ सिद्धिमें, केइ वेसमें, औ केइ और कोसीमें अटकी रहे हैं; औ आपमें अथवा औरमें, तिनकी प्राप्ति नहीं देषीके, आत्म ज्ञानके तरफ आलसि होइके, संका सहित रहे हैं. ऐसी और बी अनेक संका होवै है; सो सब इस ग्रंथके विचारने करि दूरि होवै है.

विचार (का) सागर इस ग्रंथका नाम होनेतें, इसके प्रकरनके नाम, तरंग (मौंज) रखे हैं. इसमें सर्व मिलिके सात तरंग हैं. तिसमें,

प्रथम तरंग विषे अनुबंध (ग्रंथका अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजन) का बर्नन है. दूसरे तरंगमें अनुबंधका विसेष करिके बर्नन है. जैसै कोइ अपनि जमीन पर घर रचे तहां दूसरा पुरुष आइके, घरके धनीसें जमीनका दावा करें; औ रचे हुये घरकूं पायेसें उषाडी डाले; तब घरका धनी अपनी जमीनका धनीपना सिद्ध करिके, फेर घरकूं रचलेवे है; तब निःसंक होवै है. तैसे इस ग्रंथके प्रथम तरंगमें अनुबंध दिषाये हैं औ तिसका दूसरे तरंगमें पूर्व पच्छ (वादीका पक्ष) करिके षंडन कीया है. फेर सर्व संकाका क्रमसें समाधान करिके; अनुबंधका मंडन, किया है.

तीसरे तरंगमें मुमुछुके सिच्छा अर्थ, गुरुके औ सिष्यके लछन; औ गुरुकी भक्तिका प्रकार औ फल दिषाया है. चौथे तरंगमे उत्तम अधिकारीकूं उपदेसका प्रकार दिषाया है. पांचमें तरंगमें मध्यम अधिकारीकूं उपदेसका प्रकार दिषाया है; तिसकूं अहंग्र उपासनाकी विधि कही है. छठे तरंगमें कनिष्ट (कुतर्क बुद्धि) अधिकारीकूं उपदेसका प्रकार दिषाया है. सातमें तरंगमें जिवन्मुक्त औ विदेह मुक्तके व्यवहारका प्रकार दिषाया है. सातों तरंगका विसेष भावार्थ "मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका" करि जान्या जावेगा.

और ग्रंथकार जैसे बेदके प्रमान करी ग्रंथकूं पूर्न करैं हैं; तैसा इसमें नहीं है. श्रुतिके अर्थकूं निर्नय करनेवाली जुक्ति इस ग्रंथमें प्रधान हैं. जुक्तिकरी सर्व प्रकारके अधिकारीकूं सुषसें बोध होवे है. एक दो ठौरपर अवस्य धारिके श्रुति रषी है.

इस ग्रंथके समान मुमुक्षुकूं उपयोगी भाषा ग्रंथ आधुनिक समयमें अद्वैत मतविषे नहीं है. संस्कृतमें बी एसे संपूर्न वेदांतकी प्रक्रियाके ग्रंथ अल्पहीं हैं. ग्रंथ कर्ते श्री निश्चलदासजीने अंक दूसरे औ तीसरेमें ग्रंथकी महिमा कही है, सो यथास्थितही कही है. आत्म बोध विषे उपयोगी कोई बी प्रक्रिया, इसमें नहीं एसे नहीं है ; औ सो बी कहुं वेद विरुद्ध नहीं है.

बहुत करिके वेदांत प्रक्रियाके उपर, भाषा पढनेवालोंकी रुचि इस ग्रंथकी उत्पत्तिसें अनंतरही हुइ है. इस ग्रंथकी उत्पत्तिसें पूर्व भाषाजाननेवाले अनेक ग्रहस्थ औ साधु आदिक सत संगी, वेदांत प्रक्रियाकूं यथास्थित नहीं जानते थे. इसके अनंतर अब बहुत पुरुष प्रक्रियाकूं जानिके निःसंदेह ब्रह्मनिष्ठ हुवे हैं. "वृत्ति प्रभाकर" जो इस ग्रंथके कर्तेने कीया है, तिसका जिस जिस पुरुषनें सम्यक अभ्यास कीया है; सो मानो पंडितहीं भये हैं. औ तैसें पुरुषके साथ संस्कृतके वेत्ते, जब सास्त्रार्थ करते हैं, तब आश्चर्यकूं पावते हैं ; औ कहते हैं:— अहो क्या इन भाषा जाननेवालोंकी बुद्धि है !

इस ग्रंथमें अनुबंध निरूपन है, ऐसा अनुबंधका सुंदर निरूपन संस्कृत ग्रंथनाविषे बी मिलना कठिन है. जैसें जेवरीविषे सर्प अध्यासरूप करि प्रतीत होवै है ; तैसें परमात्मा विषे सर्व स्थूल, सूक्ष्म प्रपंच अध्यासरूप जीवकूं प्रतीत होवै है; ऐसा वेदांतका सिद्धांत है. जेवरी विषे सर्प भ्रममें अध्यासकी सामग्री कही है; परंतु जगत अध्यासमें तो, कोइ बी सामग्री नहीं है ; सामग्री बिनाही प्रतित होवै है ; ऐसा इस ग्रंथमें प्रौढिवाद करी सिद्ध कीया है. इस प्रकारका अध्यास निरूपन कोइ संस्कृत ग्रंथविषे बी बहुत करि नहीं देषिये है. और बी अनेक उपयोगी सिद्धांत अविरोध, स्वतंत्र अद्भुत विचार ग्रंथकर्तेनें इसमें रषे हैं.

ग्रंथके कर्तेने इसकी भाषा बहुत सरल करि है; औ जेसै और ग्रंथकार अर्थ संस्कृत मिश्र भाषासें ग्रंथकूं रचिके कठिन करि देवै है; ऐसा इसमैं नहीं कीया है. बहुत ठिकाने कठिन प्रसंगनकूं वारंवार लिषे हैं; जिसकरि स्थूल बुद्धिमान बी समजी सके. जहां जहां कठिन संस्कृत सब्द रषे हैं; तहां तहाँ तिन सब्दोंके अर्थ षोले हैं. ऐसा यह ग्रंथ सरल कीया है; तथापि इस ग्रंथका श्रवन औ अभ्यास, अनेक पुरुषनकूं कठिन प्रतीत होवे है. सो कठिनता, यह ग्रंथ प्रक्रिया करि पूर्न होनेतैं औ विचाररूप होनेतें है; औ इसका विषय बी दुर्बोध है. परंतु इस नवीन रूढिसे आंकित ग्रंथकूं विचारनेसें इसका श्रवन औ अभ्यास अतिषे सुगम होवेगा.

एकही यह ग्रंथ ऐसा उत्तम है जो, इसकूं मुमुछु भलि प्रकार विचारे वी सिघ्र अपने स्वरूपकूं जाने; औ आत्मज्ञानके निमित्त और कोइ बी दूसरे ग्रंथके देषनेकी अपेछा रहे नहीं. परंतु इतना है जो, इस ग्रंथकूं गुरुद्वाराही देषना चाहीये. काहेतें आत्मज्ञान वरकरी, अथवा बहुत पढनेकरि अथवा, और कीसी स्वतंत्र उपायकरि प्राप्त नहीं होवे है; ऐसा वेदांतका सिद्धांत है. इसके अंक ९४ में कह्या है:—

दोहा.

"पेष च्यारिं अनुबंध युत, पढै सुनै यह ग्रंथ ;
ज्ञान सहित गुरुसें जु नर, लहै मोछको पंथ १"

औ इसके अंक ९७ में बी कह्या है.

"बिन गुरुभक्ति प्रविन हु, लहे न आतम ज्ञान."

यातें जिज्ञासुनकूं ऐसी विनती है, जो इस ग्रंथकूं गुरुद्वारा विचारना.

इस ग्रंथके कर्ते श्री निश्चलदासजीका संपूर्न जन्मचरित्र इसके साथ लिखनेका मेरा विचार था; परंतु ऐसे साधनकी अप्राप्ति होनेतें जो कछुक मेरे श्रवनमें आया है; सो इहां लिखुं हुं.

श्री निश्चलदासजीका जन्म कहां औ कब हुवा है, तिसकी ज्ञात नहीं है. विद्या.अभ्यासमें इनुका बड़ा स्नेह था. १४ से ७० वर्ष पर्यंत विद्या अभ्यासमेंही काल व्यतीत कीया. इस ग्रंथके ५२६ अंकमें तिनके अभ्यासका यह कछुक बर्नन है:-

दोहा.

" सांख्य न्यायमैं श्रम कीयो, पढि व्याकरन असेष;
पढे ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकहु सेष. १११
कठिन जु और निबंध है, जिनमैं मतके भेद;
श्रमतैं अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद. ११२ "

ऐसे अभ्यासवान् पुरुष आधुनिक समयमैं क्वचित्‌ही देखनेमें आवे है.

इस ग्रंथ करी श्री निश्चलदासजीकी अद्भुत निष्टाका अनुमान होवे है. काहेतें, जो इसमें सिद्धांतकी वार्ता कोइ ठौरमैं कछु बी छुपाइके नहीं कही है; औ मुमुछुकूं निष्टा करावनेके प्रकार सम्यक रीतिसे इसमें रखे हैं. औ तिनोका व्यवहार बी अति उत्तम औ निःसंक था. जैसे कोइ साधु आदिक ज्ञानीपनेका अभिमान धारिके, देहाभिमान आदिक विषे गिडे रहते हैं; तैसे यह महात्मा पुरुष नहीं थे; महा विरक्त दसावाले औ बडे ब्रह्मनिष्ट थे. ब्रह्माकार वृत्तिकी स्थितिमैंही सदा मग्न रहते थे.

न्याय,व्याकरन आदिक, बुद्धिकूं तिव्र करै हैं; औ तिव्र बुद्धिका

वेदांतमें बी उपयोग है तथापि तिनका बहुत अध्ययन अनात्म (द्वैत) की तरफ बुद्धिकूं जोडै है; औ मतिकूं मलिन करी डारै है. ऐसा कहै हैं जो, न्यायसें एक सतगिना वेदांत विचारै तब न्याय करि दुषित हुइ बुद्धि सांतिकूं पावै है. श्री निश्चलदासजी, व्याकरन, न्याय आदिकमें अति कुसल होते बी, तिनुकी वेदांतपर ही प्रबल निष्टा थी.

आप कोइ कोइकूं न्यायादि सास्त्र पढावते थे, तहां कोइ प्रभातमें, न्यायादि पढने आवे तिसकूं नहीं पढावते थे; औ कहते थे जो प्रभातमें अनात्मा (द्वैत) के प्रतिपादक ग्रंथनकूं हम नहिं पढावेंगे.

इस दृष्टांतो करि श्री निश्चलदासजी, अद्भुत निष्टावान थे ऐसा सिद्ध होवै है.

श्री निश्चलदासजीका पांडित्य तिनके अभ्यास करीहि बडा अद्भुत था ऐसा सिद्ध होवै है. तिनका "वृत्ति प्रभाकर" ग्रंथ देषिके बडे बडे विद्वान बी श्री निश्चलदासजीके पांडित्यकूं सरावते हैं. अधिक क्या कहैं, तिनोंके समयमें, औ अब बी साधु पुरुषन विषे श्री निश्चलदासजीके समान कोइ बी पंडित नहीं है.

श्री निश्चलदासजी पृथिवी पर जहां विचरते थे, तहां वेदांत सास्त्रकी प्रतिदिन कथा करते थे. इस ग्रंथकी औ वृत्ति प्रभाकरकी बी आपने बहुत बेर कथा करी है. जहां जहां आप श्रवन करावते थे, तहां तहां अनेक साधुकी सभा श्रवन वास्ते मिलती थी; औ अति रसिक भाषन सुनिके आनंदवान् होते थे.

बहुत करी श्री निश्चलदासजी श्री कासीजी विषेही रहते थे, तहां आप बी कहुं श्रवनमें जाते थे. एक समय श्री कासीजीमें माहात्मा श्री तुलसीदासजी कथा करते थे, तहां आप

गये थे. प्रसंगसें श्री तुलसीदासजीने कहा, जो "ईश्वर विषे आवरन सक्ति नहीं है, विछेप सक्ति है." यह सुनिके श्री निश्चलदासजीने कह्या के "ईश्वर विषे दोनुं नहीं है." इस बात पर थोडा साप्त्रार्थ हुवा. इस पीछे आप तिस महात्माकी कथामें गये नहीं; कारन जो अपने वचनों करि कहुं किसीकूं षेद होवे तो भला नहीं; ऐसा विचारिके गये नहीं. परंतु आप तिन महात्माकी निष्टाकी बहुत स्लाघा करते थे. तैसे श्री तुलसीदासजी बी श्री निश्चलदासजी के पांडीत्य औ अद्भुत निष्टाकी वारंवार स्तुति करते थे. "ईश्वरमें आवरन औ विछेप सक्ति दोनो नहीं है." ऐसा इसके अंक २०६ औ २०७ में भलि प्रकार प्रतिपादन कीया है.

इस ग्रंथकूं रचनेमें श्री निश्चलदासजीने कोइ बी ग्रंथकी सहायता नहीं लइ है. जैसे कोइ सहज पत्र लिषे हैं; तैसे इसकूं रचि गये हैं. श्री "वृत्ति प्रभाकर" रच्या तब और ग्रंथोकूं देषते थे; परंतु सो अपने ग्रंथकूं निर्दोष करनेकूं देषते थे. औ श्री "वृत्ति प्रभाकर" में अनेक प्रमानिक ग्रंथनके प्रमान दिषाये हैं; औ तिसमें अनेक ग्रंथनके दोष बी स्पष्ट दिषाये हैं. अब केइ केइ संस्कृतके वेत्ते पंडित, श्री "वृत्ति प्रभाकर" कूं छुपाइके बांचे हैं; काहेतें जो संस्कृतके वेत्ते होइके, भाषा ग्रंथकी सहायता लेनेकूं तिनुकूं लज्जा होवे है; परंतु अति उत्कृष्ट होनेतें तिसकी सहायता लेवे है. श्री वृत्ति प्रभाकारमें न्याय आदिक अनेक पांडित्य मत भलि प्रकार दिषाये हैं; यातें तिसका पढना कठिन भया है. अंतके प्रकरणमें सर्व मतका षंडन करिके वेदांत मतका प्रतिपादन कीया है.

हिंदुस्थानमें बुंदी विषे रामसिंह राजाने, श्री निश्चलदासजीकूं बडे आदर सहित अपने पास रषे थे. औ राजा रानी दोनु, तिनुमें

गुरुभाव रषते थे. श्री निश्चलदासजीकी संगतिसें, सो राजा पंडितकी पदवीकूं प्राप्त भया. राजाने एक समय बडे बडे पंडितनकी सभा करी थी, तिसमें सास्त्रार्थ हुवा था; तिसकी राजाने यथास्थित परिछा करी; तिस दिनसे सर्व पंडित जनोंनें तिस राजाका नाम "विद्वान" करिके रषा. इस राजाने श्री निश्चलदासजीकूं विनती करी जो, हिंदुस्थानी भाषामें पंडितनकूं उपयोगी होवे, ऐसा वेदांत ग्रंथ कोइ नहीं है; सो आप करोगे तो सहज होवेगा. इस प्रेरना करि; औ भाषाके जानने वालोंपर दयादृष्टी करि, आपने श्री "वृत्ति प्रभाकर" बनाया है.

श्री काशीजीमें रहिके श्री निश्चलदासजीने विद्याके २७ लक्ष संस्कृत श्लोकनका संग्रह कियाथा. आप संस्कृतके बडे धुरंधर वेत्ते थे; तथापि भाषा पढनेवालोंपर बडी दया करि, दो उत्तम ग्रंथनकूं प्रगट किये. इस ग्रंथके अंक ५२६ में कह्या है:—

दोहा.

"तिन यह भाषा ग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज;
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म सिरताज. ११३"

श्री निश्चलदासजीनें श्री कठवल्लि उपनीषदपर संस्कृतमें व्याख्यान किया है. औ वैदिकसास्त्रका बी एक ग्रंथ रच्या है; ऐसा सुन्या जावे है. काव्यसास्त्रमें बी आप कुसल थे, ऐसा इस ग्रंथकी कविता निर्दोष है; तिसकारि जान्या जावे है.

श्री सुंदरदास, जिनकी श्री "संदर विलास" प्रसिद्ध है; तिनोंने औ श्री निश्चलदासजीने मिलिके; श्री दादूजीके पंथकूं अतिषे प्रकासित किया है.

श्री निश्चलदासजीकूं पंथका अभिमान नहीं था; बडे निराभिमान थे. बाल्यावस्थासें आप साधु दसामेंही रहे थे; औ तिसमें बडा विद्या अभ्यास कीया; औ पीछे बहुत करिके ब्रह्मचिंतन विषेही मग्न रहते थे. संवत १९२० की सालमें श्री दिल्लि सहरमे इनुका देह पड्या है. तिनुका श्री किहडोलिमें, जहां यह ग्रंथ समाप्त भया है; तहां द्वारा बी है औ अद्यापि तहां तिनोके सिष्य बी हैं.

श्री निश्चलदासजीका जो उपर वृत्तांत लिख्या है; सो बहुत अपुर्ण है. कोइ कृपा करिके इस महात्मा पुरुषका सविस्तर वृतांत मेरेकूं लिष भेजेंगे तो; तिसका और कोई दुसरे समयपर उपयोग करनेकी मेरी बडी इच्छा है.

जिस समयमें यह ग्रंथ संपूर्ण भया, तिस समयमें अनेक पुरुष इसकूं लिषाइके रषते थे, औ तिसका अभ्यास करते थे. तिस पीछे यह ग्रंथ कलकत्ता, लाहोर, मुंबइ आदिक स्थानोंमें छपा है. औ मराठि भाषामें इसका भाषांतर भया है. बंगालि भाषामें बी इसका भाषांतर हुवा है; ऐसा सुन्या है.

जहां जहां यह ग्रंथ हिंदुस्थानी भाषामें छपा है, तहां तहां विभक्त्यांत पदच्छेद रहित औ विचारनेमें कठिन रूढिके छपे हैं. औ कहुं कहुं तो निकृष्ट कागद औ छापेकरि ग्रंथकूं अरुचिकर करी दिया है.

मेरेकूं इसका अभ्यास कठिन प्रतीत भया, तब मैंनें कष्टसें स्वअभ्यासके अर्थ अनुक्रमणिका रचि. पीछे बहुत सतसंगीने मेरेकूं सूचना करी, जो इस ग्रंथकूं अनुक्रमणिका सहित छपाना चाहिये, औ तिसकरि सर्व मुमुक्षुनकूं इसका अभ्यास बहुत सुगम होवेगा.

इसमें ९२७ अंक किये हैं; जिसकरि अनेक प्रक्रिया औ अंतरगत प्रक्रिया रूपी रत्न, विचार (रूपी) सागरमें भिन्न भिन्न

दृष्ट आवे हैं. विचार समुद्रसें रत्न प्राप्तिकी जिसकूं इच्छा होवे, तिसकूं "पदार्थ दर्सक अनुक्रमणिका" जो इस ग्रंथके अंतमें रषी है; तिसका उपयोग होवेगा. इस विचार समुद्रका विस्तार यद्यपि बहुत बडा है; तथापि तिसका थोडा विस्तार, समुद्रमें प्रवेस होनेसें पूर्वही, जिज्ञासुकूं जान्या चाहिये; सो इसके आरंभमें "मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका" रषि है; तिसकरि जान्या जावेगा. समुद्रका मार्ग बी इस अनुक्रमणिका करि दृष्ट आवेगा.

इन दो अनुक्रमणिकाकी यह समज है:—

"मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका"में केवल मुष्य संका औ प्रसंग दिषाये हैं. मुष्य संकाकी अंतर्गत संकाकूं नहीं दिषाइ है; काहेतें, जो तिस करि अनुक्रमणिकाका विस्तार बहुत होइ जावे. ग्रंथ पढते कहुं मुल प्रसंग विस्मरन होइ जावे तौ, जिस अंकका पठन चलता होवे; तिस अंककूं इस अनुक्रमणिका विषे देषनेसें प्रसंगकी प्राप्ति होवेगी. जैसाके अंक ३८९ पढते हैं; तहां प्रसंग विस्मरन होइ गया. तब इस अनुक्रमणिका विषे ढुंढनेसें "उत्तर ३७९–४००" एसा मिलेगा. काहेतें, अंक ३८९ इन दो अंकनके मध्य है. अब यह उत्तरके उपर देषनेसें "प्रश्नः— मोच्छका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है, अथवा उपासना है, अथवा दो है? ३७९" एसे प्रसंग मिलेगा.

"पदार्थ दर्सक अनुक्रमणिका," अकारादि क्रमके अनुसार रची है; तिस करि अनुक्रमणिका विषे रहे पदार्थकी सिघ्र प्राप्ति होवे है. जो पदार्थ ग्रंथमें देषना होवे, तिसके प्रथमके दो अच्छर अनुक्रमणिकामे देषना, तहां तिस अच्छरो करि आरंभवाले एकसें अधिक सब्द दृष्ट पडेगे; तिसमें वांछित सब्द बी मिलेगा; औ तिस सब्दके समीप एक अथवा अधिक अंक मिलेंगे. पीछे ग्रंथमें

तिस तिस अंककूं ढूंढनेसें, तहां तहां वांछित सब्दनका अर्थ मिलेगा. कोई एकही पदार्थ, दो तीन ठौर पर बी अनुक्रमणिकामें मिलेंगे. जैसे "तत्वमसि महावाक्यमें लच्छना" सब्द है, सो तकार आदि अच्छरमें देषनेसें "तत्वमसि महावाक्यमें लच्छना, ४३३." एसे मिलेगा. औ मकार आदि अच्छरमें देषनेसें "महावाक्य तत्वमसिमें लच्छना, ४३३." एसे मिलेगा. औ लकार आदि अच्छरमें "लच्छना तत्वमसि महावाक्यमें, ४३३." एसे मिलेगा. इस प्रकार अनेक सब्द फिराइके रषे हैं; तिस करि जैसे स्मरनमें आवे, तैसें सब्द अनुक्रमणिका विषे सिघ्र मिलेंगे.

भाषाकी संप्रदाय जो ग्रंथ कर्तेने अंक ४०१ में दिषाइ है; तिसके अनुसार यह ग्रंथ छपाया है. तालव्य "श" की ठौर "स" रषा है; औ "ख" की ठौर "ष" रषा है; इत्यादि. तातें इस ग्रंथकूं पढनेसें पूर्वही अंक ४०१ देषी लेना.

यह ग्रंथकी कविता बडे अच्छरमें, औ टीका लघु अच्छरमें रषी है; काहेतें, इस रूढिके ग्रंथमें सर्व अच्छर बडे लिषे तौ इसका पूर, तीन, वा, च्यार गिना होइ जावे, इसके पद्य, औ गद्यके सर्व सब्द, विभक्त्यांत पदच्छेद करिके रषे हैं. औ कविताके चरन बी भिन्न भिन्न रषे हैं. इस करि इसका पढना अतिषे सुगम होवेगा.

स्मरनमें रषनें योग्य, किंवा उपयोगी वाक्यनकूं, अनेक पुरुष लाल गेरू करि रंगे हैं. इस हेतुकी सिद्धि अर्थ मैंने यथा मति, टीकाके मध्य, सहज बडे अच्छरमें ऐसे वाक्यनकूं रषे हैं. औ "पदार्थ दर्सक अनुक्रमणिकामें" जो सब्द हैं; सो बी सर्व, ग्रंथ विषे सहज बडे अच्छरमें रषे हैं.

प्रत्येक वाक्यमें विराम (विश्राम) चिन्ह रषनेकी सास्त्रन विषे

रीति नहिं देषीये है; परंतु आधुनिक इंगलिश लोक तिसका बहुत उपयोग करै हैं. औ इस रीतिकुं श्रेष्ठ जानिके सर्व विद्वान मान्य करैं हैं. इस रीतिसे छपा हुवा ग्रंथ, पढना बहुत सुगम होवे है. इस ग्रंथ विषे जो चीन्ह रषे हैं तिसके यह नाम हैं;

, स्वल्प विराम. ; अर्ध विराम.

: अपूर्ण विराम. . पूर्ण विराम.

? प्रश्न चिन्ह. ! उद्गार चिन्ह.

— संयोग चिन्ह. " " अवतरण चिन्ह.

( ) स्पष्ट दर्षक चिन्ह. :— निर्देस चिन्ह.

इन नामो करिही चिन्हनका अर्थ जान्या जावै है; विस्तारके भय- सें यहां अर्थ नहीं दिया है. जहां जैसा चिन्ह चाहिये तैसाही चिन्ह तहां रषनेमें अति सुक्षम दृष्टीकी अपेछा है; यातें कहुं इस ग्रंथमें चक्षु दोष करि चिन्ह दोष, वा, अक्षर दोष होवै तौ, तिसकूं सु- धारिके बांचना एसि विनती है. हिंदुस्थानि भाषा, मेरी स्वदेसकी भाषा नहीं होनेतें, प्रस्तावनाकी रचना विषे कहुं दोष दृष्टिमें आवे तो क्षमा करना.

इस ग्रंथके आरंभमें, मंगलाचरनके अत्युत्कृष्ट पांच दोहे हैं; तिनका अर्थ बहुत गंभीर है. इनकी टीका कहुं नहीं है. परंतु श्री निश्चलदासजीने, बहुत साधु पुरुषनके पास इन दोहेका युक्ति पूर्वक व्याख्यान कीया था. सो व्याख्यान एक स्वामीसें, एक महात्मा पुरुषनें श्रवन कीया था; औ तिनसें मैंने श्रवण कीया है. इन मंगला चरनके दोहेकी टीका, अति उपयोगी जानिके नविन रीतिके अनुसार इस ग्रंथके आरंभमें छापीके रषी है

जिस महात्मा ब्रह्मनिष्ट पुरुषसें, मैंने मंगलाचरनकी टीका औ इस ग्रंथका श्रवन किया है; तिस महात्मा पुरुषका मेरे उपर

आंतें बडा उपकार भया है. औ ग्रंथके आरंभमें अर्पण पत्र रच्या है; सो इसही महात्मा पुरुषके वास्ते रच्या है

इस ग्रंथकूं सोधिके छपावनेमें, मेरे मित्र, विसनजी चतुर्भुजने बहुत सहायता करी है. औ तिनकूं काव्यका अच्छा ज्ञान होनेतें, इस ग्रंथकी कविता तिनने सोधि है; यातें सर्व कविता दोष रहित छपी है.

शा. सा.

विचार सागरकी

मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका

प्रथमस्तरंगः १

अथ अनुबंध सामान्य निरूपन.

द्वितीयस्तरंगः २

अथ अनुबंध विसेष निरूपन.

मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका.

मार्ग दर्शक अनुक्रमणिका.

पंचमस्तरंगः ५

अथ श्री गुरु वेदादि, व्यावहारिक प्रतिपादन, औ मध्यमाधिकारी साधन निरूपन.

षष्ठस्तरंगः ६

अथ गुरु वेदादि साधन मिथ्या बर्नन.

मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका.

मार्ग दर्सक अनुक्रमणिका.

सप्तमस्तरंगः ७

अथ जीवन्मुक्ति, विदेह मुक्ति बर्नन.

श्रीगणेशाय नमः

श्री विचार सागरके

वस्तु निर्देसरूप मंगलकी टीका.

दोहा.

जो सुष नित्य प्रकास विभु, नाम रूप आधार;
मति न लषे जिहिं मति लषै, सो मैं सुद्ध अपार. १

टीकाः— "सो मैं" हुं; यह अन्वय है. इस कहने करि महावाक्यका अर्थरूप प्रत्यक् अभिन्न परमात्मा अपना स्वरूप कह्या. अब तिसके भिन्न भिन्न विसेषन कहे है.

सो (ब्रह्म) कैसा है ? जो "सुष" है, जो नित्य है, जो प्रकास है, जो "विभु" है, जो "नाम रूपका आधार" है.

फेर सो (ब्रह्म) कैसा है ? "मति न लषे जिहिं मति लषे."

---

१ निर्गुन वस्तु.
२ विघ्न ध्वंसके अनुकूल व्यापार.
३ संबंध.
४ देषो अंक, ४४३.
५ अंतर (आत्मा).
६ आनंद. देषो अंक, ३६४.
७ सत्य. देषो अंक, २४२, ३५५.
८ चित्. चैतन्य. ज्ञान स्वरूप.
९ व्यापक. देस काल वस्तु करी अंतते रहित, देषो अंक. ३६४.
१० अधिष्ठान. विवर्त उपादान कारन. देषो अंक १४९.

इसका यह अर्थ है:- बुद्धि जिसकूं (ब्रह्मकूं) प्रकासे नहीं औ जो (ब्रह्म) बुद्धिकूं प्रकासे. दूसरा यह भी अर्थ है:- सब्दकी [11]सक्ति वृत्तिसें मति जिसकूं (ब्रह्मकूं) जाने नहीं; सब्दकी [12]लछना वृत्तिसें मति जिसकूं (ब्रह्मकूं) जाने. और यह भी अर्थ है:- [13]मलिन मति जिसकुं (ब्रह्मकूं) जाने नहीं; [14]सुद्ध मति जिसकूं (ब्रह्मकूं) जानें. इस अर्थसें यह जानना जो, सुद्ध मति बी [15]फलव्याप्तिसें जिसकूं (ब्रह्मकूं) नहीं जाने है; किंतु [16]वृत्तिव्याप्तिसें जाने है. सो वृत्ति बी जेसें दीपक अन्य पदार्थोकुं प्रकासता है; तैसे ब्रह्मकूं प्रकासनेमें समर्थ नहीं है. परंतु जेसे पात्रसें ढापि हुइ मणि, अंधेरेमें स्थित होवे, औ तिस पात्रकुं डंडसें फोडीके मणिका प्रकास होवे है; तेसे " अहं ब्रह्मास्मि " एसी वृत्तिसें ब्रह्मके [17]आवरन रूप अज्ञानकी निवृत्ति करनाही ब्रह्मका प्रकास करना कहिये है. जाते ब्रह्म, अपने प्रकासमें बुद्धि आदिक और प्रकासकी अपेक्षा रहित हुवा, सर्वका प्रकासक है; यातें "मति न लषे जिहिं मति लषे," इस वाक्यके अर्थ करी ब्रह्म स्वयंप्रकास है; एसा सिद्ध होवे है.

फेर सो (ब्रह्म) कैसा है? जो " [18]सुद्ध" है, जो "[19]अपार" है.

---

११ देषो अंक. ४०९.

१२ भाग त्याग लच्छनासे. देषो अंक, ४०९,४३२,४३८.

१३ मल विछेप दोष सहित बुद्धि.

१४ मल विछेप दोष रहित बुद्धि. च्यारि साधन सहित.

१५ चिदाभासकी विषयता करी. देषो अंक, २०५.

१६ केवल वृत्तिकी विषयता करी. देषो अंक, २०५.

१७ देषो अंक, १७९.

१८ माया औ ताके कार्यरूप मलसे रहित.

१९ देस, काल, वस्तु करी अंतते रहित.

उक्तब्रह्मके लच्छनकी पदंकृतिकों[20] दिषावे है:—जो केवल, ब्रह्म "सुष" है; ऐसे कहे तो विषयसुष, वा न्यायमतमें[21] आत्माका आनंद गुन माने है तिनमैं ब्रह्मके लच्छनकी अतिव्याप्ति[22] होवे; तिसके निवारन अर्थ, ब्रह्मके लच्छनमें "सुष"के साथि "नित्य" कह्या है. विषयानंद अनित्य है औ नैयायिक आत्माका आनंद[23] गुन माने है, सोबी अनित्य माने है. इहां ब्रह्म "सुष" औ "नित्य" कह्या है; यातैं तिनोमें अतिव्याप्ति नहीं.

जो केवल, ब्रह्म "नित्य" है; ऐसे कहे तो न्यायमतमैं[24] आकास, काल आदिक नित्य माने हैं; तिनमें अति व्याप्ति होवे; तिसके निवारण अर्थ ब्रह्मके लच्छनमे "नित्य" के साथि "प्रकास" कह्या है. नैयायिक आकासादिककूं नित्य माने है; परंतु प्रकासरूप नहीं माने हैं; किंतु जड माने हैं. इहां ब्रह्म "नित्य" औ "प्रकास" कह्या है; यातें तिसके मतमें अतिव्याप्ति नहीं.

जो केवल, ब्रह्म "प्रकास" है एसे कहे तो सूर्यादिक प्रकासनमें, वा न्यायमतमें[25] आत्माका ज्ञान गुन माने हैं तिसमे, वा छीनक[26] विज्ञान वादिके मतमें आत्मा छानिक विज्ञानरूप माने हैं, तिसमे अति व्याप्ति होवे; तिसके निवारण अर्थ ब्रह्मके लच्छनमें "प्र-

२० परिच्छा.

२१ देषो अंक, ३४३, ३६३.

२२ जिसका लच्छन करीये तिसमें वर्तिके, तिसतें और पदार्थमें बी लच्छनका वर्त्तना.

२३ गुन होवे सो अनित्यही होवै है; एसा नियम है.

२४ देषो अंक, ३४३.

२५ देषो अंक, ३४३, ३५७.

२६ देषो अंक, १२७.

कास" के साथि "विभु" कह्या है. सूर्यादिक प्रकास व्यापक नहीं है; किंतु परिच्छिन्न हैं. औ नैयायिक आत्माके ज्ञान गुनकूं व्यापक नहीं माने हैं, किंतु परिच्छिन्न माने हैं. तैसे छनिक विज्ञानवादि छनिक विज्ञानकूं व्यापक नहीं माने है; किंतु परिच्छिन्न माने हैं. इहां ब्रह्म "प्रकास" औ "विभु" कह्या है; यातें तिनोमें अति व्याप्ति नहीं.

जो केवल, ब्रह्म "विभु" है, ऐसे कहै, तौ आकासादिक बी व्यापक हैं, तिनमें, औ नैयायिक, प्रभाकर आत्माकूं विभु माने हैं तिसमें, वा, सांख्यमतमें प्रकृतिकूं व्यापक माने है, तिनमें अति व्याप्ति होवे. तिसके निवारण अर्थ, ब्रह्मके लच्छनमें "विभू" के साथि "नामरूपका आधार" कह्या है.

आकासादिक[28] विभु तौ हैं, परंतु नामरूपके आधार नहीं है. तैसे नैयायिक औ प्रभाकर आत्माकूं विभु माने है, परंतु नाम रूपका आधार नहीं माने हैं. औ सांख्य मतमैं प्रकृति व्यापक माने है; परंतु नाम रूपका आधार नहीं माने है. इहां ब्रह्म "विभु" औ "नामरूपका आधार" कह्या है; यातें तिनोमें अति व्याप्ति नहीं.

जो केवल, ब्रह्म, "नामरूपका आधार" है, ऐसे कहै तौ, प्रातिभासिक[29] सर्पादिकनके नाम औ रूपके आधार; रज्जु आदिक हैं तिनमैं अतिव्याप्ति होवै, तिसके निवारण अर्थ ब्रह्मके लच्छनमें "नाम रूपका आधार" के साथि "मति न लषे जिहिं मति

२७ देषो अंक, ३४९.

२८ आकासादिककी व्यापकता आपेच्छिक है. देषो अंक, १७२.

२९ प्रतीति मात्र. कल्पित. देषो अंक, ३१९.

लक्षे" (स्वयंप्रकास[30]) कह्या है. यद्यपि ""नाम रूपका आधार" इस एक विसेषनसेही किसी मतके कोइ पदार्थमें, ब्रह्मके लच्छनकी अतिव्याप्ति नहीं होवे है, औ वेदांत[31] मतमें रज्जु आदिक स्थलमें, कल्पित सर्पादिकनके नामरूपका आधार, रज्जु उपहित चेतनही अंगीकार कीया है; रज्जु आदिक नहीं. तथापि यहां जो रज्जु आदिककूं नामरूपकी आधारता कहीके अतिव्याप्ति निवारन करी है; सो स्थूल दृष्टिसें करी है.

जो केवल, ब्रह्म "स्वयं प्रकास" है, ऐसे कहै, तौ कोइ उपासकोंके मतमें आत्मा स्वयंप्रकास माने हैं; तिसमें अतिव्याप्ति होवे; तिसके निवारण अर्थ ब्रह्मके लच्छनमें "स्वयंप्रकास" के साथि "सुद्ध" कह्या है. सो उपासकोंके मतमें आत्मा स्वयंप्रकास औ अविद्यादि मल सहित मान्या है. इहां ब्रह्म "स्वयंप्रकास" औ "सुद्ध" कह्या है; यातें तिनमें अतिव्याप्ति नहीं.

जो केवल, ब्रह्म, "सुद्ध" है ऐसे कहे, तो सांख्य[32]मतमें आत्मा सुद्ध माने है; तिसमें अति व्याप्ति होवे; तिसके निवारन अर्थ ब्रह्मके लच्छनमें "सुद्ध" के साथि "अपार" कह्या है. सांख्यमतमें आत्मा सुद्ध तौ माने है, परंतु अपार नहीं माने है. यद्यपि सांख्यमतमें आत्मा देस काल करी अंतवाला नहीं, तथापि वस्तु करी अंतवाला है; यातें सर्वथा अपार नहीं. औ इहां ब्रह्म, "सुद्ध" औ "अपार" (देस, काल, वस्तु करी अंतते रहित) कह्या है; यातें तिसमें अति व्याप्ति नहीं.

---

३० पृष्ठ दूसरे पर, स्वयंप्रकास अर्थ सिद्ध कीया है.

३१ देखो अंक, १३६.

३२ अंक, ३४२.

यद्यपि "सुष, नित्य" वा, "नित्य, प्रकास" इस रीतिसें दो दो विसेषन जो उपर दिषाये हैं; तिन दो दो विसेषन करीही अतिव्याप्ति तो दूरी होवे है; तथापि अधिक विसेषन जो कहे हैं, सो जिज्ञासुनकों तिन विसेषनोका बोध होवै; इस निमित्त कहे हैं. किंवा, अनेक रीतिसें ब्रह्मके लच्छनका ज्ञान होवै, इस निमित्त कहे हैं.

उक्त विसेषनो करी युक्त जो ब्रह्म "सो मैं हुं," एसा यह दोहेका भावार्थ हे.

संकाः– विष्नु, सिव आदिक देवनका स्मरनरूप मंगल किया चाहिये; तिन देवनकूं छोडिके अपना स्मरनरूप मंगल करना उचित नहीं हैं. याके समाधानका

दोहा.

अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्नु महेस;
विधि रवि चंदा वरुन यम, सक्ति धनेस गनेस. २

टीकाः– मेरा (प्रत्यक आत्माका) स्वरूप समुद्रकी[३३] न्याइ अपार है; तिस मेरे स्वरूपभूत समुद्रकी विष्नु, महेस[३४],

---

३३ यद्यपि समुद्रका तो नौका करी पार आवे है; यातें समुद्रकी उपमा उपमेय (स्वस्वरूप) के समान नहीं है; औ उपमा समान वस्तुकीही होवे है. तथापि, हस्त पादादि अंगकी क्रिया करी समुद्रका पार आवे नहीं; तातें समुद्रके समान स्वरूप कह्या है. इहां समुद्रकी पुर्न उपमा नहीं है, किंतु लुप्त उपमा है.

३४ सिव.

विधि[३५], रवि, चंद्र, वरुन[३६], यम[३७] सक्ति[३८], धनेस[३९], गनेस[४०], इसकरि उपलच्छित[४१] सर्व देव लहरी हैं. स्वस्वरूपभूत समुद्रमें सर्व देवता लहरी होनेतें, अपनेही मंगलसें सर्व देवताओंके मंगलकी सिद्धि होवे है; यातें अपनाही मंगल करनेमें कछु बी अनुचित नहीं

संका:— विष्नु सिवादिक देव; ईश्वर[४२]की लहरी संभवे है, तुमारे स्वरूप (प्रत्यक् आत्मा) की लहरी संभवे नहीं ; यातें ईश्वरका मंगल करना चाहिये. जैसें वृच्छके मूलमें जल सेचनसें स्कंधादिककी, औ प्रानके अहारतें इंद्रियनकी तृप्ति होवे ; तैसें ईश्वरका मंगल कीयेसें सर्व देवताके मंगलकी सिद्धि होवे ; तुमारे (प्रत्यक् आत्माके) मंगलसें सर्व देवताके मंगलकी सिद्धी नहीं होवे है. याके समाधानका

दोहा.

जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान ;
ताको होत उपाधितें, मोमें मिथ्या भान. ३

---

३५ ब्रह्मा. वेद मतसें विष्नु, सिव, ईश्वर कोटीमें होनेतें तिनका प्रथम ग्रहन है; औ ब्रह्मा जीव कोटीमें होनेतें तिसका पीछे ग्रहन है.

३६ जलका अभिमानि देवता.

३७ धर्मराजा.

३८ देवी.

३९ कुबेर.

४० गनपति.

४१ देखो अंक, ११६.

४२ माया विसिष्ट चेतन.

टीका:— जिस कृपालु सर्वज्ञ (ईश्वर) का मुनि हृदयमें ध्यान धरे हैं, तिस ईश्वरका माया उपाधिसें, जैसें रज्जुमें सर्पादि औ स्वप्नमें नगरादि भान होवे हैं, तैसें मेरे स्वरूप (प्रत्यक तत्व) विषे (ईश्वर) मिथ्याही भान होवे है. यातें मेरे मंगलसें ईश्वरादि सर्वके मंगलकी सिद्धि होवे है ; काहेतें, जो वस्तु जिसके विषे कल्पित होवे सो तिसका रूपही होवे है ; ऐसा नियम है. यातें मेराही मंगल उचित है.

संका:— ईश्वर तौ सुद्ध ब्रह्ममें अध्यस्त[४३] है, तुमारे स्वरूप (प्रत्यक आत्मा) में नहीं. यातें निर्गुन ब्रह्मका मंगल करना चाहिये; तिनके मंगलसें सर्वके मंगलकी सिद्धि होवेगी, तुमारे मंगल करि नहीं. याके समाधानका

दोहा.

है जिहिं जाने बिन जगत, मनहु जेवरी साप ;
नसे भुजग जग जिहिं लहे, सोहं आपे आप. ४

टीका:— जेसें जेवरीकूं जाने विना, साप प्रतीत होवे है ; तेसें जिस (ब्रह्म) कूं जाने बिना, यह जगत प्रतीत होवे है. औ जेवरीके जाननेसें जेसें साप नास होवे है ; तेसें तिस (ब्रह्म) कूं जाननेसें यह जगत निवृत होवे है. सो अधिष्टानरूप सुद्ध ब्रह्म मैं आपे आप हुं. ("आपेआप" कहने करी, अंस अंसीभाव, वा विकार विकारीभाव, वा उपासक उपास्यभाव, आदिक कोइभी रीतिसें मेरा औ ब्रह्मका किंचित् भेद नहीं ; यह सूचन कीया. औ भेदके अभा-

---

४३ कल्पित.

वतें, कार्यतारूप, प्रकास्यतारूप, औ आधेयतारूप, जो तीन[४४] प्रकारकी परतंत्रता है, तिनतें मैं रहित हुं, यह बी सूचन कीया.) यातें मेरा (प्रत्यक आत्माका) मंगलही सुद्ध ब्रह्मका मंगल है;

संका:– तुमारे पूरंपरा गुरु, दादूजीके[४५] संप्रदायके इष्टदेव श्री रामचंद्रजीकूं तौ नमस्काररूप मंगल करना चाहिये. याके समाधानका

दोहा.

बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम;
सो मेरो है आतमा, काकूं करू प्रनाम. ५

टीका:– जिस रामजीकों बोधकी चाहना करीके; सुकृति, निनिष्काम भजे है, सो रामजी मेरो आत्मा (स्वरूप) है, यातें मैं किसकूं प्रनाम करूं? मेरेतें भिन्न और वस्तुके अभावतें, किसीकूं बी प्रनाम नहीं करूं; यह भाव है. अथवा, जिस (परब्रह्म) के बोधकी चाहना करि सुकृति पुरुष रामजीकों निष्काम भजे हैं, सो परब्रह्म मेरो आत्मा (स्वरूप) है; यातें सर्वको अधिष्ठान मैं, किसकुं प्रनाम करूं? मेरेतें भिन्न और कोई वस्तु हैही नहीं; जाकों मैं प्रनाम करूं; यह भाव है.

इति श्री विचार सागरके मंगलके पंच दोहेकी टीका संपूर्न.

४४ कारनकी आधिनता, प्रकासककी आधिनता, औ आधारकी आधिनता; ये तिन परतंत्रता.
४५ दादूपंथी रामके नामकी धून लगाते हैं.

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्री विचार सागर प्रारंभः

प्रथमस्तरंगः

अथ अनुबंध सामान्य निरूपनं.
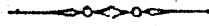
१ अथ वस्तु निर्देसरूप मंगल.

दोहा.

जो सुष नित्य प्रकास विभु, नाम रूप आधार;
मति न लषै जिहिं मति लषै, सो मैं सुद्ध अपार. १
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्नु महेस;
विधि रवि चंदा वरुन यम, सक्ति धनेस गनेस. २
जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान;
ताको होत उपाधितें, मोमैं मिथ्या भान. ३
है जिहिं जाने विन जगत, मनहु जेवरी साप;
नसै भुजग जग जिहिं लहै, सो हं आपे आप. ४
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम;
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रनाम. ५

२ भर्‍यो वेद सिद्धांत जल, जामैं अति गंभीर ;
अस विचार सागर कहूं, पेषि मुदित व्है धीर. ६
सूत्र भाष्य वार्त्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहुत सुर बानि,
तथापि मैं भाषा करूं, लषि मति मंद अजानि. ७

टीका.—यद्यपि **सूत्र**, **भाष्य**, **वार्त्तिक**सें **प्रभृति** कहिये आदि लेके **सुर बानि** कहिये संस्कृत ग्रंथ बहुत हैं, तथापि संस्कृत ग्रंथनसें मंद बुद्धि पुरुषनकूं बोध होवै नही; औ भाषा ग्रंथनसें मंद बुद्धि पुरुषनकूं बी बोध होवै है; यातें भाषा ग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं. किंतु संस्कृत ग्रंथनके विचारनेविषे जिनकी बुद्धि समर्थ नही है, तिनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है. ७

३ दोहा.

कवि जन कृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगत विष्यात,
बिन विचार सागर लषै, नहि संदेह नसात. ८

टीका.—यद्यपि भाषा ग्रंथ बहुत हैं, तथापि **विचार सागर** विना और भाषा ग्रंथनसें, आत्म वस्तुविषे संदेह दूरि होवै नही. याकेविषे यह हेतु है:— कितने तौ श्रवन करिके भाषा ग्रंथ रचे हैं, जैसे **पंचभाषा** हैं; तिनकी प्रक्रिया काहू अंसमैं तौ सास्त्रके अनुसार है; औ जो श्रवन किया अर्थ यथार्थ ग्रहन नहीं हुवा, तिस अंसमैं सास्त्रसें विरुद्ध है; यातें श्रोताकूं ग्रंथसें संदेह रहित बोध होवै नही. और कोई भाषा ग्रंथ किंचित् सास्त्र पढिके रचे हैं; जैसे **आत्मबोध** है;

तिनसें बी संदेह रहित बोध होवै नही. काहेतें, तिनमैं वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्न नहीं है. औ विचार सागर ग्रंथमैं संपूर्न प्रक्रिया है; औ वेदांत सास्त्रके अनुसार है; काहू स्थानमैं बी विरुद्ध नही है; औ आत्मज्ञानमैं उपयोगी जो पदार्थ हैं. तिनका निरूपन विस्तारसें किया है; यातें और भाषा ग्रंथनके समान यह ग्रंथ नही है; किंतु सर्व भाषा ग्रंथनसें यह ग्रंथ उत्तम है. ८

४ चौपाई.

नहि अनुबंध पिछानै जौ लौं,
व्है न प्रवृत्त सुधर नर तौ लौं;
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा,
कहूं व यातें ते अनुबंधा. ९

टीका.— अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजनका नाम **अनुबंध** हैं. अधिकारी आदिक ग्रंथके अनुबंध जानें बिना **सुधर** कहिये विवेकी पुरुषकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नही. यातें जिन अनुबंधनकूं जानिके **प्रबंध** कहिये ग्रंथकूं सुनै, तिन अनुबंधनकूं व कहिये अब कहूं हूं. ९

सोरठा.

अधिकारी संबंध, विषय प्रयोजन मेलि चव ;
कहत सु कवि अनुबंध, तिनमैं अधिकारी सुनहु. १०

५ दोहा.

मल विछेप जाके नही, किंतु एक अज्ञान;
व्है चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान ११

टीका.—अंत:करनविषे तीन दोष होवै हैं:—एक तौ मल होवै है, दूसरा विछेप होवै है, औ तीसरा आवर्न होवै है; निष्काम कर्मसें अंत:करनका मल दोष दूरि होवै है; उपासनासें विछेप दोष दूरि होवै है, ज्ञानसें आवर्न दोष दुरि होवै है; जा पुरुषनें निष्काम कर्म, औ उपासना करिके मल औ विछेप दोष दूरि किये हैं; औ एक अज्ञान कहिये स्वरूपका आवर्न जाके चित्तविषे होवै, औ च्यारि साधन संयुक्त होवै, सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है. ११

६ अथ च्यारि साधन नाम वर्नन.

दोहा.

प्रथम विवेक विराग पुनि, समादि षट् संपात्ति;
कही चतुर्थ मुमुछुता, ये चव साधन सत्ति. १२

७ अथ विवेक लछन.

दोहा.

अविनासी आतम अचल, जग तातें प्रतिकूल;
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल. १३

टीका:— आत्मा **अविनासी** कहिये नास रहित है, औ **अचल** कहिये क्रिया रहित है, औ जगत आत्मातें **प्रतिकूल** कहिये विपरीत स्वभाव वाला है; विनासी है, औ चल है, या ज्ञानका नाम विवेक है, यह विवेकही सर्व साधनका मूल है. काहेतें, प्रथम विवेक होवै, तौ वैरागसें आदिलेके उत्तर साधन होवै हैं. औ विवेक नही होवै तौ उत्तर साधन होवै नही. यातें **वैराग, समादि षट्संपत्ति, मुमुछुता,** इनका **विवेक** हेतु है. १३

८ अथ वैराग लछन.

दोहा.

ब्रह्म लोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग;
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग. १४.

९ अथ समादि षट् नाम.

दोहा.

सम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम;
छठी तितिछा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम. १५

१० अथ सम दम लछन.

दोहा.

मन विषयनतें रोकनो, सम तिहिं कहत सुधीर;
इंद्रिय गनको रोकनो, दम भाषत बुध वीर. १६

११ अथ श्रद्धा समाधान लछन:

दोहा.

सत्य वेद गुरु वाक्य हैं, श्रद्धा अस विस्वास;
समाधान ताकूं कहत; मन विछेपको नास. १७

१२ अथ उपराम लछन.

चौपाई.

साधन सहित कर्म सब त्यागै,
लषि विष सम विषयनतें भागैं;
दृग नारी लषि व्है जिय ग्लाना,
यह लछन उपराम बषाना. १८

१३ अथ तितिछा लछन.

दोहा.

आतप सीत छुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव;
ताहि तितिछा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव. १९
समादि षट् संपत्तिको, भाषत साधन एक;
इम नव नांहि साधन भने, किंतु च्यारि साविवेक.२०

टीका:—समादि षट्की जो संपत्ति कहिये प्राप्ति, सो एक साधन करिके गिनिये है. यातें नव साधन नही. किंतु साविवेक कहिये विवेकी जन च्यारी साधन कहे हैं. २०

११ अथ मुमुछुता लछन

दोहा.

ब्रह्म प्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोछको रूप;
ताकी चाह मुमुछुता, भाषत मुनिवर भूप. २१.

टीका:—ब्रह्मकी प्राप्ति, औ अनर्थकी निवृत्ति मोछका स्वरूप है. ताकी इछाका नाम मुमुछुता है. मुमुछुता औ मुमुछुत्व पर्याय सब्द हैं. २१

दोहा.

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवनादिक त्रय मेलि;
तत्पद त्वंपद अर्थको, सोधन अष्टम भेलि. २२

टीका:—विवेकादिक च्यारि, श्रवन, मनन, निदिध्यासन, ये तीनि तत्पदके अर्थका औ त्वंपदके अर्थका सोधन, ये अष्ट ज्ञानके साधन हैं. २२

दोहा.

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग;
अंतरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग. २३

टीका:—पूर्व दोहेमें कहे विवेकादिक आठ अंतरंग साधन कहिये हैं; औ यज्ञादि कर्म बहिरंग साधन कहिये हैं. तिनमें बहिरंगनकूं जिज्ञासू त्यागे; औ अंतरंगकूं धारै. जिनका श्रवनमें अथवा ज्ञानमें प्रत्यछ फल होवै, सो अंतरंग साधन कहिये है. विवेकादिक

च्यारिका श्रवनमें उपयोग है. काहेतें, विवेकादिक बिना बहिर्मुख-कूं श्रवन बनै नही. तैसे **श्रवन, मनन निदिध्यासनका** ज्ञानमें उपयोग है; **श्रवनादिक** विना ज्ञान होवै नही. तैसे **तत्पदका अर्थ** औ **त्वंपदका अर्थ**, जाने विना भी अभेद ज्ञान होवै नही. इस रीतिसें विवेकादिक च्यारि साधनोंका श्रवनमें उपयोग है. औ श्रवनादिक च्यारि साधनोंका ज्ञानमें उपयोग है. यातें आठ अंतरंग साधन हैं.

१६ जाका ज्ञानमें अथवा श्रवनमें प्रत्यक्ष फल होवै नही; किंतु, अंतःकरनकी सुद्धि जाका फल होवै; सो ज्ञानका **बहिरंग साधन** कहिये है. ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं. यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं. तिनतें अंतःकरनकी सुद्धि बी कहना संभवै नही; तथापि सकाम पुरुषकूं संसारके हेतु हैं, औ निष्कामकूं अंतःकरनकी सुद्धिके हेतु हैं. इस रीतिसें निष्काम पुरुषके अंतःकरनकी सुद्धिद्वारा यज्ञादिक ज्ञानके हेतु हैं. यातें बहिरंग साधन कहिये हैं. औ विवेकादिक अंतरंग साधन कहिये हैं. बहिरंग नाम दूरिका है, औ अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म औ तिनके साधन स्त्री, धन, पुत्रादिकनकूं त्यागै; सो ज्ञानका अधिकारी है. ज्ञानके अधिकारीमें यज्ञादिक संभवै नही, यातें दूरि हैं.

१७. विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमें संभवै हैं, यातें समीप हैं. तिनमैंबी इतना भेद है:—विवेकादिकनका श्रवनमें उपयोग है. औ श्रवनादिकनका ज्ञानमें उपयोग है. यातें विवेकादिकनकी अपेछातें श्रवनादिक अंतरंग हैं. तिनकी अपेछातें विवेकादिक बहिरंग हैं. यद्यपि विवेकादिक बी ज्ञानके अंतरंग साधनही सर्व

ग्रंथनमें कहे हैं, बहिरंग नही कहे; तथापि विवेकादिकनका ज्ञान के साधन श्रवनमें प्रत्यछ फल है. औ श्रवनादिकनकी न्याई विवेकादिक जिज्ञासूकूं उपादेय हैं. यज्ञादिकनकी न्याई जिज्ञासूकूं हेय नही, यातें अंतुरंग कहे हैं. औ यज्ञादिकनकी अपेछातें बी अंतरंग हैं. यातें बी अंतरंग साधनोंमें कहे हैं.

१८. औ विचारसें देषिये तौ ज्ञानके **मुष्य अंतरंग साधन तत्वमसि आदिक महावाक्य** हैं. श्रवनादिक बी नही. काहितें, युक्तिसें वेदांत वाक्यनका तात्पर्य निश्चय **श्रवन** कहिये है. जीव ब्रह्मके अभेदकी साधक, औ भेदकी बाधक युक्तियोंसें अद्वितीय ब्रह्मका चिंतन **मनन** कहिये है. अनात्माकार वृत्तिका व्यवधान रहित ब्रह्माकार वृत्तिकी स्थिति, **निदिध्यासन** कहिये है. निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थाकूंही **समाधि** कहै हैं. यातें समाधिका बी निदिध्यासनमैं अंतरभाव है; पृथक् साधन नही. ये श्रवन मनन निदिध्यासन ज्ञानके साछात साधन नही. किंतु, बुद्धिके दोष जो असंभावना, औ विपरीत भावना, ताके नासक हैं. संसयकूं **असंभावना** कहै हैं. विपर्ययकूं **विपरीतभावना** कहै हैं.

१९. श्रवनसें प्रमानका संदेह दूरि होवै है, औ मननसें प्रमेयका संदेह दूरि होवै है. वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं! ऐसा प्रमाणमें संदेह होवै, सो श्रवनसें दूरि होवै है. औ जीव ब्रह्मका अभेद सत्य है, अथवा भेद सत्य है! ऐसा प्रमेयमैं संदेह होवै, सो मननसें दूरि होवै है. देहादिक सत्य हैं; औ जीव ब्रह्मका भेद सत्य है. ऐसे ज्ञानकूं **विपरीतभावना** कहै हैं. ताहीकूं **विपर्जे** कहै हैं; ताकूं निदिध्यासन दूरि करै है. इस रीतिसें श्रवनादिक तीन असंभावना विपरीत भावनाके नासक हैं, औ असंभावना

औ विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं. यातें ज्ञानका जो प्रति-बंधक, ताके नास द्वारा श्रवनादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं; साछात हेतु नही.

२०. ज्ञानके साछात साधन श्रोत्र संबंधि बेदांत वाक्य हैं. सो बेदांत वाक्य दो प्रकारके हैं:—एक **आवांतर वाक्य** है, एक **महा वाक्य** है. परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य, सो **अवांतर वाक्य** कहिये है. जीव परमात्माकी एकता बोधक वाक्य **महावाक्य** कहिये है. अवांतर वाक्यसें परोछज्ञान होवै है, महा-वाक्यसें अपरोछ ज्ञान होवै है. "**ब्रह्म है**" इस ज्ञानकूं **परोछ ज्ञान** कहे हैं. "**ब्रह्म मैं हूं**" इस ज्ञानकूं **आपरोछ ज्ञान** कहे हैं. "**त्वं ब्रह्म**" ऐसा आचर्यने उच्चारन किया जो वाक्य, ताका श्रोताके कर्नसें संबंध होतेही "**मैं ब्रह्महूं**" ऐसा अपरोछ ज्ञान श्रोताकूं होवै है. औ श्रोताके कर्नसें वाक्यका संबंध हुए बिना ज्ञान होवै नही. यातें श्रोत्रसंबंधी वाक्यही ज्ञानका हेतु है. श्रो-त्रसंबंधि अवांतर वाक्य परोछ ज्ञानका हेतु है. औ श्रोत्र संबंधि महावाक्य अपरोछ ज्ञानका हेतु है. महावाक्यसें सर्वकूं अपरोछही ज्ञान होवै है; परोछ नही होता.

२१. औ एक देसीका यह मत है:— **श्रवन, मनन, निदि-ध्यासन सहित वाक्यतें अपरोछ ज्ञान होवै हैं. केवल वाक्यतें परोछ ज्ञान होवे है; अपरोछ नही.** जो केवल वाक्यतेंही अपरो-छ ज्ञान होवै, तौ श्रवन मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे! यद्यपि सिद्धांत मतमें केवल वाक्यतें अपरोछ ज्ञान होवै है; औ श्रवना-दिकनतें असंभावना विपरीत भावनाका नास होवै है; यातें श्रवनादिक व्यर्थ नही. तथापि जा वस्तुका अपरोछ ज्ञान होवै, ताकेविषे असंभावना विपरीत भावना काहूकूं बी होवै नही.

यातै केवल वाक्यतें अपरोक्ष ज्ञान वादीके सिद्धांतमें "तत्वमसि" आदिक वाक्यनतें अपरोक्ष ज्ञान ब्रह्मका हुवेतें, पाछे असंभावना विपरीत भावना संभवै नहीं. यातें श्रवनादिक साधन व्यर्थ होवैंगे। औ केवल वाक्यतें परोक्ष ज्ञान होवै है, श्रवन मनन निदिध्यासन कियेतें अपरोक्ष ज्ञान होवै है. या मतमें श्रवनादिक व्यर्थ नही. यह बहुत ग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नही. काहेतें:—

२२. सब्दका यह स्वभाव है, जो वस्तु व्यवहित होवै, ताका सब्दसें परोक्षही ज्ञान होवै है. किसी प्रकारतें व्यवहित वस्तुका सब्दसें अपरोक्ष ज्ञान होवै नही. जैसे व्यवहित स्वर्गका, औ इंद्रादिक देवनका, सास्त्ररूपी सब्दतें परोक्षही ज्ञान होवै है. औ जो वस्तु अव्यवहित होवै, ताका सब्दसें अपरोक्ष ज्ञान औ परोक्ष ज्ञान दोनूं होवै हैं. जहां अव्यवहित वस्तुकूं सब्द अस्तिरूपतें बोधन करै, तहां अव्यवहितका बी परोक्ष ज्ञान होवै है; जैसे "दसम पुरुष है." इस रीतिसें अस्तिरूपतें बोधन किया जो अव्यवहित दसम, ताका सब्दसें परोक्षही ज्ञान हुवा है. औ जहां अव्यवहित वस्तुकूं "यह है" इस रीतिसें सब्द बोधन करै, तहां अव्यवहितका सब्दसें अपरोक्ष ज्ञानही होवै है; परोक्ष नही. जैसे "दसमा तूं है" इस रीतिसें सब्दने बोधन किया जो दसमा, ताका अपरोक्ष ज्ञानही हुवा है. तैसे ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेतें अत्यंत अव्यवहित है; ताकूं अवांतर वाक्य अस्तिरूपतें बोधन करै है. यातें अव्यवहित ब्रह्मका बी अवांतर वाक्यतें परोक्ष ज्ञान होवै है. औ "दसमा तूं है" इस वाक्यकी न्याई श्रोताका आत्मारूप करिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है. यातें महावाक्यतें अव्यवहित ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान संभवै नही. किंतु अपरोक्ष ज्ञानही होवै है.

२३. और जो कह्या " जा वस्तुका अपरोक्ष ज्ञान होवै, ताके विषे असंभावना विपरीत भावना होवै नही, यातें श्रवनादिक विफल होवैंगे. " सो संका बनै नही. काहेतें, जैसे राजाकूं भर्तृ का नेत्रसें अपरोक्ष ज्ञान हुवेतें बी विपरीत भावना दूरि हुई नही. तैसें महावाक्यतें ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान होवै है. परंतु जाकी बुद्धिमैं असंभावना विपरीत भावना दोष होवै, ताका दोषरूप कलंक सहित ज्ञान फलका हेतु नहीं; दोषकी निवृत्ति वास्ते श्रवनादिक करै. जाकी बुद्धिमैं दोष नही, सो न करै. इस रीतिसें **ज्ञानके साधन महावाक्य हैं; श्रवनादिक नही.** परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष है; ताके नासक हैं. यातें श्रवनादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं. श्रवनादिकनके हेतु विवेकादिक हैं; यातें विवेकादिक ज्ञानके साधन कहिये हैं. विवेकादिक च्यारि साधन संयुक्त जो पुरुष है, सो **अधिकारी** है. २३

२४ अथ संबंध बर्नन.

दोहा.

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबंध;
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फंध. २४

टीका:— ग्रंथका औ विषयका **प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव संबंध** है. ग्रंथ प्रतिपादक है, औ विषय प्रतिपाद्य है. जो प्रतिपादन करनेवाला होवै, सो प्रतिपादक कहिये है. जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवै, सो प्रतिपाद्य कहिये है. अधिकारीका औ फलका **प्राप्य प्रापकभाव संबंध** है. फल प्राप्य है, औ अधिकारी प्रापक है. जो वस्तु प्राप्त होवै, सो प्राप्य कहिये है. जाकूं प्राप्त

होवै, सो प्रापक कहिये है. अधिकारीका औ विचारका कर्तृ कर्तृव्यभाव संबंध है. अधिकारी कर्त्ता है, औ विचार कर्तव्य है. जो करनेवाला होवै, सो कर्त्ता कहिये है, औ करने योग्य होवै, सो कर्त्तव्य कहिये है, ग्रंथका औ ज्ञानका जन्य जनकभाव संबंध है. विचार द्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है, औ ज्ञान जन्य है. जो उत्पत्ति करनेवाला होवै, सो जनक कहिये है, जाकी उत्पत्ति होवै, सो जन्य कहिये है. इससें आदिलेके और बी संबंध जानि लेने. २४

२५ अथ विषय बर्नन.

दोहा.

जीव ब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि;
तिनकों जे अंतर लहै, ते मति मंद अबुद्धि. २५

टीका:—जीव ब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है, जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है. या ग्रंथविषे जीव ब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है. यातें सो एकता ग्रंथका विषय है. सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करै है. यातें जीव ब्रह्मका भेद कहै हैं, ते पुरुष सठ हैं; औ वेदके विरोधी हैं. २५

२६ अथ प्रयोजन बर्नन.

दोहा.

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि;
जगत समूल अनर्थ पुनि, व्है ताकी अति हानि. २६

टीका:—प्रपंचका कारन जो अज्ञान, औ प्रपंच, जन्म मरनरूपी

दुषका हेतु है; यातें अनर्थ कहिये है. ता **अनर्थकी निवृत्ति,** औ **परमानंदकी प्राप्ति मोच्छ** कहिये है. सो **ग्रंथका परम प्रयोजन** है; औ अवांतर प्रयोजन ज्ञान है. जाविषे पुरूषकी अभिलाषा होवै, सो **परम प्रयोजन** कहिये है; औ ताकूं पुरूषार्थ बी कहिये है. सो अभिलाषा दुषकी निवृत्तिविषे औ सुषकी प्राप्तिविषे सर्व पुरूषनकी होवै है; सोई **मोछका स्वरूप** है. यातें परम प्रयोजन मोछ है; औ ज्ञान नहीं है. काहेतें सुषकी प्राप्ति औ दुषकी निवृत्तिका साधन तौ ज्ञान है, औ सुषकी प्राप्ति वा दुषकी निवृत्तिरूप ज्ञान नही. यातें आवांतर प्रयोजन ज्ञान है. जा वस्तु द्वारा परम प्रयोजनकी प्राप्ति होवै, सो **अवांतर प्रयोजन** कहिये है; ऐसा ज्ञान है. काहेतें ग्रंथकारिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परम प्रयोजनकी प्राप्ति होवै है. यातें ज्ञान अवांतर प्रयोजन है. २६

२७ संकापूर्वक उत्तरका कवित्त.

जीवको स्वरूप अति आनंद कहत वेद,
ताकूं सुख प्राप्तिको असंभव बषानिये;
आगे जो अप्राप्त वस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्य प्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किम मानिये ?
ऐसी संका लेस आनि कीजे न विस्वास हानि,
गुरुके प्रसादतें कुतर्क भले भानिये;
करको कंकन षोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतें मिलत इम प्राप्त प्राप्ति जानिये. २७

२८. टीका:—पूर्व कह्याथा "अनर्थकी निवृत्ति, औ परमानंदकी

प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है." सो बनै नही. काहेतें, सर्व वेद जीवकूं परमआनंद स्वरूप वर्नन करै हैं. औ तुम अंगीकार बी करो हो. औ जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्ति संभवै है. सदा प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नही. यातें सदा परम आनंद स्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्व प्रकार करिके असंभव है; ऐसी कोऊ संका करै है.

२९. ता संकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजनमें विश्वास दूरि नही करना. किंतु, आत्मविद्याके उपदेस करनेवाला जो गुरु है, तिनकी कृपातें संकारूपी जो कुतर्क है, सो दृष्टांतसें दूरि करि देना. सो **दृष्टांत** कहिये है:– जैसे काहूके हाथमें कंकन होवै, ताकूं ऐसा भ्रम होई जावै जो "मेरा हाथका कंकन षोया गया," तब वाकूं किसीके कहेसें कंकनका ऐसा ज्ञान होय जावै जो "मेरा कंकन हाथमें है."तब वह ऐसे कहे है:–"मेरा कंकन मिलगया है." इस रीतिसें प्राप्त जो कंकन है, ताकी बी प्राप्ति कहिये है. तैसे **परमानंद स्वरूप आत्मा**विषे अविद्याके बलसें ऐसी भ्रांति होवै है,"आत्मा परम आनंद स्वरूप नही है; किंतु, परमानंद स्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका औ मेरा वियोग होय गया है. उपासनाकरिके ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होउंगा." इस रीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ष प्रानियोंको होई रही है. यद्यपि बहुत पंडित बी ऐसे कहे हैं, तथापि वे मूर्षही हैं. काहेतें, जो जीव ब्रह्मका वियोग अंगीकार करै हैं, ते मूर्ष कहिये है. तिन पुरुषनकूं उत्तम संस्कारसें जो कदाचित ब्रह्मज्ञानी आचार्यसें वेदांत ग्रंथके श्रवनकी प्राप्ति होय जावै, तब सुने अर्थकूं निश्चय करिके कहे हैं:–"परमानंद हमारेकूं ग्रंथ औ आचार्यकी कृपासें प्राप्त भया है." यह उनका कहनेका अभिप्राय है. आत्मा तौ परम आनंद स्वरूप आगे बी था; परंतु "मेरा आत्मा

परम आनंदरूप है." इस रीतिसें भान नही होवै था. यातें अप्राप्तकी न्याई था. आचार्यद्वारा ग्रंथ श्रवनसें परमानंदका बुद्धिविषे भान होवै है. यातें परमानंदकी प्राप्ति कहै हैं. इस रीतिसें प्राप्तकी बी प्राप्ति बननेतें, परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवै है. जैसे प्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है, तैसेः-

३०. नित्य निवृत्तिकी निवृत्ति बी प्रयोजन संभवै है. दृष्टांत.-जेवरीविषे सर्प नित्य निवृत्त है, औ जेवरीके ज्ञानसें निवृत्त होवै है; तैसें आत्माविषे संसार नित्य निवृत्त है, ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसें होवै है, यातें नित्य निवृत्तकी निवृत्ति, औ नित्य प्राप्तकी प्राप्ति; ग्रंथका प्रयोजन है. २७

३१ " कारन सहित जगतकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्ति, ग्रंथका प्रयोजन है;" यह पूर्व कह्या; सो संभवै नही. काहेतें, निवृत्ति नाम ध्वंसका है. ध्वंस औ नास दोनों पर्याय सब्द हैं. सो नास अभावरूप है. यातें मोक्षविषे भावरूपता, औ अभाव रूपता, दोनों प्रतीत होवै हैं. अनर्थकी निवृत्ति कहनेसें अभाव रूपता प्रतीत होवै है. औ परमानंदकी प्राप्ति कहनेसें भाव रूपता प्रतीत होवै है. सो दोनों एक पदार्थविषे बनै नही. काहेतें, भावरूपता औ अभावरूपता, दोनों आपसमें विरोधी हैं. जो विरोधी धर्म होवै, सो एक कालमैं एक वस्तुविषे रहै नही. यातें ग्रंथका प्रयोजन संभवै नही. ऐसी कोऊ संका करै है.

३२ ता संकाके उत्तरका दोहा.

अधिष्ठानतें भिन्न नहि, जगत निवृत्ति बखान;
सर्प निवृत्ती रज्जु जिम, भये रज्जुको ज्ञान २८.

टीका.-कारण सहित जगतकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है;

यातें पृथक् नही. जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान जेवरी रूप है. सारे कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातें पृथक् नही. यह भाष्यकारका सिद्धांत है. यातें इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है. काहेतें, जो सर्व अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म भावरूप है. यातें अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतें, ग्रंथका प्रयोजन बनै है. यह वार्त्ता सिद्ध भई. २८

दोहा.

जो जन प्रथम तरंग यह, पढै ताहि तत्काल;
करहु मुक्त गुरु मूर्ति व्है, दादू दीन दयाल. २९.

इति अनुबंध सामान्य निरूपनं नाम प्रथमस्तरंगः
समाप्तः १.

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीविचार सागरे.

द्वितीय स्तरंगः प्रारंभः

अथ अनुबंध विशेष निरूपनं.

दोहा.

याके प्रथम तरंगमैं, किय अनुबंध विचार;
कहूं व द्वितिय तरंगमैं, तिनहीको विस्तार. १

३३. टीकाः— च्यारि साधन युक्त अधिकारी कह्या. तिन च्यारि साधनमैं मुमुछुता गिनी है. मोछकी इच्छाका नाम मुमुछुता है. कारन सहित जगतकी निवृत्ति, औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोछ कहिये है. ताकेविषे कारन सहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछका अंस, ताकूं कोऊ चाहै नही ! यह वार्त्ताः—

३४ पूर्वपछी प्रतिपादन करै है.

अथ अधिकारी षंडन.

दोहा.

मूल सहित जग ध्वंसकी, कोउ करत नहि आस;
किंतु विवेकी चहत हैं, त्रिविधि दुषनको नास. २

टीकाः— मूल अविद्या सहित जो जगतका ध्वंस कहिये निवृत्ति,

ताकी आस कहिये इच्छा, कोउ पुरुष करै नही है. किंतु कहिये कहा करै है? तीनि प्रकारके जो दुष हैं, तिनका नास विवेकी पुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय है:— दुष तीनि प्रकारके हैं:—एक तौ अध्यात्म दुष है, दूसरा अधिभूत दुष है, औ तीसरा अधिदैव दुष है. रोग छुधादिकनतें जो दुष होवै, सो अध्यात्म दुष कहिये है. चोर व्याघ्र सर्पादिकनतें जो दुष होवै, सो अधिभूत दुष कहिये है. यछ राछस प्रेत ग्रहादिक, औ सीत वात आतपतें जो दुष होवै, सो अधिदैव दुष कहिये है. इस रीतिसें तीन भांतिके जो दुष हैं, तिनके नासकी सर्व पुरुषनकूं इछा है. दुषसें भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नासकी विवेकी पुरुष इछा करै नही. यातें अज्ञान सहित सकल जगतकी निवृत्तिकी काहूकूं इछा बनै नहीं.

२५. औ जो सिद्धांती ऐसे कहै:— "यद्यपि सकल पुरुष दुष निवृत्तिकी इछा करै हैं; तथापि अज्ञान सहित सर्व जगतकी निवृत्ति बिना दुषनकी निवृत्ति होवै नही. यातें दुष निवृत्तिके निमित्त अज्ञान सहित जगतकी निवृत्तिकूं बी चाहै हैं"; सो बनै नही. काहेतें:—

२६. जो आयुर्वेदमें औषध कहे हैं, तिनतें रोगजन्य दुषकी निवृत्ति होवै है. औ भोजनसें छुधाजन्य दुषकी निवृत्ति होवै है इस रीतिसें अपने अपने उपायनतें सर्व दुषनकी निवृत्ति होवै है. यातें अज्ञान सहित जगतकी निवृत्ति बिना बी दुषनकी निवृत्ति बनै है. दुषनकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञान सहित जगतकी निवृत्तिकी चाहना बनै नही २. "कारन सहित जगतकी निवृत्ति, औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोछ कहिये है." ताके विषे कारन सहित जगतकी निवृत्ति

रूप मोछके अंसकी बी इछा काहूकूं बनै नहीं; यह वार्ता प्रथम दोहा विषे कही.

३७. **ब्रह्म प्राप्ति रूप मोछके द्वितीय अंसकी बी इछा काहूकूं बनै नही; यह वार्ता:-**

पूर्व पछी कहै है.

दोहा.

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इछा होइ;
ब्रह्म नही अनुभूत इम, चहै न ताकूं कोइ. ३

टीका:- जा वस्तुका **अनुभव** कहिये ज्ञान होय, ता वस्तुकी प्राप्तिकी इछा होवै है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नही, ताकी प्राप्तिकी इछा बी होवै नही. जैसे अन्य देसके अनंत पदार्थ अज्ञात हैं, तिनकी प्राप्तिकी इछा काहू पुरुषकूं होवै नही, औ अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नही. औ जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नही; किंतु मुक्त है. ताकूं ब्रह्म प्राप्तिकी इछा बनै नही. यातें वेदांत श्रवनतें पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इछा बनै नही. इस रीतिसें अज्ञान सहित जगतकी निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोछ, ताकी इछा काहूकूं बनै नहीं. यातें मुमुछु कोउ है नही. ३

३८. **अन्य रीतिसें अधिकारीका अभाव:-**

पूर्व पछी प्रति पादन करै है.

दोहा.

चहत विषय सुख सकल जन, नही मोछको पंथ;
अधिकारी यातें नही, पढै सुनै जो ग्रंथ. ४

•टीका:—सर्व पुरुष विषय सुषकूं चाहै है, और जो कोई सकल विषयनका त्याग करिके तपविषे आरूढ है, सो बी परलोकके उत्तम भोगनकी इछा करिके नाना क्लेस संहारै हैं. यातें इस लोकका, अथवा परलोकका विषय सुष सर्व चाहै हैं, सो विषय सुष मोक्षविषे है नही; यातें •मोछका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नही. इस रीतिसें मोछकी इछारूप मुमुक्षुता बनै नही. औ सकल पुरुषनकूं विषय सुषकी इछा होवै है; यातें वैराग्य, सम, दम, उपराति बी काहू विषे बनै नही. यातें चतुष्टयसाधन सहित अधिकारीका अभाव होनेतें ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ४

३९ अथ विषय षंडन.

पूर्वपछ.

दोहा.

जीव ब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर;
क्लेस रहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेसको मूर. ५

टीका:— पूर्व कह्या जो "जीव ब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नही. काहेतें, ब्रह्म तौ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेस, इन पंच क्लेसतें रहित है, औ विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीय भेद रहित है, काहेतें, ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नही. औ जीव विषे सर्व क्लेस हैं; औ परिछिन्न हैं, औ जीव नाना हैं; काहेतें, जितने सरीर हैं, उतने जीव हैं; जो सर्व सरीरविषे जीव एक होवै, तौ एक सरीरमें सुष अथवा दुष होनेतें सर्व सरीरविषे सुष औ दुष हुवा चाहिये.

४०. औ जो वेदांती कहै हैं, "सुषसें आदि लेके अंत:करनके धर्म हैं, सो अंत:करन नाना हैं, यातें एकके सुषी दुषी होनेतें सर्व सुषी दुषी नही होवे हैं. औ साछी सुष दुषतें रहित है, एक हैं, औ सर्व क्लेसतें रहित है, औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनैं है." सो वार्त्ता बनैं नही. काहेतें:—

४१. जो कर्त्ता भोक्ता जीव है, तिसतें भिन्न साछी वंध्या पुत्रके समान है. औ जो साछी अंगीकार बी करौ, सो बी एक बनै नही; नाना साछी मानने होवैंगे. काहेतें, यह वेदांतका सिद्धांत है:— 'अंत:करन औ सुष दुषसें आदिलेके अंत:करनके धर्म, ये इंद्रिय औ अंत:करनके विषय नही; किंतु साछीके विषय हैं. काहेतें, इंद्रिय तौ पंचीकृत भूतनकूं विषय करै हैं. यामें इतना भेद है:— नेत्र इंद्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है, ताके रूपकूं, औ रूपके आश्रयकूं, दोनूवांकूं विषय करै है; जैसे नील पीतादिक घटका रूप, औ तिस रूपके आश्रय घटकूं, नेत्र इंद्रिय विषय करै है. औ त्वचा इंद्रिय बी स्पर्सकूं, औ ताके आश्रयकूं, दोनूवांकूं विषय करै है. औ रसना, घ्रान, श्रवन ये तीनि तौ रस, गंध, शब्द मात्रकूं विषय करै है; तिनके आश्रयकूं विषय करै नही. यातें इन तीनूवांसें तौ अंत:करनका ज्ञान बनै नही. औ नेत्रसें तथा त्वचासें अंत:करनका ज्ञान बनै नही. काहेतें, पंचीकृत भूत, अथवा पंचीकृत भूनतका कार्य, जो रूपवान अथवा स्पर्सवान होवै, सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवै है. अंत:करन अपंचीकृत भूतनका कार्य है, यातें नेत्र औ त्वचाका बी विषय नही. इसी कारनतें अपंचीकृत भूतनका कार्य नेत्र इंद्रिय बी नेत्रका विषय नही है. औ बाह्य वस्तु इंद्रियका विषय होवै है, औ अंत:करन इंद्रियकी अपेछातें अंतर है. यातें बी इंद्रियनका विषय नही.

४२. **औ अंतःकरनकी वृत्तिका बी अंतःकरन विषय नही.** काहेतें, अंतःकरन वृत्तिका आश्रय है, यातें अंतःकरन अपनी वृत्तिका विषय बनै नही, जैसे अग्नि दाहका आश्रय है, सो दाहका विषय नही होवै है. किंतु अग्निसें भिन्न जो काष्ठसें आदि लेके वस्तु हैं, सो दाहका विषय होवै हैं. तैसे अंतःकरनसें भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरन जन्य वृत्तिके विषय हैं, औ अंतःकरन नही.

४३. **तैसे अंतःकरनके धर्म बी अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नही;** काहेतें अंतःकरनकूं विषय करने वास्ते जो अंतःकरनकी वृत्ति होवै, तौ अंतःकरनके धर्म जो सुखादिक हैं; तिनकूं बी विषय करै. सो अंतःकरनकूं विषय करने वाली वृत्ति तौ अंतःकरनके सन्मुख होवै नही. यातें अंतःकरनके धर्म बी अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नही. **औ यह नियम है:–** जो वृत्तिके आश्रयसें किंचित् दूरि वस्तु होवै, सो वृत्तिका विषय होवै है. जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसें अत्यंत समीप होवै, सो वृत्तिका विषय होवै नही. जैसे नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यंत समीप अंजन नेत्रकी वृत्तिका विषय नही. तैसे अंतःकरनकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरन, ताके अत्यंत समीप जो सुखसें आदि लेके धर्म, सो अंतःकरनकी वृत्तिके विषय बनै नही. इस रीतिसें धर्म सहित अंतःकरनका इंद्रियतें अथवा अपनेतें भान बनै नही; **किंतु साक्षीके विषय हैं.**

४४. **सो साक्षी एक अंगीकार करैं, तौ जैसे एक अंतःकरनके सुख दुखका साक्षीसें भान होवै है, तैसे सर्वके सुख दुखका भान हुवा चाहिये. यातें साक्षी नाना हैं.** जब नाना सा

छी अंगीकार करिये, तब दोष नही. काहेतें, जा साछीकी उपाधि अंत:करन है, ता साछीसें अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है. यातें सर्वके सुष दुषका भान होवै नही. इस रीतिसें नाना जो साछी, तिनूकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नही. ५

४५ अथ प्रयोजन षंडन.

पूवपछ.

दोहा.

बंध निवृत्ती ज्ञानतें, बनै न बिन अध्यास;
सामग्री ताकी नही, तजो ज्ञानकी आस. ६

टीका:– "अहंकारसें आदिलेके जो अनात्म वस्तु है, सो बंध कहिये है." सो बंध जो अध्यास रूप होवै, तौ ज्ञानतें निवृत्त होवै, औ आध्यासरूप नही होवै, तौ ज्ञानतें निवृत्त होवै नही. काहतें **ज्ञानका यह स्वभाव** है:–जा वस्तुका ज्ञान होवै, ताकेविषे अध्यास औ अज्ञान, तिनकूं दूरि करै है; जैसे जेवरीका ज्ञान, जेवरीविषे सर्प अध्यासकूं, औ जेवरीके अज्ञानकूं दूरि करै है. भ्रांति ज्ञानका विषय जो मिथ्या वस्तु, औ भ्रांति ज्ञान, ताका नाम **अध्यास** है. जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नही है; किंतु सत्य है. ताकी ज्ञानसें निवृत्ति होवै नही. तैसे आत्माविषे अहंकार-सें आदिलेके बंध जो **अध्यास** कहिये मिथ्या होवै, तौ ज्ञानसें निवृत्ति होवै. सो आत्माविषे मिथ्या बंधकी सामग्री है नही, औ बंध प्रतीति होवै है. यातै **बंध सत्य** है. ता सत्य बंधकी ज्ञानसें निवृत्तिकी आसा निष्फल है. ६

४६ अथ अध्यास सामग्री निरूपनं.

दोहा.

सत्य वस्तुके ज्ञानतें, संसकार इक जान;
त्रिविधि दोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान.७

टीका:—सत्य वस्तुके ज्ञान जन्य **संस्कार**, औ तीन प्रकारके दोष; **प्रमाताका दोष, प्रमानका दोष, प्रमेयका दोष,** औ **अधिष्ठानके विशेष रूपका अज्ञान** इतनी **अध्यासकी सामग्री है.** या बिना अध्यास होवै नही. जैसे सीपीमें रूपेका, औ जेवरीमें सर्पका अध्यास होवै है; सो जा पुरुषने सत्य रूपा औ सर्प देख्या है, ताकूं होवै है. औ जाकूं सत्य रूपेका औ सर्पका ज्ञान नही, ताकूं होवै नही. यातें सत्य वस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं. औ सीपीमें सर्पका, जेवरीमें रूपेका, अध्यास होवै नही, यातें प्रमेयविषे सादृस्य दोष अध्यासका हेतु है. इस रीतिसें प्रमाताविषे लोभ भयसें आदि लेके, औ नेत्रादिक प्रमानविषे पित्त कामलसें आदि लेके जो दोष, सो अध्यासके हेतु हैं. औ सीपीका "इदं" रूप करिके सामान्य ज्ञान होवै, औ "यह सीपी है," ऐसा विशेष ज्ञान नही होवै, जब अध्यास होवै है. "सीपी ह" ऐसा विशेष रूप करिके ज्ञान होवै, जब अध्यास होवै नही. औ सामान्यरूप करिके ज्ञान नही होवै, तौ बी अध्यास होवै नही. यातें अधिष्ठानका विशेषरूप करिके अज्ञान, औ सामान्यरूप करिके ज्ञान, अध्यासका हेतु है. **इतनी अध्यासकी सामग्री है.** इनमें कोई एक नही होवै तौ बी अध्यास होवै नही. जैसे कुलाल, चक्र, दंड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है. कोई एक नही होवै तौ घट होवै नही. तैसे अध्यास बी सारी सामग्रीसें होवै है.

४७. **औ बंधके अध्यासमें एक बी कारन है नही.** बंध कहू सत्य होवै, तौ ताके ज्ञान जन्य संस्कारतें आत्माविषे मिथ्या बंध प्रतीत होवै; सो सिद्धांतमें आत्मासें भिन्न कोई सत्य वस्तु है नही; यातें सत्य बंधके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनेतें, **आत्माविषे बंधका अध्यास बनै नही.**

४८. **तैसे आत्माका औ बंधका सादृस्य बी है नही.** उलटा तम प्रकासकी न्याई विपरीत स्वभाव है. आत्मा प्रत्यक् है, औ बंध पराक है. **प्रत्यक्** नाम अंतरका है, औ **पराक** नाम बाह्यका है. आत्मा विषयी है, औ बंध विषय है. जो प्रकास करने वाला होवै, सो **विषयी** कहिये है. जाका प्रकास करिये सो **विषय** कहिये है. प्रत्यक्‌विषे पराकका, तथा पराकविषे प्रत्यक्‌का अध्यास होवै नही. जैसे पुत्रादिकनकी अपेछातें देह प्रत्यक् है, ताकेविषे पुत्रादिकनका, औ पुत्रादिकविषे देहका अध्यास होवै नही. औ विषयमें विषयीका, तथा विषयीमें विषयका, अध्यास होवै नही. जैसे विषय जो घटादिक तिनविषे विषयी दीपकका, औ दीपकविषे घटादिकनका, अध्यास होवै नही. तैसे सादृस्यके अभाव होनेतें प्रत्यक् विषयी जो आत्मा, ताविषे पराक विषयरूप बंधका अध्यास बनै नही. प्रत्यक्‌का औ पराकका विरोध है. विषयका औ विषयीका विरोध है; सादृस्य नही. **यातें बंधका अध्यास आत्माविषे बनै नही.**

४९. **तैसे प्रमाताके दोषका, औ प्रमानके दोषका बी अभाव है.** काहेतें, "प्रमातासें आदि लेके सर्व प्रपंच अध्यासरूप है; सोई बंध है." **यह वेदांतका सिद्धांत है.** इस रीतिसें बंधके अध्याससें पूर्व प्रमाता प्रमानका **स्वरूप** असिद्ध है. औ ताका दोष बी असिद्ध है. यातें **बंधका अध्यास बनै नही.**

९०. औ अधिष्ठानका विसेषरूप करिके अज्ञान बी बनै नही. काहेतें, जो "बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयंप्रकास ज्ञानरूप है." ता स्वयप्रंकास ज्ञानरूप ब्रह्मविषे सूर्यविषे तमकी न्याई अज्ञान बनै नही. जैसे प्रकासमान सूर्यसें तमका विरोध है, तैसे चेतन प्रकास औ तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है. औ अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करैं, तौ बी बंधका अध्यास बनै नही. काहेतें, अत्यंत अज्ञातविषे, तथा अत्यंत ज्ञातविषे, अध्यास होवै नही. किंतु विशेष रूपसें अज्ञात, औ सामान्यरूपसें ज्ञात, होवै है. औ "ब्रह्म सामान्य विसेष भावसें रहित है. निर्विसेष है." **यह सिद्धांत है.** यातें विसेषरूपसें अज्ञात, औ सामान्यरूपसें ज्ञात, ब्रह्म बनै नही. औ अध्यासके लोभसें ब्रह्मविषे सामान्य विसेष भाव अंगीकार करोगे, तौ सिद्धांतका त्याग होवैगा. इस रीतिसें निर्विसेष जो प्रकासरूप ब्रह्म, ताका विसेष रूपसें अज्ञान, औ सामान्यरूपसें ज्ञानका अभाव होनेतें ताकेविषे अध्यास बनै नही. यातें "ब्रह्मविषे बंध अध्यासरूप है" यह कहना बनै नही; किंतु बंध सत्य है. ता सत्य बंधकी ज्ञानसें निवृत्तिका असंभव है. यातें **ज्ञानद्वारा मोछरूप प्रयोजन ग्रंथका बनै नही.** औ ज्ञानसें मोछका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नही. किंतु :—

९१ कर्मसें मोछ होवै है. यह वार्त्ता **एकभविक वादकी** रीतिसें प्रतिपादन करै है.

दोहा.

सत्य बंधकी ज्ञानतें, नही निवृत्ति सयुक्त;
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त. ८

टीका:—सत्य बंधकी ज्ञानसें निवृत्ति माननी **सयुक्त** कहिये

युक्ति सहित नही; किंतु अयुक्त है. यातें जो पुरुष मुक्त हुवा चाहै, सो **संतत** कहिये निरंतर **नित्य कर्म करै.** याका यह अभिप्राय है:—

९२. कर्म दो प्रकारका है; एक विहित है, औ एक निसिद्ध है. पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदने बोधन किया है, सो **विहित कर्म** कहिये है. औ पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है, सो **निषिद्ध कर्म** कहिये है. औ स्वभावसिद्ध जो क्रिया है, सो कर्म नही. काहेतें, जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है. सो कर्म कहिये है. **उदासीन क्रिया कर्म नही.** यातें दो प्रकारका कर्म है; तीन प्रकारका नही.

९३. विहित कर्म चार प्रकारका है:— एक **नित्य** है, औ **नैमित्तिक** है, **काम्य** है, औ **प्रायश्चित्त** है. पाप नासके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो **प्रायश्चित्त** कहिये है. जैसे प्रमादसें द्रव्यके ग्रहन जन्य जो यतिकूं पाप, ताके नासके निमित्त द्रव्यका त्याग, औ तीनि उपवास हैं. फलके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो **काम्य** कहिये है. जैसे वृष्टि कामकूं कारीरि याग है, औ स्वर्ग कामकूं अग्निहोत्र, सोमयागसें आदिलेके हैं. जा कर्मके नही कियेसें पाप होवै, औ कियेसें पुन्य पापरूप फल होवै नही, औ सदा जाका विधान नही, किंतु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवै, सो कर्म **नैमित्तिक** कहिये है; जैसे ग्रहन श्राद्ध है; औ अवस्था वृद्ध, जाति वृद्ध, आश्रम वृद्ध, विद्या वृद्ध, धर्म वृद्ध, ज्ञान वृद्ध पुरुषके आगमनतें उत्थानरूप कर्म है. **विद्या** सब्दसें सास्त्र ज्ञानका ग्रहन है; औ **ज्ञान** सब्दसें अपरोछ विद्याका ग्रहन है. पूर्व पूर्वसें उत्तर उत्तर उत्तम है. जाके नही कियेसें पाप होवै, कियेसें फल होवै नही; औ सदा जाका विधान होवै, सो **नित्यकर्म** कहिये है; जैसे स्नान संध्या

दिक हैं. इस रीतीसें च्यारि प्रकारका विहित, औ निषिद्ध मिलि-
के **पांच प्रकारका कर्म है.**

५४. **मोछकी इछावान काम्य औ निसिद्ध कर्म करै नही.** काहेतें, काम्य कर्मसें उत्तम लोककूं जावै है, औ निषिद्धसें नीच लोककूं जावै है. यातें दोनूंको त्याग करै, औ नित्य कर्म सदा करै, औ नैमित्तिकका जब निमित्त होवै, तब नैमित्तिक बी करै. काहेतें, नित्य नैमित्तिक कर्म नही करै तौ पाप होवैगा: ता पापसें नीच योनिकूं प्राप्त होवैगा. यातें पापके रोकने वास्ते नित्य नैमित्तिक कर्म करै. नित्य नैमित्तिक कर्मका और फल नही, यही फल है. जो तिनके नही करनेसें पाप होवै है, सो तिनके करनेसें होवै नही. यातें **मुमुछु नित्य नैमित्तिक कर्म अवस्य करै.**

५५. और जो कदाचित प्रमादसें निषिद्ध कर्म होय जावै, तौ ताका **दोष दूरि करनेकूं प्रायश्चित्त करै;** जो निषिद्ध कर्म नही किया होवै, तौ बी जन्मांतरके जो पाप हैं, तिनके दूरि करने वास्ते प्रायश्चित्त कर्म करै. परंतु इतना भेद है, प्रायश्चित्त दो प्रकार है:— एक तौ असाधारन है, औ एक साधारन है. जो किसी पाप विसेषके दूरि करने वास्ते सास्त्रने विधान किया होवै, सो **असाधारन प्रायश्चित्त** कहिये है; जैसे पूर्व कह्या उपवास है. औ सर्व पापके दूरि करने वास्ते सास्त्रने जो विधान किया कर्म, सो **साधारन प्रायश्चित्त** कहिये है, जैसे गंगास्नान औ-ईश्वरके नाम उच्चारन हैं; इसतें आदिलेके और बी जानि लेनै. इस-रीतिसें दो प्रकारके प्रायश्चित्त है. जो ज्ञात पाप होवै,तो तिस पापका नासक जो **असाधारन प्रायश्चित्त सास्त्रनें बोधन किया है, ताकूं करै.** औ जो जन्मांतरके अज्ञात पाप हैं, तिनके दूरि करने वा-

स्ते साधारन प्रायश्चित्त करै. काहेतें, असाधारन प्रायश्चित्त का यह स्वभाव है:– जा पापका नास करने वास्ते सास्त्रने जो प्रायश्चित्त विधान किया है, सो पाप प्रायश्चितसें दूरि होवै है, और नही. औ जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नही. जो कौनसा पाप है? किस प्रायश्चित्तसें दूरि होवैगा? यातें **साधारन प्रायश्चित्त करै.**

९६ **साधारन प्रायश्चित्तसें सर्व पाप दूरि होवै हैं.** यद्यपि गंगास्नानसें आदि लेके जो साधारन प्रायश्चित्त कहे, सो केवल प्रायश्चित्त रूप नही, किंतु काम्यरूप औ प्रायश्चित्त रूप हैं. काहेतें, " गंगास्नानसें उत्तम लोककी प्राप्ति" सास्त्रमें कही है. तैसे "ईश्वरके नाम उच्चारनसें बी उत्तम लोककी प्राप्ति " कही है. यातें काम्यरूप हैं; औ पापके नासक हैं, यातें प्रायश्चित्तरूप हैं; जैसे **अश्वमेध** ब्रह्महत्यादिक पापका नासक है. औ स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है. तैसे गंगास्नानादिक हैं; केवल प्रायश्चित्त नही. यातें गंगास्नानादिकनतें उत्तम लोककी प्राप्ति होवै है. सो मुमुक्षुकूं वांछित है नही. तथापि जाकूं उत्तम लोककी वांछा है, ताकूं तौ गंगास्नानादिक, पाप नास करिके उत्तम लोककूं प्राप्त करै है. जाकूं लोककी कामना नही है, ताके केवल पापहीके नासक हैं. यातें कामना सहित अनुष्ठान किये **काम्यरूप प्रायश्चित्त** हैं. लोक कामनासें विना अनुष्ठान किये **केवल प्रायश्चित्तरूप** हैं. जैसे **वेदांत मतमें** "संपूर्न कर्म सकाम पुरुषकूं संसारके हेतु हैं, औ निष्कामकूं अंत:करनकी शुद्धि करिके मोक्षके हेतु हैं." तैसे एकही गंगास्नान, तथा ईश्वरका नाम उच्चारन सकामकूं तौ काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं, औ निष्कामकूं केवल प्रायश्चित्तरूप हैं. यातें मुमुक्षु साधारन प्रायश्चित्त करै. इस रीतिसें जन्मां

तरके संपूर्न पापका ज्ञानसें विनाही नास होवै है.

९७. तैसे जन्मांतरके काम्य कर्म बी मुमुछुके वंध्याके समान हैं, फलके हेतु नही. काहेतें, जैसे कर्मके अनुष्ठान कालविषे पुरुषकी इछा फलका हेतु वदोंत मतमें अंगीकार करी है. इछा सहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादि फलके हेतु हैं; औ निष्काम अनुष्ठान किये स्वर्गादि फलके हेतु नही; यह वेदांतका सिद्धांत है. तैसे कर्मकी सिद्धिसें अनंतर बी पुरुषकी इछा फलका हेतु है. सो पुरुषकी इछा जिस कालमें पुरुष मुमुछु हुवा तब दूरि होई गई. यातें जन्मांतरके काम्य कर्म बी फलके हेतु नही. जैसे किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इछातें धनी पुरुषका आराधन किया होवै, ता धनीके आराधनसें अनंतर बी जो धनकी इछा दूरि होय जावै, तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नही. तैसे जन्मांतरके काम्य कर्मका बी मुमुछुकूं इछाके अभावतें फल होवै नही. इस रीतिसें केवल कर्मसें मोछ होवै है.

९८. वर्त्तमान जन्मविषे काम्य औ निषिद्ध किये नही, जातें ऊर्ध्व लोक अधो लोककूं जावै. जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध, औ काम्य, तिनका भोगसें नास होवै है. नित्य औ नैमित्तिकके नही करनेतें जो पाप होवै, सो तिनके करनेतें मुमुछुकूं होवै नही; औ जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं, तिनका साधारन प्रायश्चित्तसें नास होवै है. जन्मांतरका संचित काम्य कर्म मुमुछुकूं इछाके अभावतें फल देवै नही. यातें मुमुछु नित्य नैमित्तिक औ साधारन प्रायश्चित्त रूप कर्म करै. औ वर्त्तमान जन्मका ज्ञात निषिद्ध कर्म होवै, तौ असाधारन प्रायश्चित्त करै; अथवा नित्य औ नैमित्तिक ही करै; प्रायश्चित्त नही करै. काहेतें, जो संचित निषिद्ध कर्म, औ काम्य कर्म, सो मुमुछुके नास होय जावै हैं; जैसे ज्ञानवानके

संचित कर्मका नास **वेदांतमतमें** अंगीकार किया है; तैसे निषिद्ध काम्यका त्याग करिके नित्य नैमित्तिक कर्मविषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु, ताके संचित कर्मका नास होवे है; अथवा संचित जो काम्य, औ निषिद्ध, सो सारे मिलिके एक जन्मका आरंभ करै है. यातें मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवे है; अथवा **योगीके कायव्यूहकी** न्याई, एक ही कालविषे सारे संचित अनंत सरीरनका आरंभ करै है; तिनतें मुमुक्षु उत्तर जन्मविषे सर्वका फल भोग लेवै है. अथवा नित्य औ नैमित्तिक कर्मके अनुष्ठानतें जो क्लेस होवै है; सो जन्मांतरके संचित निषिद्ध कर्मका फल है. यातें जन्मांतरका संचित निषिद्ध और जन्मका आरंभ करै नही. काम्य जो संचित है, सो एक जन्म अथवा एक कालमें, अनंत सरीरनका आरंभ करै है. यातें मुमुक्षुकूं उत्तर जन्मविषे दुःखका लेस बी होवै नही; केवल सुखका भोग होवै है. काहेतें, जन्मांतरके संचित जो विहित कर्म हैं, तिनतें सरीर हुवा है. औ संचित जो निषिद्ध हैं, सो नित्य नैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेसतें पूर्व जन्मविषे भोगिलिये; इस रीतिसें प्रायश्चित्तसें बिना **केवल नित्य औ नैमित्तिक कर्मके अनुष्ठानतें मोक्ष होवै है**. यातें नैमित्तिक कर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै. औ नित्य कर्म संतत अनुष्ठान करै. या मतकूं सास्त्रमें **एकभविक वाद** कहै हैं.

९९. यातें बी **बंधकी निवृत्ति ज्ञान द्वारा ग्रंथका प्रयोजन नही.** काहेतें, जो वस्तु औरसें होवै नही, सो मुख्य प्रयोजन होवै है. जैसे रूपका ज्ञान नेत्रविना औरसें होवै नही; सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है. औ बंधकी निवृत्ति ग्रंथसें बिना कर्मतें होवै है. यातें बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नही. इस

रीतिसें **ग्रंथके अधिकारी, विषय, प्रयोजन बनै नही.**

६०. अधिकारी आदिकांके अभावतें **संबंध बी बनै नही.** काहेतें, विषयके अभावतें ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव संबंध बनै नही; अधिकारी औ फलके अभावतें, तिनका प्राप्य प्रापक भाव संबंध बनै नही. अधिकारीके अभावतें, ताका औ विचारका कर्तृ कर्त्तव्य भाव संबंध बनै नही. ज्ञानकूं निष्फलता होनेतें ग्रंथका औ ज्ञानका जन्य जनक भाव संबंध बनै नही. सफल वस्तु जन्य होवे है. पूर्व कही रीतिसें ज्ञान सफल है नही, औ ज्ञानके स्वरूपका बी अभाव है. यातें बी ज्ञानका औ ग्रंथका संबंध बनै नही. काहेतें, **जीव ब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतमें ज्ञान है.** सो अभेद निश्चय बनै नही. काहेतें, जीव ब्रह्मका अभेद है नही. यह वार्त्ता विषयके निराकरनमें पूर्व प्रतिपादन करी है. यातें अभेद निश्चयरूप ज्ञान बनै नही. इस रीतिसें अधिकारी आदिक अनुबंधनके अभावतें **ग्रंथका आरंभ बनै नही.**

६१ अथ पूर्वपछी क्रमतें उत्तर.

पूर्व पछीने प्रथम कह्या "जो मोछकी इछा काहूकूं बनै नही. काहेतें, 'मोछविषे दो अंस हैं:— एक तौ कारन सहित जगतकी निवृत्ति मोछका अंस है, औ दूसरा अंस ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है.' तिनविषे कारन सहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथम अंसकी इछा काहूकूं है नही, किंतु तीन प्रकारके दुषकी निवृत्तिकी इछा सर्व पुरुषनकूं है. सो दुषकी निवृत्ति अपने अपने उपायनतें होय जावे है. यातें मूल सहित जगतकी निवृत्तिकी इछा वाला मुमुछु अधिकारी बनै नही." ताका

६२ समाधान प्रथम कहै है.

दोहा.

मूल सहित जग हानि बिन, न्है न त्रिविध दुष ध्वंस;
यातें जन चाहत सकल, प्रथम मोछको अंस. ३

टीका:—मूल कहिये जगतका कारन जो अज्ञान, औ जगतके नास बिना तीन प्रकारके दुषका और उपायनतें **ध्वंस** कहिये नास होवै नही. औ मूल अविद्याके नासतें सर्व दुष, औ दुषके कारन रोगादिक, औ रोगादिकनके आश्रय सरीरादिकनका नास होवै है. यातें त्रिविध दुषके नासके निमित्त कारन सहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथम अंसकूं सकल पुरुष चाहै हैं. **तात्पर्य यह है;**— जो सर्व औषध आदिक उपाय करनें विषे समर्थ हैं, तिनके बी दुष नियमकरि दूरि होवै नही. काहू पुरुषका रोगादि जन्य दुष औषधादिक उपायनतें नास होवै हैं. औ काहूके दुषका औषध आदिक उपायनतें नास होवै नही. यातें औषध आदिक उपायनतें रोगादि जन्य दुषकी नियमकरिके निवृत्ति होवै नही. औ जाके औषधादिक उपायनतें दुषकी निवृत्ति होवै है, ताके बी दुषकी उत्पत्ति फेरि होवै है. यातें **औषध आदिक उपायनतें दुषकी अत्यंत निवृत्ति होवै नही.** जाकी निवृत्ति हुई है, ताकी फेरि उत्पत्ति नही होवै; सो अत्यंत निवृत्ति कहिये है. औषध आदिक उपायनतें दुषकी निवृत्ति नियम करिके होवै नही. औ निवृत्त जो दुष, ताकी फेरि बी उत्पत्ति होवै है. यातें अत्यंत निवृत्ति बी तिन उपायनतें होवै नही. औ दुषके सकल साधनका नास होवै, तौ सकल दुषकी नियम करिके निवृत्ति होवै. औ दुषके साधनका नास हुएतें फेरि दुष होवै

नही. यातें दुषकी निवृत्तिके निमित्त दुषके साधनकी निवृत्तिकी इछा सबकूं होवे है.

६३. सो दुषका साधन अज्ञान औ ताका कार्य प्रपंच है. यह वार्त्ता छांदोग्य उपनिषदमें भूम विद्याविषे प्रसिद्ध है. तहां यह प्रसंग है:—'एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुवा. औ नारदने कह्या. 'हे भगवन्, जो आत्म ज्ञानी पुरुष है, ताकूं सोक नही होवे है. औ मैं सोक सहित हूं. यातें मैं अज्ञानी हूं. मेरेकूं ऐसा उपदेस करो, जासें मेरा अज्ञान दूरि होवे.' तब सनत्कुमारने नारदकूं कह्या. 'हे नारद भूमा सोक रहित है; सुष रूप है. औ भूमासें भिन्न सकल तुछ है; औ दुषका साधन है." भूमा नाम ब्रह्मका है. इस रीतिसें ब्रह्मसें भिन्न जो वस्तु, सो सकल दुषका साधन कहे हैं. अज्ञान औ ताका कार्य ब्रह्मसें भिन्न है; यातें दुषका साधन हैं, ताकी निवृत्ति हूयेसें सर्व दुषकी नियमकारिके अत्यंत निवृत्ति बनै है. यातें सकल दुषकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञान सहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथम अंसकी चाह बनै है.

६४. और जो पूर्वपछीने कह्या, "जा वस्तुका अनुभव किया होवे, ताकी प्राप्तिकी इछा होवे है. ब्रह्मका अनुभव काहूने किया है नही, यातें ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोछके द्वितीय अंसकी इछा काहूकूं होवे नही," ताका.

समाधान कहै हैं.

दोहा.

किय अनुभव सुषको सबहि, ब्रह्म सुन्यो सुषरूप;
ब्रह्म प्राप्ति या हेतुतें, चहत विवेकी भूप. १०

टीका:—सर्व पुरुषनने सुषका अनुभव किया है, यातें सुषकी इछा सर्वकूं है. औ "**ब्रह्म नित्य सुषरूप है.**" ऐसा सत सास्त्रमें सुन्या है. यातें **विवेकी भूप** कहिये **उत्तम विवेकी सुष स्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहै है.** १०

६५ दोहा.

केवल सुष सब जन चहैं, नही विषयकी चाह;
अधिकारी यातें बनै, है जु विवेकी नाह. ११

टीका:—पूर्व कह्या जो "सर्व पुरुष विषय जन्य सुष चाहै हैं, सो विषय जन्य सुष मोछविषे प्राप्त होवै नही, किंतु जगतमें प्राप्त होवै है; यातें मोछकी इछावान अधिकारीके अभावतें ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछे हैं:—जो कोई मुमुछु नही है? अथवा मुमुछु तौ है, परंतु तिनकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नही? जो ऐसे कहै:— "मुमुछु नही है," सो बनै नही. काहेतें, सर्व पुरुष सर्व दुषका नास, औ नित्य सुषकी प्राप्ति, चाहै हैं; सो सर्व दुषका नास, औ सुषकी प्राप्तिरूप मोछ है. यातें **सर्व पुरुष मुमुछु हैं.**

और कह्या "जो विषय जन्य सुष चाहै हैं," सो नही; किंतु **सुषमात्र चाहै हैं.** सो सुष विषयसें होवै, अथवा विषय विना होवै; जो विषय जन्य सुषकूंही चाहै, तौ सुषुप्तिके सुषकी इछा नही हुई चाहिये. सुषुप्तिका सुष विषय जन्य है नही. यातें सुष मात्रकूं चाहै है. केवल विषयजन्यकूंही नही. उलटा आत्म सुषकूं चाहै हैं. विषयजन्यकूं नही चाहै हैं. काहेतें, सर्व पुरुषनकूं न्यून अथवा अधिक विषय सुष प्राप्त बी है, परंतु ऐसी इछा सदा रहै है:— "हमारेकूं ऐसा सुष प्राप्त होवै, जा सुषका

नास कदे होवै नही." ऐसा सुष आत्म स्वरूप मोछ है. यातें **सर्व पुरुष मुछुछु हैं.** "कोई मुमुछु नही" ऐसा कहना बनै नही.

६६. और जो ऐसे कहै, "मुमुछु तौ हैं, परंतु ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही; यातें ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछै हैं:— ग्रंथ मोछका साधन नही है, यातें ग्रंथ विषे प्रवृत्ति नही होवै ? अथवा ग्रंथसें और बी कोई साधन है, जाके विषे प्रवृत्ति होनेतें ग्रंथ विषे प्रवृत्ति होवै नही ? अथवा जिन समादिकनतें ग्रंथमें अधिकार कह्या, सो समादिमान ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नही है; यातें ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही ? जो ऐसे कहै:— "**ग्रंथ मोछका साधन नही" सो वार्ता बनै नही.** काहेतें, **मोछ ज्ञानतें नियम करिके होवै है. यह वेदका सिद्धांत है.** सो ज्ञान श्रवनसें होवै है.

श्रवन दो प्रकारका है:—एक तौ वेदांत वाक्यका, औ श्रोत्रका संयोग रूप है; औ **दूसरा** वेदांत वाक्यका विचार रूप है. ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवन है; दूसरा नही. काहेतें, सब्द जन्य ज्ञान विषे इंद्रियके साथ सब्दका संयोगही सर्वत्र हेतु है. यातें वेदांत वाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप श्रवन ब्रह्मज्ञानका हेतु है. अवांतर वाक्यका श्रवन परोछ ज्ञानका हेतु है. औ महावाक्यका श्रवन अपरोछ ज्ञानका हेतु है. यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है, जाकूं ज्ञान हुवेतें बी असंभावना औ विपरीत भावना होवै, सो **दूसरा श्रवन,** औ मनन निदिध्यासन करै. वेदांत वाक्यका **विचाररूप** जो **श्रवन,** तासूं वेदांत वाक्यविषे असंभावना दूरि होवै है. वेदांत वाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा संसय **वेदांत वाक्यकी असंभावना** है. सो

तिनके विचारसें दूरि होवै है. औ मननसें प्रमेयकी असंभावना दूरि होवै है. **जीव ब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है.** सो एकता सत्य है? अथवा जीव ब्रह्मका भेद सत्य है? ऐसा जो संसय, सो **प्रमेयकी असंभावना** कहिये है, सो मननसें दूरि होवै है. विपरीत भावना निदिध्यासनतें दूरि होवै है: इस रीतिसें **प्रथम श्रवन** तौ ज्ञान द्वारा मोछका हेतु है; औ **विचाररूप श्रवन,** औ **मनन,** औ **निदिध्यासन** ये असंभावना औ विपरीत भावना की निवृत्ति द्वारा मोछके हेतु हैं. **वेदांत** नाम उपनिषदका है. सो यद्यपि या ग्रंथतें भिन्न है, तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषा वाक्य या ग्रंथमें हैं. तिनके श्रवनतें बी ज्ञान होवै है, यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसें **ज्ञान द्वारा ग्रंथ मोछका हेतु है.** औ विचाररूप औ मननरूप यह ग्रंथ है. यातें असंभावना दोषकी निवृत्ति द्वारा मोछका हेतु है; यातें "ग्रंथसें मोछ होवै नही," यह केवल हठ मात्र है.

६७. और जो ऐसे कहै "ग्रंथसें मोछ तौ होवै है, परंतु और साधनसें बी मोछ होवै है. यातें ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछै हैं:-सो और साधन कौन हैं, जातें मोछ होवै है? जो ऐसे कहै:-"उपनिषद सूत्र भाष्यसें आदि लेके संस्कृत ग्रंथ जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं. तिनसें बी ज्ञान द्वारा मोछ होवै है. याका भिन्न अधिकारी नही. यातें यह ग्रंथ निष्फल है." सो वार्त्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहन करने विषे जाकी बुद्धि समर्थ नही है, ऐसा जो मुमुछु, ताकूं तिनसें ज्ञान होवै नही, यातें मंदबुद्धि मुमुछुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवै नही. या ग्रंथ विषेही प्रवृत्ति होवैगी.

६८. और जो ऐसे कहै "ग्रंथसें मोछ बी होवै है, औ संस्कृत

ग्रंथनसें मंद बुद्धिकूं बोध बी होवै नही. औ मुमुक्षु बी है, तौ बी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नही. काहेतें, जो विवेक वैराग्य समादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है. यातें आपनेविषे साधनका अभाव देखिके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही." ताकूं यह पूछै हैं:— बहुत अधिकारी नही. ? अथवा कोई बी नही ? जो ऐसे कहै:— "बहुत अधिकारी नही." सो तौ हम बी अंगीकार करै हैं, औ जो ऐसे कहै:— "**कोई बी ज्ञानके योग्य अधिकारी नही.' सो वार्ता बनै नही.** काहेतें, अंतःकरनविषे तीन दोष हैं:— एक मल है, औ विक्षेप है, औ स्वरूपका आवरन है. **मल** नाम पापका है, **विक्षेप** नाम चंचलताका है; औ **आवरन** नाम अज्ञानका है. सुभ कर्मतें मल दोष दूरि होवै है, औ उपासनातें विक्षेप दोष दूरि होवै है, ज्ञानतें **आवरन** दोष दूरि होवै है. जिनके अंतःकरनविषें मल औ विक्षेप दोष हैं; सो अधिकारी नही बी है; परंतु इस जन्मविषे अथवा पूर्व जन्मविषे सुभ कर्म, औ उपासनाके अनुष्ठानतें जिनके मल औ विक्षेप दोष नास हुवे हैं, **ऐसे ज्ञान योग्य अधिकारी हैं; तिनकी ग्रंथमें प्रवृत्ति बनै है.**

६९. और जो ऐसे पूर्व कह्या "**सर्वकूं विषय सुखमें अलं बुद्धि है, नित्य सुखकूं कोई चाहै नही.**" **सो बनै नही.** काहेतें, च्यारि प्रकारके पुरुष हैं:—पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त. इस लोकके निषिद्ध, औ विहित भोगनविषे आसक्त जो सास्त्र संस्कार रहित पुरुष, सो **पामर** कहिये है. सास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुवा, परलोकके, अथवा इस लोकके, भोगनके निमित्त जो कर्म करै, सो **विषयी** कहिये है.

७०. औ ऐसा पुरुष **जिज्ञासु** कहिये है. जा पुरुषकूं उत्तम

संस्कारतें सत सास्त्रका श्रवन होवै, तौ उनमकूं ऐसा विवेक होवै है:—विषय सुष अनित्य हैं, जितना काल विषय सुष होवै है, तब बी कोई दुष अवस्य रहै है. औ परिनाममें विनासी सुष दुषका हेतु है, औ वर्त्तमान कालमें बी नासके भयतें दुषका हेतु है. इस रीतिसें विषय सुष दुषतें ग्रस्या हुवा है; यातें दुषरूप है. औ दुषकी निवृत्ति लौकिक उपायतें होवै नही. काहेतें, जो उपाय करै हैं, तिनके बी सारे दुष निवृत्त होवैं नही. औ निवृत्त हुवे बी फेरि होवै हैं. औ जितने काल सरीर है, तब पर्यंत दुषकी निवृत्ति संभवै बी नही. काहेतें, जो सरीर हैं, सो सारे पुन्य औ पापसें होवै हैं. मनुष्य सरीर तौ मिश्रित कर्मका फल प्रसिद्ध है. औ देव सरीर बी मिश्रित कर्मकाही फल है. जो केवल पुन्यका फल देव सरीर होवै, तौ अपनेसें अधिक अन्य देवकी विभूति देषिके जो देवनकूं ताप होवै है, सो नही हुवा चाहिये. सर्व देवनमें प्रधान जो इंद्र, ताकूं बी अनेक दैत्य दानवके भय जन्य दुष सास्त्रमें कह्या है. जो देव सरीर केवल पुन्यकाही फल होवै, तौ देवनकूं दुष नही हुवा चाहिये. यातें देव सरीर बी पुन्य पाप दोनोंका फल है. औ जो श्रुतिमें कह्या है :—"देवता पाप रहित हैं," ताका यह अभिप्राय है:—कर्मका अधिकार केवल मनुष्य सरीरमें है. औरमें नही. यातें देव सरीरमें किया जो सुभ अथवा असुभ, तिनका फल देवनकूं होवै नही. औ देव सरीरसें पूर्व सरीरमें किया जो सुभ औ असुभ, तिनका फल तौ देव सरीरमें बी होवै है. इस रीतिसें देव सरीर मिश्रित कर्मका फल है.

औ तिर्यक् पसु पछीका सरीर बी मिश्रित कर्मका फल है. काहेतें, जो तिनकूं प्रसिद्ध दुष है, सो तौ पापका फल है, औ मैथुनादिकनका सुष है, सो पुन्यका

फल है. उदरसें जो गमन करै, सो **तिर्यक्** कहिये है. पछसें गमन करै, सो **पछी** कहिये है. च्यारि पादसें गमन करै, सो **पसु** कहिये है. कहूं पसु पछी बी **तिर्यक्ही** कहिये है. इस रीतिसें सर्व सरीर पुन्य औ पापसें रचित हैं. कोई सरीर तो न्यून पाप औ अधिक पुन्यतें रचित हैं, जैसे देव सरीर हैं. अपनें अपने जो पुन्य हैं, तिनहीतें सर्व देवन विषे पाप न्यून है. यातें न्यून पाप अधिक पुन्यतें रचित देव **सरीर** कहिये हैं. या अभिप्रायतेंही सास्त्रमें **केवल पुन्यका फल देव सरीर** कह्या है; यातें विरोध नही. जैसे बहुत ब्राह्मनतें ब्राह्मन ग्राम कहिये है. तैसे अधिक पुन्यका फल होनेतें देव सरीर केवल पुन्यका फल कहिये हैं. परंतु केवल पुन्यका फल नही.

तिर्यक् पसु पछीका सरीर अधिक पाप न्यून पुन्यसें रचित है. जो उत्तम मनुष्य हैं, तिनकी देवनके समान रीति है. औ नीचनकी सर्पादिकनके समान है. इस रीतिसें **सर्व सरीर पुन्य पाप रचित हैं.** औ पापका फल दुष है; यातें सरीर रहै तब पर्यंत दुषकी निवृत्ति होवै नही. सो सरीर धर्म औ अधर्म का फल हैं. तिनकी निवृत्ति बिना सरीरकी निवृत्ति होवै नही. काहेतें वर्त्तमान सरीर दूरि हुयेसें बी पुन्य पापतें और सरीर होवैगा. यातें पुन्य पापकी निवृत्ति बिना सरीरकी निवृत्ति होवै नही. सो पुन्य पाप राग द्वेषके नास बिना दूरि होवै नही; काहेतें वर्त्तमान पुन्य पापकी भोगसें निवृत्ति हुवेसें बी राग द्वेषतें और पुन्य पाप होवैंगे. यातें **राग द्वेषकी निवृत्ति बिना पुन्य पाप दूरि होवैं नही.** सो राग द्वेष अनुकूल ज्ञान औ प्रतिकूल ज्ञानसें होवै हैं. जाविषे अनुकूल ज्ञान होवै, ताविषे **राग होवै है.** औ जाविषे प्रतिकूल ज्ञान होवै, ताविषे **द्वेष होवै है.** यातें **अनुकूल ज्ञान औ प्रतिकूल**

ज्ञानकी निवृत्ति बिना राग द्वेषकी निवृत्ति होवै नही. सो अनु-कूल ज्ञान औ प्रतिकूल ज्ञान भेद ज्ञानसें होवै है. काहेतें, जा वस्तुकूं अपने स्वरूपतें भिन्न जानै, ताकेविषें अनुकूल ज्ञान, अथवा प्रतिकूल ज्ञान होवै है. अपने स्वरूपमें अनुकूल ज्ञान औ प्रतिकूल ज्ञान होवै नही. सुषकें साधनका नाम **अनुकूल** है, औ दुषके साधनका नाम **प्रतिकूल** है. अपना स्वरूप सुषका अथवा दुषका साधन नही. **यद्यपि** सुषरूप है, **तथापि** सुषका साधन नही. यातें स्वरूपसें भिन्न जो वस्तु जान्या है, ताविषे अनुकूल ज्ञान औ प्रतिकूल ज्ञान होवै है. इस रीतिसें पदार्थनाविषे अपनेसें जो भेद ज्ञान, सो अनुकूल ज्ञान औ प्रतिकूल ज्ञानका हेतु है. ता **भेदज्ञानकी निवृत्ति बिना** अनुकूल ज्ञान **प्रतिकूल ज्ञानकी निवृत्ति होवै नही.** सो भेद ज्ञान अविद्या जन्य है. काहेतें, संपूर्न प्रपंच औ ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञान काल में हैं; यह संपूर्न वेद **अरु सास्त्रका ढंढोरा** है. इस रीतिसें **संपूर्न दुषका हेतु स्वरूपका अज्ञान** है. सो स्वरूपका अज्ञान स्वरूप ज्ञान बिना दूरि होवै नही. काहेतें, जा वस्तुका अज्ञान होवै, सो ताके ज्ञानसें दूरि होवै है. जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जुके ज्ञानसें दूरि होवै है; औरसें नही. यातें स्वरूपका ज्ञानही अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा दुषकी निवृत्तिका हेतु है. औ **स्वरूप ज्ञानसें ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है.** सो ब्रह्म नित्य है, औ आनंद स्वरूप है, दुष संबंधसें रहित है. यातें स्वरूप ज्ञानसें नित्य, औ दुषके संबंधसें रहित, जो ब्रह्म स्वरूप आनंद, ताकी प्राप्ति बी होवै है. इस रीतिसें दुषकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूप ज्ञान है. यातें स्वरूप जानने कूं योग्य है. ऐसा जाके विवेक होवै, सो **जिज्ञासु** कहिये है. स्थूल सूछम कारन सरीरतें भिन्न जो अपना स्वरूप, ताका ब्रह्मरूप करिके

अपरोछ ज्ञान जाकूं होवै; सो **मुक्त** कहिये है.

७१ इस रीतिसें च्यारि प्रकारके पुरुष हैं. तिनविषे पामर औ विषयीकूं तौ **यद्यपि** विषय सुषमेंही अलं बुद्धि है, औ किसी विषयीकूं परम सुषकी इछा बी होवै, **तब बी** ताके जो उपाय नही हैं, तिनमें उपाय बुद्धि करिके प्रवृत्त होवै है. काहेतें, उपाय का ज्ञान सत्संग औ सत्सास्त्रके श्रवनतें होवै है; सो ताके है नही. यातें पामर औ बिषयीकी सुष प्राप्तिक निमित्त ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही. दुषकी निवृत्तिके निमित्त बी दोनो अन्य उपायनमें प्रवृत्त होवै है. ताके निमित्त बी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही. यातें **विषयी औ पामरकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नही.** औ मुक्तकी प्रवृत्ति बी होवै नही. काहेतें, ज्ञानवान **मुक्त** कहिये है. सो ज्ञानी कृतकृत्य है. ताकूं कछु कर्तव्य नही. यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करेंगे. औ लीलाकरिके मुक्त प्रवृत्त होवै, तौ बी मुक्तकूं ग्रंथमें प्रवृत्तिसें कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नही. यातें **मुक्तके निमित्त बी ग्रंथ नही. तथापि** जिज्ञासू जो पुरुष है, ताकूं विषय सुषमें अलं बुद्धि होवै नही. किंतु परम सुषकी ताकूं इछा है, औ दुषकी अत्यंत करिके निवृत्तिकी इछा है, सो परम सुषकी प्राप्ति, औ दुषकी अत्यंत निवृत्ति, ज्ञानसें बिना होवै नही. ऐसा जाकूं सत्संगसें विवेक है; ताकी ग्रंथमें प्रवृत्ति बनै है. इस रीतिसें **मोछकी इछावान अधिकारी बनै है.**

७२ दोहा.

साछी ब्रह्म स्वरूप इक, नही भेदको गंध ;
राग द्वेष मतिके धरम; तामें मानत अंध. १२

टीका:—पूर्व कह्या जो "जीव रागादिक क्लेस सहित है; औ

ब्रह्म क्लेस रहित है. यातें जीव ब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नही." यह वार्त्ता **यद्यपि** सत्य है, **तथापि** राग द्वेष रहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्मसें एकता बनै है. और जो पूर्व कह्या "कर्त्ता भोक्तासें भिन्न साक्षी वंध्या पुत्रके समान असत है," सो बनै नही. काहेतें, कर्त्ता भोक्ता जो **संसारी,** ताके विसेष भागका नाम **साक्षी है.** जो साक्षीका निषेध करैं, तो संसारीके विसेष भागका निषेध होनेतें, कर्त्ता भोक्ता जो संसारी, ताकाही निषेध होवैगा. एकही चैतन्यकेविषे साक्षी भावकी अंत:करन उपाधि है. औ कर्त्ता भोक्तापनेका विसेषन है. विसेषन सहित **विसिष्ट** कहिये है. उपाधिवाला **उपहित** कहिये है. जो वस्तु जितने देसमें आप होवै, उस देसमें स्थित वस्तुकूं जनावै, औ आप पृथक् रहै, सो **उपाधि** कहिये है. जैसे नैयायिक मतमें कर्न गोलक वृत्ति आकास **श्रोत्र** कहिये है. सो कर्न गोलक श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतें सो कर्न गोलक जितने देसमें आप है, उतने देसमें स्थित आकासकूं श्रोत्ररूप करिके जनावै है; औ आप पृथक् रहै है. यातें कर्न गोलक श्रोत्रकी उपाधि है, तैसें अंत:करन बी जितनें देसमें आप है, उतने देसमें स्थित चेतनकूं साक्षी संज्ञा करिके जनावै है; आप पृथक् रहै है. यातें **अंत:करन साक्षीको उपाधि है.** यातें यह अर्थ सिद्ध हुवा:– अंत:करन विषे वृत्ति जो चेतन मात्र सो **साक्षी** कहिये है.

७३. अपने सहित वस्तुकूं जो जनावै, सो **विसेषन** कहिये है. जैसे "कुंडल वाला पुरुष आया है." या स्थानमें पुरुषका **कुंडल** विसेषन है. काहेतें, अपने सहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावै है, यातें **विसेषन** है. "नीलरूपवान घटकूं में देखूं हूं." या स्थानमें बी **नीलरूप** घटका विसेषन है. तैसे अंत:करन बी कर्त्ता भोक्ता

जो जीव चेतन, ताका विसेषन है. काहेतें, अंतःकरन सहित चेतनकूं कर्त्ता भोक्तारूप करिके अंतःकरन जनावै है· यातें **संसारीका अंतःकरन विसेषन है**. यातें यह सिद्ध हुवाः– अंतःकरन विषे वृत्तिचेतन औ अंतःकरन **संसारी** कहिये है. या अर्थकूं विस्तारसें आगे कहेंगे.

७४. राग द्वेषादिक क्लेस संसारीविषे हैं, औ साछीविषे नहीं· संसारीका बी जो विसेषन अंतःकरन है, ताके विषे हैं. औ विसेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नही. काहेतें, संसारीविषे विसेष्य जो चैतन्य भाग, ताका साछीसें भेद नही. काहेतें, एकही चैतन्य अंतःकरन सहित **संसारी** है; औ अंतःकरन भाग त्यागिके **साछी** कहिये है. यातें साछीका औ संसारीके विसेष्य भागका भेद नही. जो विसेष्य भागमें क्लेस अंगीकार करैं, तब साछीमें बी अंगीकार करने होवैंगे. औ "साछी सर्व क्लेस रहित है;" **यह वेदका सिद्धांत है**. यातें संसारीके विसेष्य भागमें क्लेस नही, किंतु विसेषन मात्र अंतःकरनमें हैं. इस अभिप्रायतें दोहेके तृतीय पादमें राग द्वेस बुद्धिके धर्म कहे; औ जीवके नही कहे. **इस रीतिसें अंतःकरन विसिष्टकी ब्रह्मसें एकता नही बी बनै, परंतु अंतःकरन उपहित जो साछी, ताकी ब्रह्मसें एकता बनै है.**

७५. और जो पूर्व कह्या "साछी नाना हैं, औ ब्रह्म एक है, यातें नाना साछीकी एक ब्रह्मसें एकता बनै नही; औ जो व्यापक एक ब्रह्मतें साछीका अभेद अंगीकार करोगे, तौ साछी बी सर्व सरीरमें व्यापक एकही होवैगा. यातें सर्व सरीरके सुष दुष भान हुवे चाहियेे." सो संका बनै नही. काहेतें, **यद्यपि ईश्वर साछी एक है, औ जीव साछी** नाना हैं, औ परिछिन्न हैं, तौ बी व्या-

एक ब्रह्मसें भिन्न नही. जैसे घटाकास नाना हैं, औ परिछिन्न हैं, तौ बी महाकाससें भिन्न नही. किंतु महाकास रूपही घटाकास हैं. तैसे नाना जो परिछिन्न साछी, सो बी ब्रह्म रूपही हैं.

७६. और जो पूर्व कह्या, "सुष दुष अंत:करनकी वृत्तिके विषय नही" सो असंगत है. काहेतें, यद्यपि सुष दुष साछी भास्य हैं, सो साछी नाना हैं; तथापि जब अंत:करनका परिनाम सुषरूप वा दुषरूप होवै, ताही समय अंत:करनकी ज्ञानरूप वृत्ति सुष दुषकूं विषय करनेवाली होवै है. ता वृत्तिमें आरूढ साछी तिनकूं प्रकासै है. इस रीतिसें ग्रंथकारोंनें सुष दुष साछीके विषय कहे हैं. वृत्ति बिना केवल साछीके विषय नही, या स्थानमें यह रहस्य है:– आकासमें घटाकास नाम औ जलका आनयन रूप जो कार्य प्रतीत होवै है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसें प्रतीत होवै है; घटरूप उपाधिकी दृष्टि बिना घटाकास नाम औ जलका आनयन रूप कार्य प्रतीत होवै नही; किंतु आकास मात्रही प्रतीत होवै, यातें घटाकास महाकास रूप है. तैसे चेतनविषे साछी नाम, औ धर्म सहित अंत:करनका प्रकासरूप कार्य, अंत:करनरूप उपाधिकी दृष्टिसें प्रतीत होवै है. औ अंत:करनरूप उपाधिकी दृष्टि बिना साछी नाम-औ धर्म सहित अंत:करनका प्रकास रूप कार्य प्रतीत होवै नही. किंतु चैतन्य मात्र ब्रह्मही प्रतीत होवै; यातें साछी ब्रह्मरूप है. या अभिप्रायतें दोहेके प्रथम पादमें साछी एक कह्या. काहेतें, उपाधिकी दृष्टि बिना साछीमैं नानापना औ परिछिन्न भाव प्रतीत होवै नही. सो साछी जीव पदका लछ्य है. यह वार्त्ता आगे कहेंगे. इस रीतिसें जीव ब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै है.

७७ अथ कार्य अध्यास निरूपनं.

कवित्व.

सजातीय ज्ञान संसकारतें अध्यास होत,
सत्य ज्ञान जन्य संसकारको न नेम है;
दोषको न हेतुता अध्यासविषे देषियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तंतु वेम है;
आतमा द्विजाती संष पीत सीता कटु भासै,
सीपमें विरागी रूप देषै विन प्रेम है;
नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अछेम है १३.

टीका:-पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसें निवृत्ति होवै नही. औ मिथ्या वस्तुकी ज्ञानसें निवृत्ति होवै है. आत्मामें मिथ्या बंधकी सामग्री है नही; यातें बंध सत्य है. ताकी ज्ञानसें निवृत्ति होवै नही." सो वार्त्ता बनै नही. काहेतें बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसें निवृत्ति बनै है.

७८. औ पूर्व कह्या जो "सत्य वस्तुका ज्ञान संस्कार द्वारा अध्यासका हेतु है. जैसे सत्य सर्पका ज्ञान संस्कार द्वारा सर्प अध्यासका हेतु है; तैसे सत्यबंध होवै तौ सत्य बंधका ज्ञान होवै. सो **सिद्धांतमें अनात्म वस्तु कोई सत्य है नही.** यातें सत्य वस्तुका ज्ञान जो संस्कार द्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होनेतें बंध अध्यास नही. किंतु सत्य है." सो संका बनै नही. काहेतें, अध्यासविषे संस्कार द्वारा सत्य वस्तुका ज्ञान हेतु नही, किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है.

सो वस्तु सत्य होवै, अथवा मिथ्या होवै. जो सत्य वस्तुका ज्ञानही अध्यासविषे हेतु होवै, तौ जा पुरुषने सत्य छुहारेका वृछ नही देष्या होवै, औ बाजीगरका बनाया मिथ्या छुहारेका वृछ बहुतवार देष्या होवै; औ बाजीगरसें ऐसा सुन्या होवै; जो "यह छुहारेका वृछ है." औ षजूरका वृछ कदै देष्या सुन्या होवै नही, ताकूं षजूरका वृछ देषिके छुहारेका अध्यास होवै है; सो नही हुवा चाहिये. काहेतें, सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नही. औ हमारी रीतिसें तौ बाजीगरका देष्या जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञान है. यातें अध्यास बनै है, यातें सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. सो संस्कारका जनक ज्ञान, औ ताका विषय मिथ्या होवै, अथवा सत्य होवै, **संस्कार द्वारा ज्ञान हेतु है.** औ "ज्ञानजन्य संस्कार हेतु है;" या कहनेमें अर्थका भेद नही. एकही अर्थ है. काहेतें, संस्कार द्वारा ज्ञान हेतु है. याका अर्थ यह है:— ज्ञान संस्कारका हेतु है. औ संस्कार अध्यासका हेतु है, यातें संस्कार द्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनेतें बी ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्यास विषे हेतुता सिद्ध होवै है.

७९ औ केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषे हेतु कहैं तौ बनै नही. काहेतें, **यह नियम है:**—"जो हेतु होवै सो कार्यसें अव्यवहित पूर्व कालमें होवै है." जैसे घटका हेतु दंड है, सो घटसें अव्यवहित पूर्व कालमें होवै है. तैसे जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं, सो बी अध्यासतें अव्यवहित पूर्व कालमें चाहिये. सो बनै नही. काहेतें, जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै, ताकूं ज्ञानसें महिने पीछे बी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवै है. सो नही हुवा चाहिये. काहेतें, जो रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है. ताका नास होय गया. यातें अव्यवहित पूर्व कालमें है नही. यद्यपि पूर्व

कालमें तौ है, तथापि अव्यवहित पूर्व कालमें है नहीं, अंतराय रहितका नाम अव्यवहित है. औ अंतराय सहितका नाम व्यवहित है. औ जो ऐसे कहैं:—कार्यतें पूर्व कालमें हेतु चाहिये. व्यवहित पूर्व कालमें होवै, अथवा अव्यवहित पूर्व कालमें होवै. औ "कार्यतें अव्यवहित पूर्व कालमेंही हेतु होवै है." ऐसा नियम अंगीकार करैं तौ "विहित कर्म स्वर्ग प्राप्तिका हेतु है; औ निषिद्ध कर्म नरक प्राप्तिका हेतु है." यह सास्त्रकी वार्त्ता अप्रमान होय जावेगी. काहेतें, कायिक, वाचिक, मानस, क्रियाका नाम कर्म है. सो क्रिया अनुष्ठान कालसें अनंतरही नास होय जावै है. औ स्वर्ग नरक कालांतरमें होवै हैं. यातें स्वर्ग नरक प्राप्तिके अव्यवहित पूर्व कालमें विहित कर्म औ निषिद्ध कर्म हैं नहीं. जैसे व्यवहित पूर्व कालके सुभ कर्म, औ असुभ कर्म, स्वर्ग प्राप्ति औ नरक प्राप्तिके हेतु हैं. तैसे "व्यवहित पूर्व कालमें जो सर्पका ज्ञान, सो बी रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु है;" सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतें, जैसे नष्ट ज्ञान औ नष्ट कर्मतें अध्यास औ स्वर्ग नरककी प्राप्ति अंगीकार करी. तैसे मृत कुलाल औ नष्ट दंडसें बी घट हुवा चाहिये. काहेतें जैसे रज्जुमें सर्प अध्यासतें व्यवहित पूर्व कालमें सर्पका ज्ञान है. औ स्वर्ग नरककी प्राप्तितें व्यवहित पूर्व कालमें सुभ असुभ कर्म हैं. तैसे घटतें व्यवहित पूर्व कालमें नष्ट दंड औ मृत कुलाल बी हैं, तिनतें बी घट हुवा चाहिये. सो होवै नहीं. यातें :—

व्यवहित पूर्व कालमें जो वस्तु होवै, सो हेतु नहीं. किंतु अव्यवहित पूर्व कालमें जो वस्तु होवै, सोई हेतु होवै है. औ सुभ असुभ कर्म बी कालांतरभावी जो स्वर्ग नरककी प्राप्ति ताके हेतु नहीं; किंतु सुभ कर्म तौ अपनेतें अव्यवहित

उत्तर कालमें धर्मकी उत्पत्ति करै है. असुभ कर्म अधर्मकी उत्पत्ति करै है. सो धर्म अधर्म अंतःकरन विषे रहे हैं. तिनतें कालांतरमें स्वर्ग औ नरककी प्राप्ति होवै है. तासें अनंतर धर्म अधर्मका नास होवै है. इस अभिप्रायसेंही सास्त्रमें सुभ कर्म औ असुभ कर्म अपूर्व द्वारा फलके हेतु कहे हैं; साक्षात नही. अपूर्व नाम धर्म अधर्मका है, औ अदृष्ट बी तिनकूं कहे हैं. औ पुन्य पाप बी तिनकूंही कहे हैं. औ कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो सुभ असुभ क्रिया है, ताकूं बी धर्म अधर्म कहे हैं. जैसे कोई सुभ क्रिया करता होवै, ताकूं लोक ऐसा कहे हैं:— "यह धर्म करै है." औ असुभ क्रिया करनेवालेकूं ऐसा कहे हैं:— "यह अधर्म करै है." सो सुभ असुभ क्रियाका नाम धर्म अधर्म नही; किंतु सुभ असुभ क्रिया धर्म अधर्मकी जनक है. यातें क्रियाकूं धर्म अधर्म कहे हैं, जैसे आयुका वर्धक जो घृत है, ताकूं सास्त्र में आयु कहे हैं. इस रीतिसें अव्यवहित पूर्व कालमें हेतु होवै है.

८०. औ रज्जुमें सर्प अध्यासतें अव्यवहित पूर्व कालमें सर्पका ज्ञान है नही. यातें सर्पका ज्ञान रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु नहीं, किंतु सर्प ज्ञान जन्य संस्कारही रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु है; तैसे सीपीमें रूप अध्यासका हेतु रूप ज्ञान जन्य संस्कार है. इस रीतिसें सारे संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. औ वस्तूका ज्ञान संस्कारका हेतु है. जैसे सुभ असुभ कर्म जन्य धर्म अधर्म अंतःकरनमें रहे हैं; तैसे वस्तुके ज्ञान जन्य संस्कार बी अंतःकरनमें रहे हैं. जा पुरुष कूं पूर्व सर्पका ज्ञान नही हुवा, ताके बी और वस्तुके ज्ञान जन्य संस्कार तौ हैं; परंतु रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नही. जा वस्तुका अध्यास होवै, ताके सजातीय वस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्या

सका हेतु है, विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नही. सर्पके सजातीय सर्प होवे है; और नही. सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नही, अन्य वस्तु का ज्ञान है, ताकूं सजातीय वस्तुके ज्ञान जन्य संस्कार नही, यातें रज्जुमें सर्पका अध्यास होवे नही. सूछम अवस्थाका नाम **संस्कार है.** इसरीतिसें अध्यासतें पूर्व जो सजातीय वस्तुका ज्ञान, ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं. "औ सत्य वस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं; मिथ्या वस्तुके ज्ञानके नही;" **यह नियम नही.** यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसें प्रतिपादन करी है. यातें **मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार बी अध्यासके हेतु हैं.**

८१. सो बंधके अध्यासविषे बी बने है. काहेतें जो अहंकारसें आदिलेके अनात्म वस्तु, औ ताका ज्ञान बंध कहिये है, "सो अनात्म वस्तु रज्जुके सर्पकी न्याई जब प्रतीत होवे तबही है, औ प्रतीत नही होवे तब नही." यह हमारा वेद संमत सिद्धांत है. इस कारनतेंही सुषुप्तिविषे सर्व प्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है. सुषुप्तिमें कोई पदार्थ प्रतीत होवे नही; यातें सर्व प्रपंचका सुषुप्तिमें लय होवे है. इसका नाम शास्त्रमें दृष्टि सृष्टि वाद कहे हैं. या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करेंगे, इस रीतिसें अनंत अहंकारादिक औ तिनके ज्ञान उत्पन्न होवे हैं; औ लय होवे हैं. अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्ति लय होवे है. जब अहंकारादिकनकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवे, तब अहंकारादिकनकी उत्पत्ति होवे है. औ प्रतीति का लय होवे, तब अहंकारादिकनका लय होवे है. अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानका नाम अध्यास है. यह वार्त्ता अनिर्वचनीय ख्यातिके प्रतिपादनमें कहेंगे. यद्यपि अहंकार साक्षी भास्य है, यह वार्त्ता विषय प्रतिपादनमें कही है. यातें अहंकारकी प्रतीति

साछीरूप है. ताकी उत्पत्ति औ लय बनै नही. तथापि अहंकारका बी वृत्तिसेंही साछी प्रकास करै है; साछात नही. वा वृत्तिकी उत्पत्ति लय होवै है. यातें अहंकारकी प्रतीतिकी उत्पत्ति लय कहिये है. इस रीतिसें उत्तर उत्तर अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्व पूर्व मिथ्या अहंकारादिकनके ज्ञान जन्य संस्कार बनै हैं.

८२. और जो ऐसे कहैं "उत्तर उत्तर अहंकारादिकनके अध्यासविषे तौ यद्यपि पूर्व पूर्व अध्यासके संस्कार हेतु बनै हैं; तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, औ ताका ज्ञान, वाके हेतु संस्कार बनै नही. काहेतें, जो ताके पूर्व और अहंकार उत्पन्न हुवा होवै, तौ ताके ज्ञानके संस्कार बी होवैं. सो प्रथम अहंकारसें पूर्व और अहंकार हुवा नही. तैसे सर्व वस्तुके प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनै नही." यह संका बी सिद्धांतके अज्ञानसें होवै है. काहेतें:— "यह वेदांतका सिद्धांत है" एक ब्रह्म, औ ईश्वर, जीव, अविद्या, औ अविद्याका चैतन्यसें संबंध, औ अनादि वस्तुका भेद, यह षट् वस्तु स्वरूपसें अनादि हैं. जा वस्तुकी उत्पत्ति होवै नही, सो वस्तु स्वरूपसें अनादि कहिये है. इन षट्की उत्पत्ति होवै नही. यातें स्वरूपसें अनादि हैं. औ अहंकारादिकनकी तौ श्रुतिमें उत्पत्ति कही है; यातें स्वरूपसें अनादि यद्यपि अहंकारादिक नही, तथापि प्रवाहरूपतें सर्व वस्तु अनादि हैं. सर्व वस्तुका प्रवाह दूरि होवै नही. अनादि कालमें ऐसा समय कोई पूर्व हुवा नही, जा समय कोई घट होवै नही. यातें घटका प्रवाह अनादि है. इस रीतिसें सर्व वस्तुका प्रवाह अनादि है. प्रलय कालमें बी सुषुप्तिकी न्याई सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहै हैं. यातें प्रपंचका प्रवाह अनादि

होनेतें, प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसा जाकूं ज्ञान नही है, ताकूं यह संका होवै है. जो प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बने नही. औ सिद्धांतमें किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसें प्रथम है नही, किंतु अपनेसें पूर्व पूर्व आध्यासतें संपूर्न उत्तर हैं; यातें संका बनै नही. इस रीतिसें सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसें अहंकारादिक बंधका अध्यास बनै है; यह प्रथम पादका अर्थ है.

८३. और जो पूर्व कह्या "तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है. औ बंधके अध्यासमें कोई बी दोष बनै नही. यातें बंध सत्य है," सो संका बनै नही. काहेतें, जो दोषतें बिना अध्यास होवै नही; तौ अध्यासका हेतु दोष होवै; जैसे तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवैं तौ पट होवै, औ नही होवैं तौ पट होवै नही. तैसे दोष अध्यासके हेतु नही. काहेतें, सादृस्य दोष बिना आत्मामें जातिका अध्यास होवै है. ब्राह्मनत्वसें आदिलेके जो जाति हैं, सो स्थूल सरीरका धर्म है. आत्माका औ सूछम सरीरका धर्म नही. काहेतें, और सरीरकूं प्राप्त होवै, तब आत्मा औ सूछम सरीर तौ जो पूर्व सरीरमें है, सोई रहै है. औ जाति और बी होवै है. यह नियम नही:—"जो पूर्व सरीरमें जाति है, सोई उत्तर सरीरमें होवै है." आत्माका अथवा सूछम सरीरका धर्म जाति होवै, तौ उत्तर सरीर विषे और जाति नही हुई चाहिये. यातें आत्माका औ सूछम सरीरका धर्म जाति नही; किंतु स्थूल सरीरका धर्म है. औ "मैं द्विजाति हूं" इस रीतिसें ब्राह्मनत्व, छात्रियत्व, वैस्यत्व, जातिका आत्मामें भान होवै है. यातें आत्मामें जातिका अध्यास है. जैसें रज्जुमें सर्प परमार्थसें नही है, औ भान होवै है; यातें रज्जुमें सर्पका अध्यास है. तैसे आत्मामें जाति नही है, औ

भान होवै है; यातें **आत्मामें जातिका अध्यास है.** औ आत्माके साथ जातिका सादृश्य नही है. काहेतें, आत्मा व्यापक है, औ जाति परिछिन्न है. आत्मा प्रत्यक् है, औ जाति पराक है. आत्मा विषयी है, औ जाति विषय है. इस रीतिसें आत्मामें विरोधी जातिका बी अध्यास होवै है. द्विजाति नाम त्रिवर्नका है. जैसे आत्माविषे सादृश्यतें विना जातिका अध्यास होवै है, तैसें **सादृश्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास बी आत्मामें बनै है.** सादृस्य दोष अध्यासका हेतु नहीं. जो सादृस्य दोष अध्यासका हेतु होवै, तौ आत्मामें जातिका अध्यास नही हुवा चाहिये. औ संषमें पीतताका अध्यास नही हुवा चाहिये. औ मिसरीमें कटुताका अध्यास नही हुवा चाहिये. काहेतें. स्वेत औ पीतका विरोध है; सादृस्य नही. तैसे मधुर औ कटुका विरोध है, सादृस्य नही. यातें अधिष्ठानमें मिथ्या वस्तुका सादृस्य दोष अध्यासका हेतु नहीं.

८४. तैसे प्रमाताका लोभ भयादिक दोष बी अध्यासका हेतु नही. काहेतें, जो लोभरहित वैराग्यवान पुरुष है, ताकूं बी सीपीमें रूपेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. यातें **प्रमाताका दोष बी अध्यासका हेतु नही.** औ प्रमानका दोष बी अध्यासका हेतु नही. काहेतें, सर्व पुरुषनकूं रूप रहित जो आकास है, सो नील रूपवाला प्रतीत होवै है. औ कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवै है. यातें सर्वकूं आकासमें नील रूपका, कटाहका, तथा तंबूका अध्यास है. औ सर्वके नेत्र रूप प्रमानमें दोष कहना बनै नही. यातें **प्रमानका दोष अध्यासका हेतु नही.** आकासमें नीलादिकनका जो अध्यास है, ताकेविषे एक प्रमान दोषकाही अभाव नही है; किंतु सर्व दो-

षनका अभाव है; सादृस्य बी नही, औ प्रमाताका दोष बी नही, जैसे सर्व दोषके अभावतें बी आकासमें नीलादिकनका अध्यास होवै है, तैसे आत्माविषे बी बंधका अध्यास दोष बिनाही बनै है. यातें "दोषके अभावतें बंध अध्यास रूप नही" यह संका बनै नही. काहेतें सर्व दोषका अभाव बी है, तौ बी आकासमें नीलादिकनका अध्यास सर्व पुरुषनकूं होवै है. यातें दोष अध्यासका हेतु नही. कवित्वके चतुर्थ पादका यह अर्थ है.:—जिनके कोई पित्त प्रभृति कहिये पित्तसें आदि लेके **अछेम** कहिये दोष नही है. तिनकूं बी आकास नील रूपवान, औ कटाहाकार, औ तंबूके आकार भासै है. यातें प्रमान दोष अध्यासका हेतु नहीं. **छेम** नाम कुसलका है. ताका विरोधी जो प्रमान दोष सो **अछेम** कहिये है. ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमान कहिये है. इस रीतिसें दोष अध्यासके हेतु नही. यातें बंधके अध्यासमें दोषकी अपेछा नही. औ **संछेप सारिरकमें** बंधके अध्यास समय दोष बी प्रतिपादन किये हैं. विस्तारके भयसें हमने नही लिषे. औ अध्यासके हेतु जो दोष होवैं, तो दोष निरूपन करते. सो दोष अध्यासके हेतु नही हैं. यातें बी दोषका निरूपन नही किया. १३

८५ अथ कारन अध्यास निरूपनं.

दोहा.

चित् सामान्य प्रकासतें, नही नसै अज्ञान;
लहै प्रकास सुषुप्तिमें, चेतनतें आज्ञान. १४

टीका:—पूर्व कह्या जो "विसेषरूपसें अज्ञात वस्तुमें अध्यास होवै है. औ आत्मा स्वयं प्रकास है, ताकेविषे अज्ञान बनै नही. काहेतें, तमका औ प्रकासका परस्पर विरोध है. यातें जैसें

अत्यंत प्रकासमें स्थित रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नही. ऐसे स्वयं प्रकास आत्मामें बंधका अध्यास बनै नही." सो संका बी बनै नही. काहेतें, यद्यपि आत्मा प्रकासरूप है; तथापि आत्माका स्वरूप प्रकास अज्ञानका विरोधी नही. जो आत्म स्वरूप प्रकास अज्ञानका विरोधी होवै, तौ सुषुप्तिमें प्रकासरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवै है, सो नही हुवा चाहिये. घोर निद्रासें जाग्या जो पुरुष है, ताकूं ऐसा ज्ञान होवै है, "मैं सुषसें सोया औ कछु बी नही जानता हुवा." या ज्ञानका सुष औ अज्ञान विषय है. सो सुष औ अज्ञानका जो जागृतमें ज्ञान है, सो प्रत्यछरूप नही. काहेतें, जा ज्ञानका विषय सन्मुष होवै, सो ज्ञान प्रत्यछरूप होवै है. औ जागृत कालमें सुष औ अज्ञान है नही. यातें जागृतमें सुष औ अज्ञानका ज्ञान प्रत्यछरूप नहीं; किंतु स्मृतिरूप है. सो स्मृति अज्ञात वस्तुकी होवै नही. किंतु ज्ञात वस्तुकी होवै है. यातें सुषुप्तिमें सुष औ अज्ञानका ज्ञान है. सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरन औ इंद्रिय जन्य तौ है नही. काहेतें, सुषुप्तिमें अंतःकरन औ इंद्रियका अभाव है. यातें सुषुप्तिमें आत्म स्वरूपही ज्ञान है. ज्ञान औ प्रकासका एकही अर्थ है, इस रीतिसें सुषुप्तिमें आत्मा प्रकास रूप है. ता प्रकासरूप आत्मासें स्वरूप सुष औ अज्ञानकी प्रतीति होवै है. जो आत्म स्वरूप प्रकास, अज्ञानका विरोधी होवै, तौ सुषुप्तिमें अज्ञानकी प्रतीति नही हुई चाहिये. यातें आत्मा प्रकास रूप तौ है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकास, अज्ञानका विरोधी नही. उलटा आत्माका स्वरूप प्रकास, अज्ञानका साधक है. इस अभिप्रायतेंही वेदांत सास्त्रमें कह्या है. "सामान्य चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं;" किंतु विशेष

चैतन्यही अज्ञानका विरोधी है. व्यापक जो चैतन्य है; सो **सामान्य चैतन्य** कहिये है. औ वृत्तिमें स्थित जो चैतन्य, सो **विसेष चैतन्य** कहिये है. जैसे काष्ठमें स्थित जो सामान्य अग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नही. औ मथनसें प्रगट किया जो अग्नि है, सो बत्तीमें स्थित होयके अंधकारका विरोधी है. तैसे व्यापक चैतन्य अज्ञानका विरोधी नही बी है, परंतु वेदांतके विचारसें अंतःकरनकी जो ब्रह्माकार वृत्ति हुई है, ताकेविषे स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इस रीतिसें **केवल चैतन्य अज्ञानका विरोधी नही;** किंतु **वृत्ति सहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है.** अथवा चैतन्य सहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथम पछमें तौ अज्ञानके नासका हेतु चैतन्य है; औ वृत्ति सहायक है. **दूसरे पछमें** "अज्ञानके नासका **हेतु** वृत्ति है; औ चैतन्य सहायक है." यह **अवछेद वादकी** रीति है. औ **आभास वादमें** तौ "सामान्य चैतन्यकी न्याई विसेष चैतन्य बी अज्ञानका विरोधी नही. किंतु वृत्ति सहित आभास अथवा आभास सहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है." इस रीतिसें प्रकासरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नही. यातें चैतन्यके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसें आवृत जो आत्मा, ताकेविषे **बंधका अध्यास बनै है.**

८६. और पूर्व कह्या जो "सामान्य रूपतें ज्ञात, औ विसेष रूपतें अज्ञात वस्तुमें अध्यास होवै है. औ आत्मामें सामान्य विसेष भाव है नही. यातें निर्विसेष आत्मा ज्ञात औ अज्ञात बनै नही. ताकेविषे अध्यासका असंभव है." सो वार्ता बी बनै नही. काहेतें, "आत्मा है," यह सर्वकूं प्रतीति होवै है. **आत्मा** नाम अपने स्वरूपका है, "मैं नही हूं" यह किसीकूं प्रतीति होवै नही. "किंतु

"मैं हूं" यह प्रतीति सर्वकूं होवै है. यातें सतरूप करिके आत्मा सर्वकूं भान होवै है. औ चैतन्य आनंद व्यापक नित्यसुद्ध नित्यमुक्त रूप आत्मा है; यह सर्वकूं प्रतीति होवै नही. यातें चैतन्य आनंद व्यापक नित्यसुद्ध नित्यमुक्त रूपतें आत्मा अज्ञात है, औ सतरूप करिके ज्ञात है; यह वार्त्ता अनुभव सिद्ध है. सो अनुभव सिद्ध वार्त्ता युक्तिसें दूरि होवै नही. सर्वकूं प्रतीत जो होवै है **आत्माका सतरूप, सो तो सामान्य रूप है.** औ केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै **चेतन आनंदादिक, सो विसेष रूप है.** जो अधिक कालमें अधिक देसमें होवै, सो **सामान्य रूप** कहिये है. औ न्यून देसमें न्यून कालमें होवै, सो **विसेष रूप** कहिये है. **यद्यपि** आत्माका स्वरूपही चेतन आनंदादिक है, यातें सतकी न्याई चेतन आनंदादिक सर्वत्र व्यापक है. सतकी अपेछातें चेतन आनंदादिकनकूं, न्यून देसमें औ चेतन आनंदादिकनकी अपेछातें सतरूपकूं; अधिक देसमें कहना बनै नही. यातें सतरूप आत्माका सामान्य अंस है. औ चेतन आनंदादिक विसेष अंस है, यह कहना बी बनै नही. **तथापि** सतकी प्रतीति सर्वकूं अविद्या कालमें बी होवै है. औ "चेतन आनंद रूप आत्मा है." यह प्रतीति सर्वकूं अविद्या कालमें होवै नही. केवल ज्ञानीकूंहीं होवै है. अविद्या कालमें चेतन, आनंद, मुक्तता, सुद्धता, बी है; परंतु प्रतीति होवै नही. याते अनहुयेके समान है. इस अभिप्रायतें चैतन्य आनंदादिक न्यून काल वृत्ति कहिये है. औ सतरूप अधिक काल वृत्ति कहिये है. इस रीतिसें सतरूपका औ चेतन आनंदादिकनका सामान्य विसेष भाव नही बी है, परंतु अल्पकाल औ अधिक कालमें प्रतीति होनेतें सामान्य विसेष भावकी न्याई है. या कारनतें **आत्माका सतरूप सामान्य अंस** कहिये है. औ **चेतन**

अनिंदादिक विसेष अंस कहिये है.

औ आत्मा निर्विसेष है. या सिद्धांतकी बी हानी नही. जो आत्मामें सामान्य विसेष भाव अंगीकार करें, तौ "निर्विसेष आत्मा है" या सिद्धांतकी हानी होवै; सो सामान्य विसेष भाव अंगीकार किया नहीं. किंतु अविद्यासें सामान्य विसेषकी न्याई प्रतीति होवै है. यातें सामान्य विसेष भाव कहे हैं. इस रीतिसें सत्यरूप करिके ज्ञात, औ चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करिके अज्ञात, आत्माविषे बंधका अध्यास बनै है. अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसें निवृत्ति बी बनै है. यातें ग्रंथका प्रयोजन संभवै है.

८७. और पूर्व कह्या जो " निषिद्ध काम्य कर्मका त्याग करिके नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्म करै; यातें निषिद्ध कर्मके अभावतें नीच लोककूं प्राप्त होवै नही; औ काम्य कर्मके अभावतें उत्तम लोककूं प्राप्त होवै नही. औ नित्य नैमित्तिक कर्मके नही करनेतें जो पाप होवै, सो तिनके करनेतें होवै नहीं. औ इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारन औ असाधारन प्रायश्चित्तसें नास होवै है. औ पूर्व करे जो काम्य कर्म हैं, तिनके फलकी इच्छाके अभावतें मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नही. यातें मुमुक्षुकूं ज्ञानसें बिनाहीं जन्मका अभावरूप मोक्ष होवै है." सो बनै नही. काहेतें:-

नित्य नैमित्तिक कर्मका बी स्वर्गरूप फल है, यह वार्त्ता भाष्यकारनें युक्ति औ प्रमानसें प्रतिपादन करी है. यातें नित्य नैमित्तिक कर्मसें उत्तम लोककूं प्राप्त होवैगा; जन्मका अभाव बनै नही. औ नित्य नैमित्तिक कर्मका जो फल अंगीकार नही करैं, तौ नित्य नैमित्तिक कर्मका बोधक जो वेद है, सो निष्फल होवैगा. काहेतें, जो नित्य नैमित्तिक कर्मके नही करनेतें पाप होवै, तौ

ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै. सो नित्य नैमित्तिक कर्मके नही करनेतें पाप होवै नही. काहेतें, जो नित्य नैमित्तिक कर्मका नही करना सो अभावरूप है. औ पाप भावरूप है; अभावसें भावकी उत्पत्ति होवै नही. यातें नित्य नैमित्तिक कर्मके नही करनेतें पाप होवै है; यह कहना बनै नही. जो नित्य नैमित्तिक कर्मके नही करनेतें पापकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ "अभावतें भावकी उत्पत्ति होवै नही." यह दूसरे अध्यायमें भगवानने कह्या है; तासें विरोध होवैगा. यातें नित्य नैमित्तिक कर्मके अभावतें भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नही. इस रीतिसें नित्य नैमित्तिक कर्मका, पापकी अनुत्पत्ति फल नही; किंतु नित्य नैमित्तिक कर्मसें बिना बी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है. यातें नित्य नैमित्तिक कर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नही करैं, तौ कर्म निष्फल होवैंगे. औ निष्फल जो नित्य नैमित्तिक कर्म हैं, तिनका बोधक वेद बी निष्फल होवैगा. यातें नित्य नैमित्तिक कर्मसें बी स्वर्ग फल होवै है.

८८. औ "जन्मांतरके जो काम्य कर्म हैं, तिनका इच्छाके अभावतें फल होवै नही." सो वार्त्ता बी बनै नही. काहतें, कर्मरूपी बीजसें दो अंकुर उत्पन्न होवैं हैं. एक तो वासना, औ दूसरा अदृष्ट; धर्म अधर्मका नाम अदृष्ट है. सुभ कर्मसें तौ सुभ वासना औ धर्मरूप अंकुर होवै है, औ असुभ कर्मसें असुभ वासना औ अधर्मरूप अंकुर होवै है. सुभ वासनासें तौ आगे सुभ कर्ममें प्रवृत्ति होवै है. औ धर्मसें सुषका भोग होवै है. इस रीतिसें असुभ वासनासें असुभ कर्ममें प्रवृत्ति होवै है; औ अधर्मसें दुषका भोग होवै है. इस रीतिसें वासनारूप औ अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसें होवै है. तिनविषे "वासनारूप अंकुरका तौ उपायसें नास

होवै है. औ अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसें बिना किसी प्रकारसें बी नास होवै नही." यह शास्त्रका निर्णय है. असुभ कर्मसें उत्पन्न हुवा जो असुभ वासनारूप अंकुर है, ताका तौ सत्सं॰ग आदिक उपायतें नास होवै है. औ सुभ कर्मसें उत्पन्न जो हुई सुभवासना, ताका कुसंग आदिकनतें नास होवै है. सास्त्रमें जित-ना पुरुषार्थ कह्या है; तासें प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना, ताकाही नास होवै है. यातें पुरुषार्थ बी सफल है. औ भोगका हेतु जो अ-दृष्ट, ताका नास होवै नहीं. यातें "फल दिये बिना कर्मकी निवृ-त्ति होवै नहीं." यह वार्त्ता जो सास्त्रमें कही है, तासें बी विरोध नही. इस रीतिसें अज्ञानीकूं फल भोगविना कर्मकी निवृत्ति बनै न-हीं; औ ज्ञानीकूं तौ भोगसें बिना बी कर्मकी निवृत्ति बनै है. काहेतें, कर्म औ कर्त्ता तथा फल परमार्थसें तौ है नही; किंतु अविद्यासें कल्पित है. ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है. यातें अविद्या कल्पित जो कर्मादिक हैं, तिनका बी ज्ञानसें नास होवै है. जैसे स्वप्नविषे निद्रासें जो पदा-र्थ प्रतीत होवै हैं, तिनका जागृतविषे निद्राकी निवृत्तिसें अभाव होवै है. तैसे अविद्यारूप निद्रासें प्रतीत जो होवै हैं कर्म कर्त्ता फल; तिनका बी ज्ञानदसारूप जागृतविषे अविद्याकी निवृत्तिसें अभाव होवै है. औ ज्ञानविना अभाव होवै नही. औ इच्छाके अ-भावतें जो कर्मका फल भोग होवै नही, तौ ईश्वरका संकल्प मि-थ्या होवैगा. काहेतें, "फल भोगविना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नही." यह ईश्वरका संकल्प है. जो इच्छाके अभावतें करे कर्मका फल होवै नही, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्याही होवैगा. औ "सत्य संकल्प ईश्वर है," यह वार्त्ता सास्त्रमें प्रसिद्ध है. यातें "इच्छाके अभावतें पूर्व करे काम्य कर्मका फल होवै नही." यह वार्त्ता विरुद्ध है. जो इच्छाके अभावतेंही काम्य कर्मका फल नही

होवै, तौ असुभ कर्मका फल किसीकूं बी नही हुवा चाहिये. काहेतें असुभ कर्मका फल दुष है; ताकी किसीकूं बी इछा है नही. यातें **ज्ञान बिना कर्मके फलका अभाव होवै नही.**

८९. और जो पूर्व **कह्या**, " जैसे कर्मके अनुष्ठान कालमें जो **इछा** रहित पुरुष है, ताकूं कर्मका फल **वेदांत मतमें** अंगीकार नही कऱ्या. तैसे कर्मके अनुष्ठानसें अनंतर बी जो पुरुषकी इछा दूरि होय जावै, तौ कर्मका फल होवै नही." सो वार्त्ता बी वेदांत मतकूं नही जानिके कही है. काहेतें, फलकी इछा सहित जो कर्म करै, अथवा फलकी इछा रहित जो कर्म करै है, तिनकूं कर्मका फल भोग तौ निश्चय होवै है. परंतु इछा रहित कर्मसें अंतःकरन सुद्ध होवै हैं; औ इछा सहित जो कर्म करै है, ताकूं केवल भोग तौ होवै हैं; परंतु अंतःकरन सुद्ध होवै नही. जो इछा रहित कर्म करनेतें सुद्ध अंतःकरन होयके श्रवनतें ज्ञान होय जावै, ताकूं तौ कर्मका फल होवै नही. औ "जानें कर्म तौ फलकी इछा रहित किये हैं, परंतु श्रवनके अभावतें, अथवा किसी अन्य निमित्ततें ज्ञान होवै नही. ताकूं तौ इछा रहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नही." **यह वेदांतका सिद्धांत है.** यातें ज्ञानसें बिना कर्मका फल भोग दूरि होवै नही.

९० और पूर्व कह्या जो "प्रायश्चित्तसें संपूर्न असुभ कर्मनका नास होवै है" सो वार्त्ता बी बनै नही. काहेतें अनंत कल्पके जो असुभ कर्म हैं, तिनका एक जन्मविषे प्रायश्चित्त बनै नही. औ गंगास्नान औ ईश्वरका नाम उच्चारनसें आदि लेके सर्व पापके नासक जो साधारन प्रायश्चित्त कहे हैं, सो बी ज्ञानके ही साधन हैं. यातें सर्व पापके नासक कहे हैं. यातें **ज्ञानसेंही सर्व पापका नास होवै है.**

९१. और पूर्व कह्या जो "नित्य नैमित्तिक कर्म करनेतें जो क्लेस होवे है, सो पूर्व संचित निसिद्ध कर्मका फल है. यातें संचित निषिद्ध कर्मका फल और होवे नही." सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतें, अनंत प्रकारके संचित निषिद्ध जो कर्म हैं, तिनका फल बी अनंत प्रकारका दुष है. केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेसही तिनका फल बनै नही.

९२. और पूर्व कह्या जो "संपूर्न संचित काम्य कर्मतें एकही सरीर होवे है." सो वार्त्ता बी बनै नही. काहतें संचित काम्य कर्म अनंत हैं; तिनका एक जन्मविषे भोग बनै नही. औ एक पुरुषकूं एक कालमें नाना सरीरसें जो भोग कह्या, सो बी सिद्धयोगी बिना औरकूं बनै नही. औ "सिद्ध योगीकूं बी और तो संपूर्न सामर्थ्य होवे है; परंतु ज्ञानबिना मोछ तो होवे नही." यह वेदका सिद्धांत है. इस रीतिसें काम्य कर्म औ निषिद्ध कर्मकूं त्यागिके जो केवल नित्य नैमित्तिक कर्म अज्ञानी करै, ताकूं नित्य नैमित्तिक कर्मका फल भोगनेके वास्ते; औ पूर्व जो सुभ असुभ कर्म करे हैं, तिनका फल भोगने वास्ते, अनंत सरीर होवेंगे; मोछ होवै नही. यातें ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है. जैसे स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी जागृत बिना निवृत्ति होवै नही. तैसे बंध बी मिथ्या प्रतीत होवे है. ताकी बी ज्ञानरूप जागृत बिना निवृत्ति होवे नही.

९३. इस रीतिसें ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवै हैं. औ अधिकारी आदिकनके संभवतें संबंध बी संभवै है. यातें ग्रंथका आरंभ बनै है.

दोहा.

दादू दीन दयाल जू, सत सुष परम प्रकास;
जामें मतिकी गति नही, सोई निश्चल दास. १५.

इति अनुबंध विसेष निरूपनं नाम द्वितीयस्तरंगः

समाप्तः २

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्री विचार सागरे

तृतीयस्तरंगः प्रारंभः

अंथ श्री गुरु सिष्य लछन, गुरु भक्ति फल प्रकार निरूपनं.

१४ दोहा.

पेषच्यारि अनुबंध युत, पढै सुनै यह ग्रंथ;
ज्ञान सहित गुरुसें जु नर, लहै मोछको पंथ.१.

टीका:- च्यारि अनुबंध सहित ग्रंथकूं जानिके ज्ञान सहित गुरूसें जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्र चित्त करिके सुनै, सो पुरुष मोछका पंथ जो ज्ञान है; ताकूं प्राप्त होवै. १

दोहा.

अनयासहि मति भूमिमें, ज्ञान चिमन आबाद;
व्है इहिं कारन कहतहूं, गुरू सिष्य संवाद. २.

टीका:- गुरु सिष्यके संवादसें अर्थ निरूपन करनेतें श्रोताकूं बोध सुषसें होवै है. इस कारनतें गुरु सिष्यके संवादसें ग्रंथका आरंभ करिये है. २

१५ अथ श्री गुरु लछन.

चौपाई.

बेद अर्थकूं भले पिछानै,

आतम ब्रह्म रूप इक जानै;
भेद पंचकी बुद्धि नसावै,
अद्वय अमल ब्रह्म दरसावै. ३

भव मिथ्या मृग तृषा समाना,
अनुलव इम भाषत नहि आना,
सो गुरु दे अद्भुत उपदेसा,
छेदक सिषा न लुंचित केसा. ४

टीका:— "वेदके अर्थकूं भलि प्रकारसें पिछानै" यह कहनेसें **अधीत वेद आचार्य** होवै है; यह कह्या. औ जीव ब्रह्मकी एकता निश्चय करिके जानै, यातें आत्मज्ञानविषे जाकी स्थिति होवै, सो **आचार्य** होवै है; यह कह्या. जो वेद पढ्या होवै, औ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवै, सो आचार्य नही है. औ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, औ वेद नही पढ्या, सो बी आप तौ मुक्त है, परंतु उपदेस करने योग्य आचार्य नही है, काहेतें, वाकूं जिज्ञासुकी संका मेटनेकी युक्ति नही आवै है. जाके चित्तविषे संका उठै नही ऐसा जो उत्तम संस्कारवाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेस करनेविषे समर्थ है बी, परंतु सर्वके उपदेस करने योग्य नही; यातें आचार्य नही. किंतु **अधीत वेद** होवै, औ ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै सो **आचार्य** कहिये है. औ शिष्यकी बुद्धिमें भान जो होवै **पंच प्रकारका भेद**, ताकूं नाना युक्तिसें दूरि करनेविषे समर्थ होवै:— १एक जीव ईसका भेद, २ जीवनका परस्पर भेद, ३ औ जीव जडका भेद, ४ ईस जडका भेद, ५ जड-जडका भेद, यह पंच प्रकारका भेद है; ताकूं खंडन करै;

काहेतें भेद भयका हेतु है. यातें भेदका निराकरन अवस्य कर्तव्य है. भेदका निराकरन करिके अद्वय औ **अमल** कहिये अविद्यादि मल रहित जो ब्रह्म, ताकूं **दरसावे** कहिये आत्मरूप करिके साछातकार करावै. औ सर्व संसारकूं मिथ्यारूप करिकै उपदेस करै. सो अद्भुत उपदेसं देनेवाला **आचार्य** कहिये है. औ केवल आप मुंडन कराइके सिष्यकी सिषा छेदन मात्र करनेवाला; अथवा और कोऊ संप्रदायके चिन्ह मात्रसें अंकित करनेवाला; आचार्य नही कहिये है. ४

दोहा.

करत मोछ भव ग्राहतें, दे असि निज उपदेस;
सो दैसिक बुध जन कहत, नहि कृत गैरिक वेस. ५

अर्थ स्पष्ट. ५

१६ दोहा

दैसिकके लछन कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार;
सो लछन हैं सिष्यके, जे्हैं जिनतें अधिकार. ६

टीका:- सास्त्रके अनुसार **दैसिक** कहिये गुरु, ताके लछन कहे, औ जिन साधनसें ग्रंथमें अधिकार होवै, सो साधन **सिष्य-के लछन हैं.** याका यह अभिप्राय है:- जो अधिकारीके लछन पूर्व कहे, सोई लछन सिष्यके जानि लेने. ६

१७ अथ गुरु भक्तिका फल वर्नन.

दोहा.

ईश्वरतें गुरुमें अधिक, धारै भक्ति सुजान;

बिन गुरु भक्ति प्रवीनहू, लहै न आतम ज्ञान. ७

टीका:— गुरुमें ईश्वरसें अधिक भक्ति करै. काहेतें, जो सर्व सास्त्रमें प्रवीन बी पुरुष होवे, सो बी गुरुके उपदेस बिना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नही. ७

जो पूर्व दोहेमें बात कही सोई दृष्टांतसें प्रतिपादन करै हैं.

दोहा.

वेद उदधि बिन गुरु लषे, लागै लौन समान;
वादर गुरु मुष द्वार व्है, अमृतसें अधिकान. ८

टीका:— वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है, सो गुरु बिना लौनके समान छार है. जैसें छार समुद्रमें पैठिके वाके जलकूं जो पान करै, सो केवल छारताकूं अनुभव करै है; औ तासूं क्लेसकूं प्राप्त होवै है. तैसे गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारै है, सो भेदरूपी छारकूं अनुभव करिके जन्म मरनरूपी षेदकूं प्राप्त होवै है. इसी कारनसें रामानुज औ मध्वसें आदि लेके, जो नाना पुरुष हुए हैं, तिनोंने वेदके अर्थका विचार बी किया है; परंतु गुरुद्वारा नही किया. यातें भेदविषे निश्चय करिके जन्म मरनरूपी षेदकूंही प्राप्त भये. मुक्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नही भया. यद्यपि रामानुज आदि जो भये हैं, तिनोंने बी वेद अपने अपने गुरुसें ही पठिके विचार्‍या है; औ विचारिके व्याख्यान किया है; तथापि जिनके पास उनूने वेद पढ्या सो गुरु नही; काहेतें, "जो जीव ब्रह्मकी एकताका उपदेस करै सो गुरु होवे है." यह पूर्व गुरु लछनके प्रसंगमें कहि आये. औ उनके जो पाठक हुवे हैं, सो जीव ब्रह्मका भेद उपदेस देनेवाले हुवे हैं, यातें उनके विषे जो गुरु शब्दका प्रयोग करै है, सो अर्हतके समान करै है. जैसे अर्हतके

सिष्य अर्हंतकूं गुरु कहै हैं, परंतु अर्हंत गुरु पदका विषय नही है. तैसे भेदवादी पुरुषनके जो सिष्य हैं, सो अपने पाठकांकूं गुरु कहै हैं. परंतु सो गुरु नही हैं, याते रामानुजसें आदिलेके जो भेदवादी हुवे हैं, तिनोनें गुरु द्वारा विचार नही किया, इस कारनतें भेदमें अभिनिवेस करिके जन्म मरन रूपी क्लेसकूंही प्राप्त भये. तैसे और बी जो कोऊ पूर्व लच्छन युक्त गुरुसें विना आपही वेदके अर्थका विचार करै, अथवा भेद वादी पुरुषसें पढिके विचारै, सो बी भेदरूपी छारकूं अनुभव करिके जन्म मरनरूपी क्लेसकूंही अनुभव करै है. यह दोहेके **पूर्वार्धका अर्थ** है. औ बादर रूपी ब्रह्मवित गुरुके मुषद्वारा जो सुनिके विचारै, ताकूं अमृतसें बी अधिक आनंदका हेतु वेद होवै है. जैसे समुद्रका जल स्वरूपसें छार है, औ बादर द्वारा मधुर होवै है. तैसे **वेदका अर्थ ब्रह्म ज्ञानी गुरु द्वारा आनंदका हेतु है.** ८

९८ पूर्व दोहेमें यह बात कही जो "गुरुसें पढ्या जो वेदका अर्थ है,वाके विचारसें मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवै है;"तासों गुरु ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, ऐसा विसेष नही कह्या; सो अब कहै हैं. यद्यपि " ज्ञान हीन गुरु नही," यह पूर्व कही आये, तथापि पूर्व कही वार्त्ताकूं दृष्टांतसें प्रदिपादन करै हैं,

दोहा.

दृति पुट घट सम अज्ञ जन, मेघ समान सुजान;
पढै वेद इहि हेतु तैं, ज्ञानीपैं तजि आन. ९

टीका:— अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन है, सो दृतिपुट कहिये मसक औ चरस आदि जो चर्म पात्र, अथवा घटद्वारा ग्रहन किया जो समुद्रका जल, सो विलछन स्वादका हेतु नही है. तैसे

अज्ञानी पुरुष द्वारा ग्रहन जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल, सो विलच्छन आनंदका हेतु नही. यातें अज्ञानी पाठक चर्म पात्र, औ घटके समान है, औ **सुज्ञान** कहिये ज्ञानी मेघके समान है. यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है. यातें चर्म पात्र औ घटके समान जो अज्ञानी पाठक हैं, ताकूं त्यागिके मेघ समान जो ज्ञानी, ताहीसूं वेदका अर्थ पढै; अथवा सुनै. ९

९९. "ज्ञानवानके पास वेद पढै." या कहनेतें **यह संका होवै है:**— जो वेदकी श्रुति है, तिनही द्वारा जीव ब्रह्मका स्वरूप विचारनेतें ज्ञान होवै है; अन्य संस्कृत ग्रंथनसें औ भाषा ग्रंथनसें ज्ञान होवै नही. यातें भाषा ग्रंथका आरंभ निष्फल होवैगा.

ताके समाधानका दोहा.

ब्रह्म रूप अहि ब्रह्म वित, ताकी बानी वेद;
भाषा अथवा संसकृत, करत भेद भ्रम छेद. १०

टीका:— "**ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है.**" यह वार्त्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है. यातें ताकी वानी वेदरूप है. सो भाषा रूप होवै, अथवा संस्कृतरूप होवै; सर्वथा भेद भ्रमका छेद करै है. और जो कहै हैं:— "वेदके वचन बिना ज्ञान होवै नही." **सो नियम नही.** जैसे आयुर्वेदमें कहे जो रोग, औ तिनके निदान, औ औषध, तिन संपूर्नका अन्य संस्कृत ग्रंथनसें, औ भाषा फारसी ग्रंथनसें, ज्ञान होय जावै है. तैसे **सर्वका आत्मा जो ब्रह्म, ताका ज्ञान बी भाषादिक ग्रंथनसें होवै है.** इस वास्ते सर्वज्ञ जो रिषी औ मुनि हुवे हैं, तिनोने स्मृति, औ पुरान, औ इतिहास ग्रंथनमें ब्रह्मविद्याके प्रकरन कहे हैं; जो वेदसें बिना ज्ञान न होवै, तौ वे संपूर्न प्रकरन निष्फल होय जावैंगे. यातें

आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है, तासूं ज्ञान होवै है; सो वेदका होवै, अथवा अन्य होवै; यातें भाषा ग्रंथसें बी ज्ञान होवै है. यह वार्त्ता सिद्ध हुई. १०

१०० **दोहा.**

बानी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव;
व्है प्रसन्न जब सेवतें, तब जानै निज भेव. ११

टीका:— जा ब्रह्मवेत्ताकी **बानी** कहिये वचन वेदके समान है, ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै. काहेतें सेवातें जब आचार्य प्रसन्न होवै, तब **निजभेव** कहिये अपना स्वरूप जानै. यह कहनेतें यह वार्त्ता जनाई:— जो **आचार्यकी सेवा है, सो ईश्वरकी सेवासें बी अधिक है.** काहेतें, जो ईश्वरकी सेवा है, सो तौ अदृष्ट फलका हेतु है. औ आचार्यकी सेवा है, सो अदृष्ट फल औ दृष्ट फल दोनूका हेतु है. जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्ति द्वारा फलका हेतु होवै, सो **अदृष्ट फलका हेतु** कहिये है. औ जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिसें विना साछात फलका हेतु होवै, सो **दृष्ट फलका हेतु** कहिये है. ईश्वरकी जो सेवा है, सो धर्मकी उत्पत्ति द्वारा अंतःकरनकी सुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें ईश्वरकी सेवा अदृष्ट फलका हेतु है. औ आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेछा बिना आचार्यकी प्रसन्नता करिके उपदेसरूप फलका हेतु है; यातें दृष्ट फलका हेतु है. औ धर्मकी उत्पत्ति द्वारा अंतःकरनकी सुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें अदृष्ट फलका बी हेतु है. इस रीतिसें आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासें बी उत्तम है. यातें जिज्ञासु सर्व प्रकारसें ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै. ११

१०१ अथ आचार्य सेवा प्रकार.

सोरठा.

व्है जबही गुरु संग, करै दंड जिम दंड वत;
धरि उत्तम अंग, पावन पाद सरोज रज. १२

टीका:– जब गुरु प्राप्त होवै, तब दंडकी न्याई साष्टांग प्रनाम करै. औ पावन कहिये पवित्र जो हैं पादरूपी सरोज कमल तिनकी रज जो धूरि, ताकूं उत्तम अंग कहिये मस्तक ऊपर धरै. १२

चौपाई.

गुरु समीप पुनि करिये वासा,
जो अति उत्कट व्है जिज्ञास;
तन मन धन वच अर्पी देवै,
जो चाहै हिय बंधन छेवै. १३

अर्थ स्पष्ट. १३

१०२ अथ तन अर्पन प्रकार.

चौपाई.

तनकरि बहु सेवा विस्तारै,
आज्ञा गुरुकी कबहु न टारै;

१०३ अथ मन अर्पन प्रकार.

मनमें प्रेम राम सम राषै;
प्रसन्न गुरु इम अभिलाषै, १४

दोषदृष्टि स्वपनें नहि आनै,
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै;
गुरु मूरतिको हियमें ध्याना,
धरि जो चाहै कल्याना. १५

१०४ अथ धन अर्पन प्रकार.

चौपाई.

पत्नी पुत्र भूमि पसु दासी,
दास द्रव्य ग्रह व्रीहि त्रिनासी;
धन पद इन सबहिनकूं भाषै,
व्है गुरु सरन दूरि तिहि नाषै. १६

सोरठा.

धन अर्पनको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो;
व्है ग्रहस्थ गुरु देव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं. १७

टीका:— पत्निसें आदि लेके **व्रीहि** कहिये धान्य पर्यंत सारे **धन** कहिये हैं. तिन सर्वकूं त्यागिके, त्यागी जो गुरु है, ताके सरने होवै; यह **धन अर्पन कहिये है.** काहेतें, **गुरु** त्यागी है, सो आप तौ अंगीकार करै नही. परंतु तिन गुरुकी प्राप्ति वास्ते धनका त्याग किया है. यातें ऐसा जो त्याग है, सो बी गुरुकूंही अर्पन कहिये है.

औ **गृहस्थ जो गुरु** होवै, तिनकूं समग्र चढाई देवै. यह **दूसरे प्रकारका धन अर्पन कहिये है.**

यामें कोउ संका करै है:-

जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नही होवै हैं?

सो संका बनै नहीं

काहेतें, याज्ञवल्क्य औ उद्दालकसें आदिलेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषे बहुत सुने जावै हैं. यातें **गृहस्थ बी आचार्य संभवै है.** १७

१०५ **अथ बानी अर्पनविषे छंद.**

भाषत गुन गन गुरुके बानी सुद्ध;
दोष न कबहू अर्पन करि इम वुद्ध. १८

१०६ सोरठा.

जो चाहै कल्यान, तन मन धन वच अरपि इम;
बसै बहुत गुरु स्थान, भिछातें जीवन करै. १९

टीका:- जो पुरुष अपना कल्यान चाहै, सो पूर्व रीतिसें तन आदि अर्पन करिके आप बहुत काल गुरु जहां होवै; ता स्थानविषे, वा समीपमे वास करै. औ आप भिछातें **जीवन** कहिये प्रान धारन करै. १९

१०७ चौपाई.

सो भिछा धरि दैसिक आगै,
निज भोजनकूं नहि पुनि मागै;
जो गुरु देइ तु जाठर डारै,

नहि दूजे दिन वृत्ति संभारै. २०

टीका:- जो भिछाका अन्न सिष्य ल्यावै, सो आपही भोजन नही करि लेवै. किंतु दैसिक जो गुरु है, तिनके आगे धरि देवै- औ भिछा गुरुके आगे धरिके अपने भोजनकूं गुरुसें मागै नही. औ एक दिनमें दूसरी वार भिछा ग्राममें बी मागै नही. किंतु गुरु जो कृपा करिके देवै, तौ भोजन करै. औ गुरु जो सिष्यकी श्रद्धा की परिछाके निमित्त नही देवै, तौ दूसरे दिन वृत्ति जो भिछा ताकूं संभारै. २०

दोहा.

पुनि गुरुके आगे धरै, भिछा सिष्य सुजान;
निर्वेदन जियमें करै, जो निज चहै कल्यान. २१

टीका:- निर्वेद नाम ग्लानिका है. अन्य अर्थ स्पष्ट. २१

१०८ चौपाई.

इम व्यवहृत अवसर जब पेषै,
मुष प्रसन्न गुरु सन्मुष देषै;
विनती करै दोउ कर जोरी,
गुरु आज्ञातें प्रस्न बहोरी. २२

टीका.-इस रीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकास देषै, औ प्रसन्न मुषसें गुरु जब अपने सन्मुष देषै, तब हाथ जोरिके गुरुकी स्तुति करै; औ वीनति करै. हे भगवन्, "मैं पुछया चाहूं हूं." तब गुरु आज्ञा करै तौ प्रस्न करै.

औ कदाचित् जन्मांतरके उत्तम कर्मतें गुरु कृपा करिके सि-

ष्यकूं तन अर्पन आदि सेवासें बिनाही उपदेस करि देवै, तौ बि-
सुद्ध अधिकारीका कल्यान होय जावै है. काहेते, गुरु सेवाके दो
फल हैं:– एक तौ गुरुकी प्रसन्नता, औ दूसरा अंत:करनकी सु-
द्धि, सो दोनू वाके सिद्ध हैं:– २२

दोहा.

तन मन धन बानी अरपि, जिहिं सेवत चित लाय;
सकल रूप सो आप है, दादू सदा सहाय. २३

इति गुरु सिष्य लछन, गुरु भक्ति फल प्रकार निरूपनं
नाम तृतीयस्तरंग:

समाप्त: ३

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्री विचार सागरे

चतुर्थस्तरंगः प्रारंभः

अथ उत्तमाधिकारी उपदेस निरूपनं.

दोहा.

गुरु सिषके संवादकी, कहूं व गाथ नवीन;
पेषि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन. १

१०९ तीनि सहोदर बाल सुभ, चक्रवती संतान;
सुभसंतति पितु तिहिं नमैं, स्वर्ग पताल जहान. २

तीनौ बाल नाम.

तत्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत **अदृष्ट**;
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ट. ३

चौपाई.

बालपनो सब षेलत षोयो,
तरुन पाय पुनि मदन विगोयो;
धारि नारि गृह मार प्रकासी,
भोग लहै तिहुं सब सुषरासी. ४

११० दोहा.

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहि सर्व समाज;

सुभसंतति निज तेज बल, करत राजके काज. ५
लहि अवसर इक तिहिं पिता, निज हिय रच्यो विचार;
सुष स्वरूप अज आतमा, तासूं भिन्न असार. ६
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतम रूप;
स्वर्ग भूमि पातालके, तिहुं पुत्रह करि भूप. ७

चौपाई.

अस विचार सुभसंतति कीना,
मंत्रि पेषि तिहुं पुत्र प्रवीना;
देस इकंत समीप बुलाये,
निज विरागके वचन सुनाये. ८
भाष्यो पुनि यह राज संभारहु,
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु;
अपर बसहु कासी भुवि स्वामी,
रहत जहां सिव अंतर जामी. ९
जिहि मरतहि सुनि सिव उपदेसा,
अनयासहि तिहिं लोक प्रवेसा;
गंग अंग मनु कीर्त्ति प्रकासै,
उत्तर वाहनि अधिक उजासै. १०

दोहा

करहु राज इम भिन्न तिहुं, पालहु निज निज देस;

बिनं विभाग भ्रातानको, भूमि काज व्है क्लेस. ११

इंदव छंद.

राज समाज तजौं सब मैं अब,
जानि हिये दुष ताहि असारा;
और तु लोक दुषी अपने दुष,
मैं भुगत्यो जग क्लेस अपारा;
जे भगवान प्रधान अजान,
समान दरिद्रन ते जन सारा;
हेतु विचार हिये जगके भग,
त्यागि लषूं निज रूप सुषारा. १२

१११ वाक्य अनंत कहै इम तात,
सुनै तिहुं भ्रात सु बुद्धि निधाना;
बैठि इकंत विचार अपार,
भनै पुनि आपस मांहि सुजाना;
दे दुष मूल समाज हमैं यह,
आप भयो चह ब्रह्म समाना;
सो जन नागर बुद्धिक सागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना. १३

११२ दोहा.

यातें तजि दुष मूल यह, राज करौ निज काज;

करि विचार इम गेहतें, निकस्यो भ्रात समाज. १४
तिहुं षोजत सद्गुरू चले, धारि मोछ हिय काम;
अर्थ सहित किय तातको, सुभसंतति यह नाम. १५
षोजत षोजत देस वहु, सुरसरि तीर इकंत;
तरु पल्लव साषा सघन, बन तामें इक संत. १६
बैठ्यो बट विटपाहिं तरे, भद्रा मुद्रा धारि;
जीव ब्रह्मकी एकता, उपदेसत गुन टारि. १७
दोष रहित एकाग्र चित, सिष्य संघ परिवार;
लषि दैसिक उपदेस हिय, चहुधा करत विचार. १८
मनहु संभु कैलासमें, उपदेसत सनकादि;
पेषि ताहि तिहिं लहि सरन, करी दंडवत आदि. १९
कियो वास षट मास पुनि, सिष्य रीति अनुसार;
करी अधिक गुरु सेव तिहुं, मोछ काम हिय धार. २०
व्है प्रसन्न श्री गुरु तबै, ते पूछै मृदु बानि;
किहिं कारन तुम तात तिहु, बसहु कौन कह आनि, २१
तत्वदृष्टि तब लषि हिये, निज अनुजनकी सैन;
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके बैन. २२

११३ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

भो भगवन हम भ्रात तिहुं, सुभसंतति संतान;
लष्यो चहैं बहु भेव हिय, दीन नवीन अजान. २३

जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वैं पूछि प्रवीन;
आप दया निधि कल्पतरु,हम अति दुषित अधीन.२४

श्रीगुरुरुवाच

सोरठा.

सुनहु सिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूं;
लहो हिये कुसलात, संसय कोऊ ना रहै. २५

११४　　दोहा.

गुरुकी लषी दयालुता, सिष्य हिये भौ चैन;
काज सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सबिनय बैन. २६

तत्वदृष्टिरुवाच

चौपाई.

भो भगवन तुम कृपा निधाना,
हौ सर्वज्ञ महेस समाना;
हम अजान मति कछू न जानैं,
जन्मादिक संसृति भय मानैं. २७
कर्म उपासन कीने भारी,
और अधिक जग पासी डारी;
आप उपाय कहौ गुरु देवा,
ह्वै जातें भव दुषको छेवा. २८

पुनि चाहत हम परमानंदा,
ताको कहो उपाय सुछंदा;
जब कृपाकरी कहिहौ ताता,
तब व्हैहै हमरे कुसलाता. २९

टीका:— हे भगवन्, आप कृपानिधान हौ; औ सदासिवके समान आप सर्वज्ञ हौ. औ हे भगवन्, हम जन्म मरनसें आदि-लेके जो दुषरूप संसार है, तासें डरें हैं; ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो. औ परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहो. औ हे गुरो, उपासना औ कर्मके अनंत अनुष्ठान करे बी, परंतु उनसें हमारेकूं वांछित फल प्राप्त भया नही. औ उलटा संसार उनसें बधता गया. यातें आप और उपाय बतावौ. जा करिके हम कृतार्थ होवें. २९

११५ दोहा.

मोछ काम गुरु सिष्य लषि, ताको साधन ज्ञान;
वेद उक्त भाषन लगे, जीव ब्रह्म भिद भान. ३०

टीका:— दुषकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिकूं मोछ कहे हैं. ताकी कामना सिष्यके हृदयमें देषिके, ताका साधन जो वेद उक्त ज्ञान है, सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेक सास्त्रनविषे भिन्न भिन्न वर्नन किया है, तथापि जीव ब्रह्मकी भिद कहिये भेद, ताकूं दूरि करनेवाला जो ज्ञान है, सोई वेदमें मोछका साधन कह्या है; यातें ताहीकूं कहे हैं. ३०

श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

परमानंद मिलाप तूं, जो सिष चहै सुजान;

जन्मादिक दुष नास पुनि, भ्रांति जन्य तिहिं मान. ३१
परमानंद स्वरूप तूं, नहि तोमैं दुष लेस;
अज अविनासी ब्रह्म चित्, जिन आनै हिय क्लेस. ३२

टीका:– हे सिष्य परमानंदकी प्राप्तिविषे, औ जन्म मरनसे आदि लेके जो दुषरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषे, जो तेरेकूं इच्छा भई है, ता इछाकी भ्रांतिसें उत्पत्ति हुई है; तूं ऐसे जान. काहेतें, **तूं आप परम आनंद स्वरूप है. यातें ताकी प्राप्तिकी इछा बनै नही.** जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है. औ अपना जो स्वरूप है, सो सदा प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषे जो इच्छा, सो भ्रांति बिना बनै नही. औ जन्मसें आदि लेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवै, तौ वाकी निवृत्तिविषे इच्छा बनै. सो जन्मादिक संसारका लेस बी तेरेविषे नही है. यातें अनहुये दुषकी निवृत्ति विषे बी इच्छा भ्रांति विना बनै नही. औ हे सिष्य जन्म औ नास करिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तूं है. यातें अपने हृदयविषे जन्मादिक षेद मति मान. ३२

११८ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

दोहा.

विषय संग क्यूं भान व्है, जो मैं आनंद रूप;
अब उत्तर याको कहौ, श्री गुरु मुनिवर भूप. ३३

टीका:– हे भगवन्, जो मेरा आत्मा आनंदरूप होवै, तौ विषयके संबंधसें आनंदका आत्माविषे भान नही हुवा चाहिये. यातें आत्मा आनंदरूप नही. किंतु विषयके संबंधसें आत्माविषे आनंद होवै है. ३३

११७

श्रीगुरुरुवाच

चौपाई.

आतम विमुष बुद्धि जन जोई,
इच्छा ताहि विषयकी होई;
तासूं चंचल बुद्धि बषानी,
सुष आभास होइ तहँ हानी. ३४
जब अभिलषित पदारथ पावै,
तब मति छनक विछेप नसावै;
तामें व्है अनंद प्रतिबिंबा,
पुनि छनमें बहु चाह विडंबा. ३५
तातें व्है थिरताकी हानी,
सो अनंद प्रतिबिंब नसानी;
विषय संग आनंद जु होई,
विन सतगुरु यह लषै न कोई. ३६

टीका:— हे सिष्य आत्मासें विमुष है बुद्धि जाकी, ऐसा जो पुरुष, ताकूं विषयकी इच्छा होवै है. या स्थानविषे जो भोगका साधन होवै, सो **विषय** कहिये है. यातें धन पुत्रादिकनका बी ग्रहन करि लेना. ता विषयकी इच्छातें बुद्धि चंचल रहै है. ता चंचल बुद्धिमें आत्म स्वरूप आनंदका **आभास** कहिये प्रतिबिंब नही होवै है. औ जिस विषयकी इच्छा हुई होवै, सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै, तब या पुरुषकी बुद्धि छनमात्र स्थिर होयके अंतर्मुष बुद्धिकी वृत्ति होवै है. ता **अंतर्मुष वृत्तिविषे आत्माका स्वरूप**

जो आनंद, ताका प्रतिबिंब होवे है. तिस आत्म स्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभव करिके पुरुषकूं भ्रांति होवे है; जो मेरेकूं विषयसें आनंदका लाभ हुवा है. परंतु विषयमें आनंद है नही.

जो कदाचित् विषयमें आनंद होवै, तौ एक विषयसें तृप्त जो पुरुष, ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवै, तब बी प्रथम विषयसें आनंद हुवा चाहिये; सो होवै तो नही है. औ हमारी रीतिसें स्वरूप आनंदका तौ भान बनै नही. काहेतें, जो दूसरे विषयकी इच्छा करिके बुद्धि चंचल है, ताकेविषे प्रतिबिंब बनै नही. किंवाः—

जो विषयमेंही आनंद होवै, तौ जा पुरुषका प्रिय पुत्र, अथवा और कोई अत्यंत प्यारा, जो अकस्मात बहुत काल पीछे मिलि जावै, तब वाकूं देषतेही प्रथम जो आनंद होवै, सो आनंद फेरि सदा नही होता; सो सदाही हुवा चाहिये. काहेतें, आनंदका हेतु जो पुरुष है, सो वांके समीप है. औ हमारी रीतिसें तौ प्रथमही आनंद बनै है; सदा बनै नही. काहेतें, एक वेरि प्यारेकूं देषिके वृत्ति स्थित होवै है, फेरि वृत्ति और पदार्थमें लगि जावै है; यातें चंचल है. यातें पदार्थमें आनंद नही. किंवाः—

जो विषयमें आनंद होवै, तौ समाधिकालविषे जो योगानंदका भान होवै है, सो न हुवा चाहिये; काहेतें, समाधिमें किसी विषयका संबंध नही है. किंवाः—

जो विषयमेंही आनंद होवै, तौ सुषुप्तिमें आनंदका भान नही हुवा चाहिये. काहेतें, सुषुप्तिविषे बी किसी विषयका संबंध है नही. यातें विषयमें आनंद नही. किंतु आत्म स्वरूप आनंद सारे भान होवे है; इसी वास्ते वेदमें लिष्याहैः— "आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंद वाले होवे हैं."

दोहा.

विषय संगतें व्है प्रगट, आतम आनँद रूप;
सिष्य सुनायो तोहि मैं, यह सिद्धांत अनूप. ३७

सोरठा.

सो तूं मोहि व भाष, जो यामें संका रही;
निज मतिमें मति राष, मैं ताको उत्तर कहूं. ३८

११८ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

चौपाई.

भो भगवन तुम दीन दयाला,
मेटचो मम संसय ततकाला;
यामें कछुक रही आसंका,
सो भाषूं अब व्है निर्वंका. ३९
आतम विमुष बुद्धि अज्ञानी,
ताकी यह सब रीति बषानी;
ज्ञानी जनकी कहीं विचारा,
कोउ न तुम सम और उदारा. ४०

टीका:— हे भगवन्, आपने पूर्व विषयके संबंधसें आत्मानंदके भानकी जो रीति कही, सो अज्ञानी पुरुषकी कही; औ ज्ञानीकी नही कही. काहेतें, आत्मासें विमुष है बुद्धि जाकी, ताका आपने नाम लिया है; सो आत्मासें विमुष बुद्धि अज्ञानीकी होवै है; ज्ञानीकी नही. यातें आप अब ज्ञानीका विचार कहो. जो

ज्ञानवानकूं विषयकी इच्छा, औ ताके संबंधसें पूर्वरीति करि-के सुषका भान होवे है, अथवा नही? यह वार्त्ता आप कहो. ४०

११९ **श्रीगुरुरुवाच.**

दोहा.

सुनहु सिष्य इक बात मम, सावधान मन कान;
हैं द्वैविध आतम विमुष, अज्ञानी रु सुजान. ४१
व्है विस्मृत व्यवहारमें, कबहुक ज्ञानी संत;
अज्ञानी विमुषहि रहै, यह तूं जान सिद्धांत. ४२

टीकाः—हे सिष्य तूं चित्त औ श्रवनकूं सावधान करके सुन. पूर्व जो हमने आत्म विमुष कह्या है, सो आत्मविमुष अज्ञानीही नही होवै. किंतु ज्ञान वानकी बी बुद्धि जब व्यवहारमें आइ जावै, तब वह तत्वकूं भूलि जावै है. तिस कालविषे ज्ञानवान बी आत्मविमुषही होवै है. औ ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकारही रहै. तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै. यातें आत्मविमुष बुद्धि दोनूवांकी बनै है. अज्ञा-नीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुष है. औ ज्ञानीकी बुद्धि आत्मवि-मुष होवै तिस कालमें ज्ञानीकूं बी इछा, औ विषयके संबंधसें आत्मस्वरूप आनंदका भान, अज्ञानीके समान है; परंतु इतना भे-द है:— विषयके संबंधसें जो आनंदका भान होवै है, ताकूं ज्ञानी तौ जानै है, जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसे न्यारा नही है; किंतु ताकाही आभास है. यातें ज्ञानीकूं विषय भोगमें बी समाधिही है. औ अज्ञानी नही जानै है; जो मेराही स्वरूप आनंद है. औ दोनूंका स्वरूप आनंद है. विषयसें केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है.

१२० **शिष्यउवाच.**

चौपाई.

हे प्रभु परमानंद बषान्यो,
मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो;
नहि तोमें भव बंधन लेसा,
कह्यो आप पुनि यह उपदेसा. ४३
यामैं संका मुहि यह आवै,
जातें तव वच हिय न सुहावै;
नहि मोमें यह बंध पसारो,
कहौ कौन तौ आश्रय न्यारो? ४४

टीका:— हे भगवन्, आपने कह्या तूं परम आनंद स्वरूप है. सो मैं भली प्रकारसें जान्या. और आपने कह्या जो जन्म मरनसें आदिलेके संसाररूप दुष तेरेविषे हैं नही; यातें ताकी निवृत्ति बनै नही. याके विषे मेरकूं **संका है:**— जो जन्मादिक दुष मेरे विषे नही हैं; तौ जा विषे यह संसार है, सो मेरेसें **न्यारा** कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करिके बतावौ. जाकेविषे संसार दुष जानि-के अपनेविषे नही मानूं.

१२१ **श्रीगुरुरुवाच.**

सोरठा.

सुनहु सिष्य मम बानि, जातें तव संका मिटै;

है जगकी अति हानि, तो मोमें नहि औरमें. ४५

अर्थ स्पष्ट. ४५

१२२ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

दोहा.

जो भगवन कहुं है नही, जन्म मरन जग षेद;
है प्रत्यछ प्रतीति क्यूं? कहो आप यह भेद. ४६

टीका:— हे भगवन्, जो जन्म मरनसे आदिलेके संसार दुष मेरेविषे तथा औरविषे कहूं बी नही है, तौ प्रत्यछ प्रतीत क्यूं होवै है? जो वस्तु नही होवै, सो प्रतीत होवै नही. जैसे वंध्याका पुत्र, औ आकासविषे पुष्प नही है; सो प्रतीत होवै नही. तैसे संसार बी नही होवै तौ प्रतीत नही हुवा चाहिये. औ जन्मसे आदि लेके संसार प्रतीत होवै है, यातें "जन्मादिक संसाररूपी दुष नही है;" यह कहना बनै नही. ४६

१२३ **श्रीगुरुरुवाच.**

दोहा.

आत्मरूप अज्ञानतें, है मिथ्या परतीति,
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जु भुजगकी रीति. ४७

टीका:— जन्मादिक जगत परमार्थसें नही है. तौ बी आत्माका अज्ञस्वरूप करिके अज्ञानतें मिथ्या प्रतीत होवै है. जैसे स्वप्नके पदार्थ, आकासमें नीलता, औ रज्जुमें सर्प परमार्थसें नही हैं; औ मिथ्या प्रतीत होवै हैं; तैसे जन्मादिक जगत परमार्थसें नही है, मिथ्या प्रतीत होवै है.

१२४ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

चौपाई.

मिथ्या सर्प रज्जुमें जैसै,
भाष्यो भव आतममें तैसे;
कैसे सर्प रज्जुमें भासै,
यह संसय मन बुद्धि विनासै. ४८

टीका:- जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या है, तैसे आत्मामें भव दुष मिथ्या कह्या; तहां दृष्टांतके ज्ञानबिना दार्ष्टांतका ज्ञान होवै नही. यातें रज्जुमें सर्प कैसे भासै? यह दृष्टांतमें प्रश्न है. ४८

१२५ **अथ प्रश्न अभिप्राय.**

चौपाई.

असत ष्याति पुनि आतम ष्याती,
ष्याति अन्यथा अरु अष्याती;
सुने च्यारि मत भ्रमकी ठौरा,
मानूं कौन कहौ यह ब्यौरा. ४९

टीका.- जहां रज्जुमें सर्प, औ सीपिमें रूपा, इत्यादिक भ्रम है, तहां च्यारि मत सुने हैं:- सून्य वादी **असत्यष्याति** कहै हैं, छिनक विज्ञान वादी **आत्मष्याति** कहै हैं, न्याय औ वैसेषिक मतमें **अन्यथाष्याति** कहै हैं, सांष्य औ प्रभाकर **अष्याति** कहै हैं. तहां:-

१२६. सून्य वादीका यह अभिप्राय है:- जेवरी

देसमें सर्प अत्यंत असत है; तैसे अन्य देसमें बी अत्यंत असत है. ऐसे अत्यंत असत सर्पकी जेवरी देसमें प्रतीति होवै है; याकूं **असत्यख्याति** कहे हैं. अत्यंत असत्य सर्पकी **ख्याति** कहिये भान औ कथन है.

१२७. **विज्ञानवादीका यह अभिप्राय है:**— जेवरी देसमें तथा अन्य देसमें बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नही. सारे पदार्थ बुद्धिसें भिन्न नही. किंतु सर्व पदार्थनके आकारकूं बुद्धि ही धारै है. सो **बुद्धि छनिक विज्ञानरूप है.** छन छनमें नास औ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवै जो **विज्ञान**, सोई सर्प रूप प्रतीत होवै है. याकू **आत्मख्याति** कहे हैं. **आत्मा** कहिये छनिक विज्ञान रूप बुद्धि, ताका सर्प रूपसें **ख्याति** कहिये भान औ कथन है.

१२८. **नैयायिकका औ वैसेषिकका यह अभिप्राय है:**— बंबी आदिक स्थानमें साचा सर्प है, ताकूं नेत्रसें देखै है. औ नेत्रमें दोष है, ताके बलतें सन्मुष समीप प्रतीत होवै है. **यद्यपि** साचा सर्प औ नेत्रके मध्य भीति आदिक अंतराय हैं, **तथापि** दोष सहित नेत्रतें अंतराय सहित बी सर्प दिखै है. औ यामें कोउ ऐसी **संका** करै:— दोषतें सामर्थ्य घटै है, वधै नही. जैसे जठराग्निमें पाचन सामर्थ्य वात पित्त कफ दोषतें घटै है. वैसे नेत्रमें बी तिमिरादि दोषतें सामर्थ्य घटी चाहिये. औ बंबी आदिक स्थानमें स्थित सर्पका दोष सहित नेत्रतें ज्ञान कह्या, तहां सुद्ध नेत्रसें तौ परदेमें स्थितका प्रत्यछ ज्ञान होवै नही; औ दोष सहितसें होवै है. यातें दोषतें नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवै है; यह माननेमें कोई दृष्टांत नही. **सो संका बनै नही.** काहेतें किसकूं पित्त दोषतें ऐसा रोग होवै है; जो चतुर्गुन भोजन कियेतें बी तृप्ति होवै नही. जैसें पित्त दोषतें जठ-

राग्निमें पाचन सामर्थ्य वधै है, तैसे नेत्रमें बी तिमिरादि दोषतें परदेमें स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य वधै है. इस रीतिसें बंबी आदिक देसमें स्थित सर्पका **अन्यथा** कहिये और प्रकारतें सन्मुष जेवरी देसमें जो **ख्याति** कहिये भान औ कथन सो **अन्यथा ख्याति** कहिये है. औः—

१२९. चिंतामनिकार(नैयायिक)का यह मत है:— जो दोष सहित नेत्रतें बंबीमें स्थित सर्पका ज्ञान होवै, तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञान बी हुवा चाहिये. यातें परदेमें स्थित वस्तुका नेत्रसें ज्ञान होवै नहीं; किंतु दोष सहित नेत्रतें जेवरीका निज रूपतें भान होवै नहीं, सर्प रूपतें भान होवै है. यातें जेवरीकाहीं **अन्यथा** कहिये और प्रकारतें सर्प रूपतें जो **ख्याती** कहिये भान औ कथन, सो **अन्यथा ख्याति** कहिये है.

१३० औ अख्याति वादीका यह अभिप्राय है:— जो असतकी प्रतीति होवै, तौ वंध्या पुत्र, औ सस सृंगकी प्रतीति हुई चाहिये. यातें **असत ख्याति असंगत है.** छनिक विज्ञानकाही आकार सर्पादिक होवै, तौ छनमात्रसें अधिक काल स्थिर प्रतीति नही हुई चाहिये. यातें **आत्म ख्याति असंगत है.** औ अन्यथा ख्यातिकी प्रथम रीति तौ चिंतामनिके मतसें दूषितही है. तैसे चिंतामनिकी रीतिसें बी **अन्यथा ख्याति मत असंगत है.** काहेतें, ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवै है. ज्ञेय रज्जु औ सर्पका ज्ञान यह कहना अत्यंत विरुद्ध है. यातें यह रीति माननी योग्य है.—

जहां रज्जुमें सर्प भ्रम है, तहां रज्जुसें नेत्रका अपनी वृत्ति द्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपतें सामान्य ज्ञान होवै है; औ सर्पकी स्मृति होवै है. "यह सर्प है" यामें दो ज्ञान हैं:— "यह" अंस तौ रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, औ "सर्प है" ऐसे

सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इस रीतिसें "यह सर्प है" इहां दो ज्ञान हैं; परंतु भय दोष प्रमातामें, औ तिमिर दोष प्रमानमें, ताके बलतें पुरुषकूं ऐसा विवेक नही होता जो मेरेकूं दो ज्ञान हुवे हैं; यद्यपि "यह" अंस रज्जुका सामान्य ज्ञान यथार्थ है. औ पूर्व देषे सर्पका स्मृति ज्ञान बी यथार्थही है. तौ बी मेरेकूं दो ज्ञान हुवे हैं. तिनमें रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है; औ सर्पका स्मृति ज्ञान है; यह विवेक नही होवै है. तिस दो ज्ञानके अविवेककूंही सांख्य प्रभाकर मतमें भ्रम कहे हैं. यही रीति सारे भ्रमस्थलमें जाननी. या रीतिसें रज्जु आदिकनमें सर्पादिक भ्रम जहां होवै, तहां च्यारि मत सुने हैं. तिनमें नीका मत होई सो कहो; ताही-कूं में मानूं; यह शिष्यका प्रश्न है. ४९

१३१ **श्रीगुरुरुवाच.**

दोहा.

ख्याति अनिर्वचनीय लषि, पंचम तिनतें और;
युक्तिहीन मत च्यारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर. ५०

टीका:—हे सिष्य, तिन च्यारि ख्यातितें औरही भर्मकी ठौर **अनिर्वचनीय ख्याति पंचम लष. औ असत ख्याति, आत्म ख्याति, अन्यथा ख्याति, अख्याति ; ये च्यारू मत युक्ति हीन हैं.** जैसे उत्तर उत्तर मत निरूपनमें तीनि मत असंगत कहे; तैसे अख्याति मत बी असंगत है. काहेतें "यह सर्प है" या ज्ञानमें प्रथम "यह" अंस तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है; औ "सर्प है" इतना अंस पूर्व दृष्ट सर्पका स्मरन ज्ञान है. यह अख्याति वादीका मत है; तहां पूर्व दृष्ट सर्पका स्मरनही मानैं, औ सन्मुष

रज्जु देसमें सर्पका ज्ञान नही मानें, तौ सन्मुष रज्जुतें पुरुषकूं भय होयके उलटा भागै है, सो भय औ भागना नही हुवा चाहिये. यातें:–

१३२ सन्मुष रज्जु देषमेंही सर्पकीप्रतीति होवै है; पूर्व दृष्ट सर्पकी स्मृति नही. **किंवा:**–रज्जुका विसेष रूपतें यथार्थ ज्ञान हुयेतें अनंतर ऐसा बाध होवै है:–"मेरेकूं रज्जुमें सर्पकी प्रतीति मिथ्या होति भई." या बाधतें बी रज्जुमेंही सर्पकी प्रतीति होवै है, पूर्व दृष्ट सर्पकी स्मृति नही. औ "यह सर्प है" इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवै है, दोनही. औ एक कालमें अंत:करनतें स्मृति रूप औ प्रत्यक्ष रूप दो ज्ञान होवैं बी नही. यातें **अख्याति मत बी अत्यंत असंगत है**. इन च्यारू मतनका प्रतिपादन औ षंडन, विवरन औ स्वाराज्यसिद्धि आदिक ग्रंथनमें विस्तारसें लिख्या है. प्रतिपादन औ षंडनकी युक्ति कठिन है, यातें संक्षेपतें जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तार हमनें लिख्या नही.

१३३. **सिद्धांतमें अनिर्वचनीय ख्याति है ; ताकी यह रीति है:**– अंत:करनकी वृत्ति नेत्रादि द्वारा निकसिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवै है ; तातें विषयका आवरन भंग होयके ताकी प्रतीति होवै है. तहां प्रकास बी सहायक होवै है. प्रकास बिना पदार्थकी प्रतीति होवै नही. जहां रज्जुमें सर्प भर्म होवै है, तहां अंत:करनकी वृत्ति नेत्र द्वारा निकसि बी, औ रज्जुसें ताका संबंध बी होवै ; परंतु तिमिरादिक दोष प्रतिबंधक हैं ; यातें रज्जुके समानाकार वृत्तिका स्वरूप होवै नही; यातें रज्जुका आवरन नासै नही. इस रीतिसें आवरन भंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेतें बी, जब रज्जुका आवरन भंग होवै नही, तब रज्जु चेतनमें स्थित अविद्यामें छोभ होयके, सो अविद्या सर्पाकार

परिनामकूं प्राप्त होवै है. सो अविद्याका कार्य सर्प सत होवै, तौ रज्जुके ज्ञानसें ताका बाध होवै नही; औ बाध होवै है; यातें सत नही. औ असत होवै तौ वंध्या पुत्रकी न्याई प्रतीति नही होवै, औ प्रतीति होवै है; यातें असत बी नही. किंतु सत असतसें विलछन **अनिर्वचनीय** है. सुक्ति आदिकनमें रूपादिक बी याहि रीतिसें अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै है. ता अनिर्वचनीयकी जो **ख्याति** कहिये प्रतीति औ कथन, सो **अनिर्वचनीय ख्याति** कहिये है.

१३४. जैसे सर्प अविद्याका परिनाम है, तैसे ताका ज्ञानरूप वृत्ति बी अविद्याकाही परिनाम है; अंतःकरनका नही. काहेतें, जैसे रज्ज ज्ञानतें सर्पका बाध होवै है, तैसे ताके ज्ञानका बी बाध होवै है. अंतःकरनका ज्ञान होवै तौ बाध नही हुवा चाहिये. यातें ज्ञान बी सर्पकी न्याई अविद्याका कार्य सत असतसें विलछन **अनिर्वचनीय** है. परंतु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित **तमोगुन प्रधान अविद्या अंसका परिनाम सर्प है**; औ साछी चेतनमें स्थित **अविद्याके सत्वगुनका परिनाम वृत्ति ज्ञान है**. रज्जु चेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिनाम होवै है, ताही समय साछी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिनाम होवै है. काहेतें, रज्जु चेतन आश्रित अविद्यामें छोभका जो निमित्त है, ता निमित्तसेंही साछी आश्रित अविद्या अंसमें छोभ होवै है. यातें भर्म स्थलमें सर्पादिक विषय, औ तिनका ज्ञान, एकही समय उत्पन्न होवै हैं. औ रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानतें एकही समय लीन होवै है. या रीतिसें सर्पादिक भ्रमविषे **बाह्य अविद्या** अंस सर्पादिक विषयका उपादान कारन है, औ साछी चेतन आश्रित **अंतर अविद्या** अंस

तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादान कारन है.

औ स्वप्नमें तौ साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुन अंस विषयरूप परिनामकूं प्राप्त होवै है. ता अविद्यामें सत्वगुन अंस ज्ञानरूप परिनामकूं प्राप्त होवै है. यातें **स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय औ ज्ञान दोनूंका उपादान कारन है.** याहीतें बाह्य रज्जु सर्पादिक, औ अंतर स्वप्न पदार्थ, साक्षी भास्य कहिये हैं. अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षी **भासै** कहिये प्रकासै सो **साक्षीभास्य** कहिये है.

१३५ रज्जु आदिकनमें **अनिर्वचनीय सर्पादिक,** औ तिनका ज्ञान **भ्रम** कहिये है; औ **अध्यास** कहिये हैं. सो भ्रम **अविद्याका परिनाम** है; औ **चेतनका विवर्त** है. उपादान कारनके समान स्वभाववाला अन्यथा स्वरूप **परिनाम** कहिये है. औ अधिष्ठानतें विपरीत स्वभाववाला अन्यथा स्वरूप **विवर्त्त** कहिये है. उपादानकारन अविद्या, सो **अनिर्वचनीय** है. तैसे रज्जुमें सर्प औ ताका ज्ञान बी **अनिर्वचनीय है.** यातें रज्जु सर्प औ ताका ज्ञान अविद्याके समान स्वभाववाला **अन्यथा स्वरूप** कहिये अविद्यातें और प्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिनाम है. तैसे रज्जु अवच्छिन्न अधिष्ठान, चेतन सतरूप है, सर्प औ ताका ज्ञान सतसें विलक्षन हैं. यातें रज्जु, सर्प औ ताका ज्ञान अधिष्ठान चेतनतें विपरीत स्वभाववाला, **अन्यथा स्वरूप** कहिये चेतनसें और प्रकारका आकार है.

१३६ **मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है,** रज्जु नहीं. काहेतें, सर्पकी न्याई रज्जु बी कल्पित है. **कल्पित वस्तु अन्य कल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं.** यातें रज्जु उपहित चेतनही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं. औ रज्जु विसिष्टकूं अ-

धिष्ठान कहैं, तौ बी रज्जु औ चेतन दोनूं अधिष्ठान होवैंगे. तहां रज्जु भागमें अधिष्ठानपना बाधित है. यातें रज्जु उपहित चेतनही अधिष्ठान है. रज्जु विशिष्ठ चेतन नही; तैसे **सर्पके ज्ञानका साछी चेतन अधिष्ठान है**; या रीतिसें भ्रमस्थानमें विषयका औ ताके ज्ञानका **उपाधि भेदसें अधिष्ठान भिन्न है**; एक नही. औ विसेषरूपतें रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामें छोभद्वारा दोनूंकी उत्पत्तिमें निमित्त हैं. तैसे रज्जुका ज्ञान दोनूंकी निवृत्तिमें बी निमित्तकही है. याकेविषै:—

१३७ ऐसी संका होवै है.

रज्जुके ज्ञानतें सर्पकी निवृत्ति बनै नही. काहेतें, मिथ्या वस्तुका जो अधिष्ठान होवै, ता अधिष्ठानके ज्ञानतें मिथ्याकी निवृत्ति होवै है. **यह अद्वैत वादका सिद्धांत है**. औ मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है; रज्जु नही. यातें **रज्जुके ज्ञानतें सर्पकी निवृत्ति बनै नही**. या संकाका:—

१३८ यह समाधान है.

रज्जु आदिक जड पदार्थका ज्ञान अंतःकरनकी वृत्तिरूप होवै, तहां आवरन भंग वृत्तिका प्रयोजन है. सो **आवरन अज्ञानकी सक्ति है**. यातें आवरन जडके आश्रित है नही. किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन, ताके आश्रित है. यातें रज्जु समानाकार अंतःकरनकी वृत्तितें रज्जु अवच्छिन्न चेतनकाही आवरन भंग होवै है. वृत्तिमें जो चिदाभास है, तातें रज्जुका प्रकास होवै है. चेतन स्वयंप्रकास है. तामें आभासका उपयोग नही. यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसें चिदाभास सहित अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञानमें जो वृत्ति भा-

ग, ताका **आवरन भंगरूप फल** चेतनमें होवै है, औ चिदाभा-
स भागका **प्रकासरूप फल** रज्जुमें होवै है. यातें वृत्ति ज्ञानका
केवल जड रज्जु विषय नही. किंतु अधिष्ठान चेतन सहित र-
ज्जु साभास वृत्तिका विषय है. इसी कारनतें **सिद्धांत ग्रंथमें
यह लिख्या है:-** अंतःकरनजन्य वृत्ति ज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय
करै है." या प्रकारसें रज्जु ज्ञानसें निरावरन होयके सर्पका अधिष्ठा-
न रज्जु अवच्छिन्न चेतनका बी निज प्रकासतें भान होवै है. यातें
रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है. तातें सर्पकी निवृत्ति
संभवै है.

१३९ अन्यसंका

यद्यपि या रीतिसें सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानतें संभवै है,
तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नही. काहेतें; सर्प-
का अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतन है. औ सर्पके ज्ञानका अधि-
ष्ठान साक्षी चेतन है. पूर्व उक्त प्रकारतें रज्जु ज्ञानसें रज्जु अवच्छिन्न
चेतनकाही भान होवै है ; साक्षी चेतनका नही. यातें रज्जुका
ज्ञान हुयेतें बी सर्प ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन अज्ञात है.
औ अज्ञात अधिष्ठानमें कल्पितकी निवृत्ति होवै नही. किंतु **ज्ञात
अधिष्ठानमेंही कल्पितकी निवृत्ति होवै** है. यातें रज्जु ज्ञानतें
सर्प ज्ञानकी निवृत्ति बनै नही.

१४० समाधान यह है.

विषयके आधीन ज्ञान होवै है. विषय जो सर्प ताकी
निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावतें आपही निवृत्ति
होवै है.

१४१ और जो ऐसे कहैं:- कल्पितकी निवृत्ते अधिष्ठान

ज्ञान विना होवै नहीं ; औ सर्पका ज्ञान बी कल्पित है; ताका अधिष्ठान साक्षी चेतन है ; ताके ज्ञान विना कल्पित सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं.

१४२ **ताका समाधान यह है**:— निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है. **एक** तौ अत्यंत निवृत्ति होवै है, औ **दूसरी** कारनमें जो लय सो बी **निवृत्ति** कहिये है. कारन सहित कार्यकी निवृत्ति **अत्यंत निवृत्ति** कहिये है. सारे कल्पित वस्तुका कारन अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञान सहित कल्पित कार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठान ज्ञानतेंही होवै है. परंतु **कारनमें लयरूप** जो **निवृत्ति**, सो अधिष्ठान ज्ञान विना बी होवै है. जैसे सुषुप्ति औ प्रलयमें सर्व पदार्थनका अज्ञानमें लय अधिष्ठान ज्ञानसें विना होवै है. तहां सर्व पदार्थनके लयमें निमित्त, भोगके सन्मुख कर्मनका अभाव है. तैसे अधिष्ठान साक्षीके ज्ञान विनाही सर्प ज्ञानका लय होवै है. तहां सर्प ज्ञानका विषय जो सर्प, ताका अभाव सर्प ज्ञानके लयमें निमित्त है. या प्रकारतें सर्पकी निवृत्ति रज्जु ज्ञानतें होवै है. औ सर्प ज्ञानका विषय जो सर्प ; ताके अभावतें सर्प ज्ञानका लय होवै है.

१४३ अथवा सर्प औ ताका ज्ञान दोनूंकी निवृत्ति रज्जु ज्ञानतेंही होवै है. काहेतें, जब रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै, तब अंतःकरनकी वृत्ति नेत्र द्वारा निकसिके रज्जु देसमें प्राप्त होवै है. औ रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है. यातें रज्जुके प्रत्यक्ष समय वृत्ति उपहित चेतन, औ रज्जु उपहित चेतन दोनूं एक होवै हैं ; तिनका भेद रहै नहीं. यामें यह हेतु है:— चेतनका स्वरूपसें तौ भेद कहूं बी नहीं ; किंतु उपाधिके भेदसें चेतनका भेद होवै है. वृत्ति उपहित चेतन औ रज्जु उपहित चेतनका

भेदक उपाधि, **वृत्ति** औ **रज्जु** है. सो वृत्ति औ रज्जु भिन्न भिन्न देसमें स्थित होवैं, जब तौ उपाधि वाले चेतनका **भेद** होवै है. औ दोनूं उपाधि एक देसमें स्थित होवैं, तब उपहित चेतनका भेद बनै नहीं. यह वार्ता **वेदांत परिभाषादिक** ग्रंथनमें लिषी है. भिन्न देसमें स्थित उपाधितेंही उपहित चेतनका भेद होवै है. एक देसमें जब दोनूं उपाधि स्थित बी होवैं, तब दोउ उपाधिसें उपहित बी चेतन एकही होवै है. या प्रकारतें रज्जुके प्रत्यक्ष ज्ञान समय रज्जु उपहित चेतन औ वृत्ति उपहित चेतन एक है. तहां साक्षी चेतनही वृत्ति उपहित चेतन है. काहेतें, अंत:करन औ ताकी वृत्तिमें स्थित जो तिनका प्रकासक चेतन मात्र, सो **साक्षी** कहिये है. इस रीतिसें **रज्जु ज्ञान समय साक्षी चेतन औ रज्जु उपहित चेतनका** अभेद होवै है. औ रज्जु उपहित चेतनका रज्जु ज्ञानसें भान होवै है. औ रज्जु उपहित चेतनसें अभिन्न साक्षीका बी रज्जु ज्ञानसें भान होवै है. या प्रकारतें रज्जु ज्ञान समय अधिष्ठान साक्षीका भान होनेतें कल्पित सर्प ज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. किंवा:—

१४४ **कूटस्थ दीपमें विद्यारण्य स्वामीने** यह प्रक्रिया कही है:— "आभास सहित अंत:करनकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकासै है. घटादिक विषय, औ तैसे आभास सहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभास सहित अंत:करन रूप ज्ञाता, इन तीनकूं साक्षी प्रकासै है." "यह घट है." इस रीतिसें आभास सहित वृत्तिसें घटमात्रका प्रकास होवै है. "मैं घटकूं जानूं हूं" या रीतिसें "मैं" शब्दका अर्थ ज्ञाता, औ ज्ञेय घट, औ ताका ज्ञान, या त्रिपुटीका साक्षीसें प्रकास होवै है. या प्रकारतें **सर्व त्रि-**

पुटीयोंका प्रकासक साछी है. साछी आप आज्ञात होवै, तौ त्रिपुटीका ज्ञान साछीसें बनै नही. यातें सर्व त्रिपुटीयोंके ज्ञानमें साछीका ज्ञान अवस्य होवै है. ता साछी ज्ञानतें सर्प ज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. या पूर्व रीतिसें सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्न भिन्न कह्या. तामें इतने संका समाधान हैं. या पक्षमें संका समाधानरूप विवाद और बी बहुत हैं, यातें,

१८९ **सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है.** यह पक्ष कहै हैं:—तहां बाह्य जो रज्जु चेतन है, ताकूं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहैं, तौ बनै नही. काहेतें, **जितने ज्ञान होवै हैं, सो प्रमाता अथवा साछीके आश्रित होवै हैं.** बाह्य जो रज्जु चेतन, ताके आश्रित ज्ञान बनै नही. तैसे सर्प औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अंत:करन उपहित साछी चेतनकूं मानैं, तौ सरीरके अंतर अंत:करन देसमें सर्पकी प्रतीति चाहिये; रज्जु देसमें सर्पकी प्रतीति नही चाहिये. अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलतें मानैं, तौ **आत्म ख्याति मतकी** सिद्धि होवैगी. इसरीतिसें रज्जु उपहित चेतन ज्ञानका अधिष्ठान बनै नही. औ अंत:करन उपहित चेतन सर्पका अधिष्ठान बनै नही. यातें सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नही बनै. **तथापि** रज्जुके समीप प्राप्त जो अंत:करनकी इदमाकार वृत्ति, तामें स्थित चेतनके आश्रित अविद्या सर्पाकार औ ज्ञानाकार परिनामकूं प्राप्त होवै है. वृत्ति उपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुन अंस सर्पका उपादान कारन है. ताहीमें स्थित सत्वगुन अंस सर्पके ज्ञानका उपादान कारन है. **सर्प औ ताके ज्ञानका वृत्ति उपहित चेतन अधिष्ठान है.** वृत्ति रज्जु देसमें बाहिर गई, यातें वृत्ति उपहित चेतन बी बाहिर है. यातें सर्पका आश्रय बनै है. जितना अंत:करनका स्वरूप होवै,

उतनाही साछीका स्वरूप होवै है. सरीरके अंतर स्थित जो अं-
तःकरन, सोई वृत्ति स्वरूप परिनामकूं प्राप्त होवै है. यातें वृत्ति
उपहित चेतन साछी है. यातें ज्ञानका आश्रय बनै है. रज्जुका
जब साछातकार होवै, तब रज्जुचेतन औ वृत्ति चेतन दोनूं एक
होवै हैं. यातें रज्जुके ज्ञानसें सर्प औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति बी बनै है.

१४६ जहां एक रज्जुमें दस पुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसी-
कूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जल
धारा, इस रीतिसें भिन्न भिन्न प्रतीति होवै, अथवा, सर्वकूं सर्पही
प्रतीत होवै, तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साछातकार होवै है, ता-
की वृत्ति चेतनमें कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवै है. जाकूं रज्जु
ज्ञान नही होवै, ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नही. यातें वृत्ति
चेतनही कल्पितका अधिष्ठान है. रज्जु आदिक विषय उपहित
चेतन नही. जो रज्जु उपहित चेतनकूं सर्प दंडादिकनका अधि-
ष्ठान मानैं, तौ दस पुरुषनकूं प्रतीत जो होवैं दस पदार्थ, सो
एक एककूं सारे प्रतीत हुये चाहिये. औ हमारि रीतिसें तौ
जाकी वृत्ति चेतनमें जो पदार्थ कल्पित है, सो ताहीकूं प्रतीत
होवै; अन्यकूं नही. इस रीतिसें बाह्य सर्पादिक औ तिनके ज्ञा-
नका वृत्ति उपहित साछी अधिष्ठान है. स्वप्नके पदार्थ, औ ति-
नके ज्ञानका बी अंतःकरन उपहित साछीही अधिष्ठान है. या
प्रकारतें सत असतसें विलछन जो अनिर्वचनीय अविद्याका परि-
नाम अनिर्वचनीय सर्पादिक, तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति औ
कथन, सो **अनिर्वचनीय ख्याति** कहिये है. ५०

१४७ शिष्यउवाच.

दोहा.

यह मिथ्या परतीत है, जामें जगत अपार;

सो भगवन मोकूं कहो, को याको आधार. ५१

अर्थ स्पष्ट. ५१

१४८ **श्रीगुरुरुवाच.**

दोहा.

तव निज रूप अज्ञानतें, व्है मिथ्या जग भान;
अधिष्ठान आधार तूं, रज्जु भुजंग समान. ५२

टीकाः– हे शिष्य, तेरा जो **निजरूप** कहिये ब्रह्मरूप करिके अज्ञान, तिसतें मिथ्या जगत प्रतीत होवै है. यातें **जगतका आधार औ अधिष्ठान तूं है.** जैसे रज्जुके अज्ञानते मिथ्या भुजंग प्रतीत होवै है, तहां मिथ्या भुजंगका आधार औ अधिष्ठान रज्जु है. **यद्यपि** मिथ्या सर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीय पक्षमें वृत्ति उपहित चेतन है, औ प्रथम पक्षमें रज्जु उपहित चेतन है. किसी पक्षमें रज्जु अधिष्ठान नहीं; **तथापि** प्रथम पक्षमें चेतनमें अधिष्ठानपनेकी उपाधि रज्जु है. यातें **स्थूल दृष्टिसें रज्जु अधिष्ठान कहिये है.** जैसे मिथ्या भुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है. तैसे मिथ्या जगतका अधिष्ठान औ आधार तूं है.

१४९ या स्थानमें यह रहस्य है:– जैसे जेवरीके दो स्वरूप हैं. एक तो सामान्यरूप है; एक विशेषरूप है. सामान्यरूप "इदं" है. विशेषरूप "रज्जु" है. "यह सर्प है" या रीतिसें मिथ्या सर्पसें अभिन्न होयके भ्रांति कालमें बी प्रतीत होवै जो "इदंरूप" सो सो **सामान्यरूप** है. औ जा स्वरूपकी भ्रांति कालमें प्रतीत न होवै, किंतु जाकी प्रतीति हुयेतें भ्रांति दूरि होवै, सो रज्जुका **विशेष-**

रूप है. तैसे आत्माके बी दो स्वरूप हैं. एक सामान्यरूप दूसरा विसेषरूप, सतरूप सामान्य है, असंगता कूटस्थता नित्यमुक्ततादिक विसेषरूप है. काहेतें, "स्थूल सूछम संघात है." यामें स्थूल सूछम संघातकी भ्रांति समय बी मिथ्या संघातसें अभिन्न होयके सतरूप प्रतीत होवै है. यातें आत्माका सतस्वरूप सामान्य रूप है. औ स्थूल सूछम संघातकी भ्रांति समय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीत होवै नही. किंतु असंगादि स्वरूप आत्माकी प्रतीति हुयेतें संघात भ्रांति दूरि होवै है. यातें असंगता कूटस्थता, नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विसेषरूप हैं. सर्व भ्रांतिमें सामान्यरूप आधार कहिये है. औ विसेषरूप अधिष्ठान कहिये है. जैसे सर्पका आश्रय जो जेवरी, ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है. औ विसेष "रज्जु" स्वरूप अधिष्ठान है. तैसे मिथ्या प्रपंचका आश्रय जो आत्मा, ताका सामान्य सतरूप प्रपंचका आधार है. औ असंगतादिक विसेषरूप अधिष्ठान है. इस रीतिसें आधार औ अधिष्ठानका सर्वज्ञात्म नाम मुनिनें किंचित् भेद प्रतिपादन किया है. ५२.

१५० **शिष्यउवाच.**

दोहा.

भगवन मिथ्या जगतको, द्रष्टा कहिये कौन;
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन. ५३

अर्थ स्पष्ट, भाव यह है:— जगतका आधार औ अधिष्ठान आत्मा है, यातें जगतका द्रष्टा आत्मासें भिन्न कह्या चाहिये, जैसे सर्पका आधार औ अधिष्ठान जो रज्जु, तासें भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है. ५३.

१५७ **श्रीगुरुरुवाच.**

चौपाई.

मिथ्या वस्तु जगतमें जे हैं,
अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं;
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु,
इक चेतन दूजो जड जानहु. ५४
अधिष्ठान जड वस्तु जहां है,
द्रष्टा तातें भिन्न तहां है;
जहां होय चेतन आधारा;
तहां न द्रष्टा होवै न्यारा. ५५

अर्थ स्पष्ट. भाव यह है:– जहां जड अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसें भिन्न द्रष्टा होवै है. जहां चेतन अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानही द्रष्टा होवै है, भिन्न नहीं. ५९

दोहा.

चेतन मिथ्या स्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार;
सोई द्रष्टा भिन्न नहि, तैसे जगत विचार. ५६

टीका:– जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी चेतन है, सोई स्वप्नका द्रष्टा हैं, तैसे जगतका आत्माही अधिष्ठान है, सोई द्रष्टा है. यह संका औ समाधान स्थूल दृष्टिसें जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठान मानिके कहे हैं. औ सिद्धांतमतमें तौ सर्पका अधिष्ठान साक्षी चेतन है. सोई द्रष्टा है. यातें सारे कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है. संका समाधान बनै नहीं. ६१

१५२ **दोहा.**

इम मिथ्या संसार दुष, है तोमें भ्रम भान;
ताकी कहा निवृत्ति तूं, चाहै सिष्य सुजान. ५७

टीका:– हे सिष्य, इस रीतिसें तेरेविषे संसाररूपी दुष, मिथ्याही भ्रांतिसें प्रतीत होवै है. ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नही. दृष्टांत:–जैसे बाजीगरने किसी पुरुषकूं मिथ्या सत्रू मंत्रके बलसें दिषाया होवै, ताके मारनेविषे वह पुरुष उद्योग नही करता. तैसे मिथ्या संसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नही. ५७

१५३ **सिष्यउवाच.**

चौपाई.

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा,
तथापि मैं चाहूं तिहि छेवा;
स्वप्न भयानक जाकूं भासै,
करि साधन जन जिम तिहि नासै. ५८
यातें है जातें जग हाना,
सो उपाव भाषो भगवाना;
तुम समान सतगुरु नाहि आना,
श्रवन फूंक दे वंचक नाना. ५९

टीका:– हे भगवन्, आपने कह्या जो "जगत तेरेविषे मिथ्यारूप करिके है; औ सत्यरूप करिके नही." सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन्, सो मिथ्यारूप करिके बी जा उपाय करि-

के जन्म मरनादिक संसार मेरेविषे भान न होवै, सो उपाय आप कहो. और आपने कह्याथा, जो "मिथ्याकी निवृत्ति वास्ते साधन चाहिये नही." सो वार्ता बी सत्य है. परंतु हे भगवन्, जाकूं मि. थ्या पदार्थ बी दुषका हेतु होवै, ताकूं वह मिथ्या बी साधनसें दूरि करना योग्य है. जैसे किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानक स्वप्न आवते होवैं, सो मिथ्या बी हैं; परंतु तिनके बी दूरि करने-कूं जप औ पाद प्रक्षालनादिक नाना साधन अनुष्ठान करै हैं. तैसे यह संसार मिथ्याबी है, परंतु जन्मादिक दुषका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है. यातें संसारकी निवृत्ति चाहू हूं. आप कृपा करिके उपाय बतावो. ५९

१५४ **श्रीगुरुरुवाच.**

सोरठा.

सो मैं कह्यो बषानि, जो साधन तें पूछियो;
निज हिय निश्चय आनि, रहै न रंचक षेद जग. ६०

टीका:—हे सिष्य, जो तें जगतरूपी दुषकी निवृत्तिका साधन पूछ्या, सो हम तेरेकूं प्रथमही कहि दिया. तिसविषे तूं दृढ नि-श्चय कर; तातें जगतरूपी षेद रहै नही. ६०

दोहा.

निज आतम अज्ञानतें, है प्रतीत जग षेद;
नसै सु ताके बोधतें, यह भाषत मुनि वेद. ६१
जग मोमें नहि "ब्रह्म मैं," "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
सो तोकूं सिष मैं कह्यो, नहि उपाय को आन. ६२

टीका:—हे सिष्य, अपने आत्म स्वरूपके अज्ञानतें जगतरूपी षेद

प्रतीत होवै है; सो आत्म ज्ञानतें मिटै है. जो वस्तु जाके अज्ञानतें प्रतीत होवै, सो ताके ज्ञानतें मिटै है; **यह नियम है.** जैसे रज्जुके अज्ञानतें सर्प प्रतीत होवै है, सो रज्जुके बोधतें मिटै है. तैसे **आत्मज्ञानतें जगत मिटै है.** सो आत्मज्ञान हम कहि दिया. जगत तो मेरेविषे तीन कालमें है नही, काहेतें मिथ्या है. जो **मिथ्या वस्तु होवै है, सो अधिष्ठानकी हानि नही करै है.** जैसे मरीचिका जो जल है, सो पृथिवकूं गिली नही करै है. तैसे "जगत प्रतीत बी होवै है, परंतु मिथ्या है. कछु मेरी हानि करने विषे समर्थ है नही; औ मैं सत् चित् आनंदरूप ब्रह्म स्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय, ताका नाम **ज्ञान** है. सोई **मोछका साधन** है. और कोई नही. सो ज्ञान हम प्रथम उपदेस करि दिया. ६२

१५५ **दोहा.**

कर्म उपासनतें नही, जग निदान तम नास;
अंधकार जिम गेहमें, नसै न बिन परकास. ६३

टीका:- हे सिष्य, जगतका **निदान** कहिये उपादान कारन **तम** कहिये अज्ञान है. ता अज्ञानके नासतें जगतका आपही नास होय जावै है. काहेतें, **उपादानके नास हुये पीछे कारज रहै नही है.** ता अज्ञानका नास केवल ज्ञान करिके है. कर्म औ उपासना करिके नास होवै नही. काहेतें अज्ञानका विरोधी ज्ञान है. कर्मउपासना विरोधी नही. **दृष्टांत:-** जैसे गृहके विषे जो अंधकार है, सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नही. केवल प्रकाससें दूरि होवै है. तैसे अज्ञानरूपी जो अंधकार है, सो ज्ञानरूपी प्रकाससें दूरि होवै है. और काहू साधनसें नही. ६३

दोहा.

भाष्यो सिष उपदेस मैं, जग भंजक हिय धारि;
जो यामैं संसय रह्यो, सो तूं पूछ विचारि. ६४

१५६ **सिष्यउवाच.**

चौपाई.

भो भगवन जो कछु तुम भाष्यो,
सो सब सत्य जानि हिय राष्यो;
जग निदान अज्ञान वषान्यो,
ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो. ६५
ज्ञानरूप वर्नन पुनि कीना,
जग मिथ्या सो मैं भल चीना;
सुष स्वरूप आतम परकास्यो,
दया तिहारीसों मुहि भास्यो. ६६
पुनि भाष्यो "तूं ब्रह्म स्वरूपं,"
यह मैं लष्यो न भेद अनूपं;
यामैं मुहि संका इक आवै,
जीव ब्रह्मको भेद जनावै. ६७

टीका:- हे भगवन्, आपने जो कह्या, सो मैं आपके वचन सत्य जानूं हूं. आपने कह्या जो जगतका कारन अज्ञान है, ता अज्ञानके नास करिके, जगतकी निवृत्ति ज्ञान करिके होवै है; सो वार्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपने कह्या; "जगत

मिथ्या है. औ जीव आनंद स्वरूप है. सो ब्रह्मसें भिन्न नही. किंतु ब्रह्मरूप है. ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है. ताकेविषे जगत मिथ्या है. औ जीव आनंद स्वरूप है." यह वार्ता मैं जानी. परंतु "जीव ब्रह्म दोनूं एक हैं." यह वार्ता नही जानी. काहेतें, जीव ब्रह्मके भेदकूं जनावनेवाली संका मेरे हृदयमें फुरै है. ६७

१५७ **अथ संकाकी चौपाई.**

पुन्य पापका हूं मैं कर्त्ता,
जन्म मरन औ सुष दुष धर्त्ता;
और अनेक भांति जग भासै,
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै. ६८
जो यातें विपरीत स्वरूपा,
ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा;
कहो एकता कैसे जानूं ?
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं. ६९

टीका:– हे भगवन्, मैं पुन्य पापका कर्त्ता हूं, औ तिनका जो फल जन्म मरन, औ सुष दुष, तिनकूं धारन करूं हूं, औ नाना प्रकारका जगत मेरेविषे प्रतीत होवै है; औ जगतका कारन जो अज्ञान है, ताकूं दूरि करनेकूं मैं ज्ञान चाहूं हूं, औ ब्रह्मविषे न पुन्य है, न पाप है, न जन्म है, न मरन है, न सुष है, न दुष है, और कोई क्लेस ब्रह्मविषे नही, औ ज्ञानकी इच्छा नही है; यातें ब्रह्मका औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है. यातें दोनूंवांकी एकता बनै नही. यद्यपि मेरेविषे बी जन्मादिक

संसार परमार्थ करिके है नही. तथापि मिथ्या जो जन्मादिक है, सो मेरेकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवे है. औ ब्रह्ममें नही. यातें इतना भेद है, एकता बने नही. ६९

१५८ **अन्य संसयकी चौपाई.**

सुनहु गुरू दूजो पुनि संसै,
जीव ब्रह्म एकत्व प्रनंसै;
एक वृछमें सम है पछी,
फल भोगै इक दूजो स्वछी. ७०
भोग रहित परकास असंगा,
वेद वचन यह कहत प्रसंगा;
कर्म उपासन पुनि बहु भाषे,
जीव ब्रह्म यातें द्वय राषे. ७१

टीका:— हे गुरु, मेरे एक और संसय है; सो आप सुनो. कैसा वह संसय है:— जासूं जीव ब्रह्मकी एकताका निश्चय **प्रनंसै** कहिये दूरि होय जावै; सो संसय में आपकूं कहूं हूं. आप सुनिके तिस संसयकूं दूरि करो. वेदविषे मैंने ऐसे देष्या है:—एक बुद्धिरूपी वृछमें दो **पछी** है, सो दोनूं समान हैं. तिनविषे एक तो कर्मके फलकूं भोगे है, एक **स्वछ** कहिये सुद्ध है, भोग रहित है, असंग है, औ ता भोगनेवालेकूं प्रकासे है. याकेविषे भोग देनेवाला जीव प्रतीत होवे है. औ दूसरा परमात्मा प्रतीत होवे है, यातें उनकी एकता बने नही.

औ वेदकेविषे कर्म औ उपासना बहुत प्रकारके कहे हैं. सो जीव ब्रह्मकी एकताविषे निष्फल होय जावैंगे. काहेतें, जो आप

जीव ब्रह्मकी एकता कही हौ; सो ब्रह्मविषे जीवके **स्वरूपकूं** अंतरभाव कहो हो ? अथवा जीवविषे ब्रह्मके **स्वरूपकूं** अंतरभाव कहो हो ? जो कदाचित् ब्रह्मविषे जीवके **स्वरूपकूं** अंतरभाव कहोगे; तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनेतें **अधिकारीका अभाव होवैगा.** यातें कर्म औ उपासना निष्फल होवैंगे. औ जो जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे; तौ ब्रह्मकूं जीवरूप होनेतें जाकी उपासना करिये है; ता **उपास्यका अभाव होवैगा.** यातें उपासना निष्फल होवैगी. औ कर्मका फल देनेवाला जो परमात्मा ताका अभाव होवैगा. यातें कर्म निष्फल होवैंगे; औ **मीमांसक** जो कहै हैं, कर्मही ईश्वर हैं, तिनसेंही फल होवै है. सो वार्त्ता समीचीन नही. काहेतें, जो कर्म हैं, सो जड हैं. तिनकूं फल देनेका सामर्थ्य बनै नही. यातें **कर्मका फल ईश्वरही देवै है.** या रीतिसें परमात्मा औ जीवकी एकता बनै नही. ७१

१५३ **श्रीगुरुरुवाच.**

चौपाई.

सुनहु सिष्य इक कहूं विचारा,
है जातें संकानिस्तारा;
घटाकास इक जल आकासा,
मेघाकास महा आकासा. ७२

च्यारि भेद ये नभके जानहु,
पुनि चेतनके तथा पिछानहु;
इक कूटस्थ जीव पुनि कहियें,
ईस ब्रह्म हिय जानैं रहियें. ७३

जब इनको तूं रूप पिछानै,
निज संका तवही सब भानै;
यातें सुन इनको अब भेदा,
नसै सुनत जन्मादिक षेदा. ७४

टीका:— जो तेरेकूं संका हुई है, तिनका **निस्तार** कहियें निराकरन जातें होवै, सो विचार मैं कहूं हूं; तूं सुन. जैसे **एक आकासमें च्यारि भेद हैं:**— एक घटाकास है, औ एक जलाकास है, औ मेघाकास है, औ महाकास है. तैसे **एक चेतनके च्यारि भेद हैं.** एक कूटस्थ है; औ जीव है, औ ईश्वर है, औ ब्रह्म है, ये च्यारि भेद आकासकी न्याई चेतनविषे हैं. हे सिष्य जब इनके स्वरूपकूं तूं भली प्रकारसें पिछानैगा; तब अपनी संकाका तूं आपही समाधान जानि लेवैगा. यातें मैं इनका स्वरूप वर्नन करूं हूं; तूं सुन. जाकूं सुनिके संसय रहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुषका नास होवैगा.

१६० अथ घटाकास बर्नन.

दोहा.

जल पूरित घटकूं जु दे, जितनो नभ अवकास;
युक्ति निपुन पंडित कहैं, ताकूं घट आकास. ७५

टीका:—हे सिष्य, जलसें भरे घटकूं जितना आकास अवकास देवै है, तितने आकासकूं पंडितजन **घटाकास** कहै हैं. ७५

१६१ अथ जलाकास बर्नन.

दोहा.

जल पूरित घटमें जु पुनि, है नभको आभास;
घटाकास युत विज्ञ जन, भाषत जल आकास ७६

टीकाः—हे सिष्य, जलसें भऱ्या जो घट है, ताकेविषे नछत्रादि सहित आकासका प्रतिबिंब होवै है; सो आकासका प्रतिबिंब, औ घटाकास दोनूं मिले हुये जलाकास कहिये है ; याकेविषेः—

कोई संका करै हैः—

आकासका प्रतिबिंब नही होवै है. किंतु केवल नछत्रादिकनका ही प्रतिबिंब होवै है. काहेतें, आकास रूपकरिके रहित है; औ रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवै है. यातें आकासका प्रतिबिंब बनै नही. ऐसी संका करै है. ७६

ताके समाधानका दोहा.

जो जलमें आकासको, नहि प्रतिबिंब लषाइ;
थोरेमें गंभीरता, व्है प्रतीत किहि भाइ! ७७
यातें जलमें व्योमको, लषि आभास सुजान;
रूप रहित जिम सब्दतें, व्है प्रतिध्वनिको भान ७८

टीकाः— जो जलकेविषे आकासका प्रतिबिंब नही होवै, तौ गोडे परिमान जलविषे मनुष्य परिमान गंभीरताकी जो प्रतीति होवै है, सो नही हुई चाहिये. यातें आकासका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है. और जो कहै हैं "रूप रहित पदार्थका प्रतिबिंब नही होवै है" सो बी **नियम नही है**. काहेतें, रूप रहित जो

सब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है. सो सब्दका प्रतिबिंब है. यातें रूप रहित जो आकास है, ताका बी प्रतिबिंब बनै है. ७८

१६२ अथ मेघाकास बर्नन.

दोहा.

जो मेघहि अवकास दे, पुनि तामें आभास;
तिन दोनूंकूं कहत हैं, बुध जन मेघाकास. ७९

टीका:-मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकास अवकास देवै है, औ मेघके जलमें जो आकासका प्रतिबिंब है, तिन दोनूंकूं **मेघाकास** कहे हैं. याकेविषे:-

कोई संका करै है:-

जो मेघ तो आकासविषे है. तिनमें जल औ आकासका प्रतिबिंब दीखे बिना कैसे जाने जावै है?

ताके समाधानका दोहा

बर्षत मेघ अनंत जल, उदक सहित इहि हेत;
दक नहि नभ आभास बिन, इम प्रतिबिंब समेत.८०

टीका:-यद्यपि मेघविषे जल औ आकासका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नही है, **तथापि** अनुमान करिके जाने जावै हैं. मेघ जो जलकी वृष्टि करै है, यातें ऐसा अनुमान होवै है; जो मेघांविषे जल है. जो मेघांविषे जल न होवै, तौ जलकी वृष्टि मेघांसे नही होवै. औ मेघांविषे जल है, सो आकासके प्रतिबिंब सहित है. काहेतें, जो जल होवै है, सो आकासके प्रतिबिंब बिना नही होवै है. यातें मेघांविषे जो जल है, सो बी आकासके प्रतिबिंबवाला है. इस

रीतिसैं मेघविषे जल औ आकासके प्रतिबिंबका अनुमान होवै है. उदक औ दक ये दोनूं जलके नाम हैं.

१६३ अथ महाकास बर्नन

दोहा

बाहिर भीतर एक रस, व्यापक जो नभ रूप ;
महाकास ताकूं कहैं, कोविद बुद्धि अनूप. ८१

टीका:– बाहिर औ भीतर सारे एक रस व्यापक जो **नभ** कहिये आकासका स्वरूप है, ताकूं **अनूप** कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पंडित, **महाकास** कहै हैं.

१६४ दोहा.

चतुर्भांति नभके कहे, लछन श्रुति अनुसार ;
अब चेतनके सिष्य सुन, जासूं लहै विचार. ८२

टीका:– हे सिष्य, च्यारि प्रकारके आकासके लछन कहे. अब **च्यारि भांतिके चेतनके** लछन **सुन**, जाके सुनेतें विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवै.

१६५ अथ कूटस्थ बर्नन.

दोहा.

मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य ;
घटाकास सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य. ८३

टीका:– बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है, सो **कूटस्थ** कहिये है. जा पछमें बुद्धि सहित चेतन **जीव है**, ता पछमें बुद्धिका अधिष्ठान **कूटस्थ** कहिये है. औ जा पछमें व्यष्टि

अज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है, ता पछमें व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान है, सो **कूटस्थ** कहिये है. या स्थानविषे यह सिद्धांत है:— जीवपनेका जो विसेषन है, ताके अधिष्ठानका नाम **कूटस्थ** कहिये है. सो कूटस्थ अजन्य है. उत्पत्तिसें रहित है. याका **अभिप्राय** यह है:— ब्रह्मसें न्यारा जैसे चिदाभास उत्पन्न होवै है, तैसे यह उत्पन्न नहि हुवा. किंतु ब्रह्मरूपही है. जैसे घटाकास महाकाससें न्यारा नहि होय गया, किंतु महाकासरूप है. यह जो कूटस्थ है, सोई **आत्म पदका लच्छ्य अर्थ** है. औ याहीकूं **प्रत्यक्** कहे हैं. औ याहीकूं **निजरूप** कहै हैं. औ यही जीव साछी है. ८३

१६६ **अथ जीव बर्नन**

दोहा

काम कर्म युत बुद्धिमें, जो चेतन प्रतिबिंब;
जीव कहैं विद्वान तिहिं, जल नभ तुल्य सबिंब.८४

टीका:— नाना काम औ कर्म सहित जो बुद्धि है, तामें जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं **विद्वान** कहिये ज्ञानी **जीव** कहै हैं. सो केवल प्रतिबिंब मात्रकूं नही जीव कहै हैं; किंतु जैसे घटाकास सहित आकासके प्रतिबिंबकूं जलाकास कहै हैं, तैसे **सबिंब** कहिये बिंब जो कूटस्थ, ता सहित चिदाभासकूं **जीव** कहै हैं. यातें **यह सिद्धांत हुवा**:—बुद्धिमें जो चिदाभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन दोनूवाका नाम जीव है. ८४

१६७ **दोहा.**

अधिष्ठान कूटस्थसें, है आभास बहाल;

रक्त पुष्प ऊपर धर्‍यो, स्फटिक होइ जिम लाल. ८५

टीका:—पूर्व दोहेविषे बिंब जो कूटस्थ, ता सहित आभासकूं जीव कह्या. यातें यह प्रतीति होवै है, जो **बुद्धिमें प्रतिबिंब है, सो कूटस्थका है**; औ बाहिरके ब्रह्म चेतनका नही. काहेतें, जाका प्रतिबिंब होवै, सो **बिंब** कहिये है. सो कुटस्थकूं बिंब कह्या. यातें ताका प्रतिबिंब है; यह प्रतीति होवै है. सो या दोहेसें प्रतिपादन करै हैं:—जैसे बडे लाल पुष्पके ऊपरि जो धर्‍या सुफेद स्फटिक है, ताकेविषे फूलकी लालीकी दमक होवै है; सो लाल फूलका प्रतिबिंब है. तैसे कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि, ताकेविषे कूटस्थके प्रकासकी दमक होवै है. जैसे स्फटिक अत्यंत उज्वल है. तैसे बुद्धि बी अत्यंत सुद्ध है. काहेतें, बुद्धि सत्व गुनका कार्य है; यातें कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है.

अथवा ब्रह्म चेतनका प्रतिबिंब है. जैसे महाकासका घटके जलमें प्रतिबिंब होवै है, औ भीतरके आकासका नही; काहेतें, जितनी गंभीरता जलविषे प्रतीत होवै है, उतनी गंभीरता भीतरके आकासमें है नही. सो गंभीरता आकासका प्रतिबिंब है. यातें बाहिरके आकासका प्रतिबिंब है. यह जो कहै हैं, "व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बनै नही." सो आकासके दृष्टांतसें संका दूरि होवै है. काहेतें, जो आकास बी व्यापक है. औ ताका प्रतिबिंब होवै है. तैसे **व्यापक चेतनका बी प्रतिबिंब बनै है.**

और जो कहै हैं, "रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमें प्रतिबिंब होवै है;" सो बी **नियम नही है.** काहेतें रूप रहित सब्दका रूप रहित आकासमें प्रतिबिंब होवै है. यह पूर्व कहि आए; **यातें चेतनका प्रतिबिंब बनै है.**

इस रीतिसें बुद्धिमें आभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन दोनूं

वांका नाम जीव है, यह कह्या. सो जीव **त्वंपदका वाच्य** कहिये है. औ ताकेविषे चिदाभासका त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है, सो **त्वंपदका लछ्य** कहिये है. औ **अहं सब्दका वाच्य** बी जीव है. केवल **कूटस्थ लछ्य** है. ८५

१६८ दोहा.

बुद्धिमांहि आभास जो, पुन्य पाप फल भोग;
गमन आगमन सो करै, नाहि चेतनमें जोग. ८६
मिथ्या नभ घट संग ज्युं, लहै क्रिया बहु भांति;
घटाकास अक्रिय सदा, रहै एक रस सांति. ८७

टीका:– यद्यपि जीव नाम चिदाभास औ कूटस्थ दोनूं वांका है, **तथापि** जीवपनेके जो धर्म हैं, सो सारे आभासविषे हैं. पुन्य औ पाप औ पुन्य पापके फल सुख दुष, औ लोकांतर विषे गमन, औ या लोकविषे आगमन, इसतें आदिलेके सारे आभास सहित बुद्धि करै है. औ कूटस्थ नही करै है. कूटस्थ विषे केवल भ्रांतिसें प्रतीति होवै है. सो भ्रांतिसें प्रतीति बी बुद्धि सहित आभासकूं होवै है; कूटस्थकूं नही. काहेतें **कूट** जो लुहारका अहरन, ताकी न्याई निर्विकार रूपसें स्थित होवै, सो **कूटस्थ** कहिये है. अथवा **कूट** कहिये मिथ्या जो बुद्धि औ चिदाभास, ताकेविषे असंगरूपसे स्थित होवै, सो **कूटस्थ** कहिये है. यातें **कूटस्थविषे भ्रांति आदिक बनै नही; किंतु चिदाभासमें बनै हैं.**

१६९ औ अत्यंत विचारसें देषिये तौ पुन्य पाप, सुष दुष, लोकांतरमें गमन औ आगमन केवल बुद्धिमें है; आभासमें बी नही. बुद्धिके संयोगसें आभासमें है. जैसें जल सहित जो घट है, सो

टेढा होवै है, औ सीधा होवै है, औ जावै आवै है; औ ताकूं संबंधसें व्योमका आभास संपूर्न क्रिया करै है. औ स्वतंत्र कछु बी नही करै है. तैसे काम कर्म रूपी जलसें भर्या जो बुद्धि रूपी घट है, सो पुन्यसें आदिलेके संपूर्न विकार धारै है. औ ताके संबंधसें चिदाभास धारै है; औ कूटस्थ सर्व विकारसें रहित है. जैसे जलपूरित घटके विकारसें रहित घटाकास है, ताकी न्याई कूटस्थकूं जान. यातें **जीवपनेके धर्म चिदाभासमें हैं; तथापि कूटस्थमें अज्ञानसें प्रतीत होवै हैं.** यातें बुद्धिकेविषे कूटस्थ सहित जो चिदाभास, सो जीव कहिये है. ८७

१७० यह जो जीवका स्वरूप बर्नन किया, याकेविषे प्राज्ञकी हानि होवै है. काहेतें, जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम **प्राज्ञ** है. ता सुषुप्तिविषे बुद्धिका अभाव होवै है. यातें बुद्धिमें आभास बी बनै नही. यातें प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो सास्त्र है, ताका विरोध होवैगा. इस कारनतें **जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करै हैं.**

दोहा.

अथवा व्यष्टि अज्ञानमें, जो चेतन आभास;
अधिष्ठान कूटस्थ युत, कहै जीव पद तास. ८८

टीका:—अज्ञानके अंसका नाम **व्यष्टि अज्ञान** कहिये है. औ संपूर्न अज्ञानका नाम **समष्टि अज्ञान** है. ता अज्ञानके अंसविषे जो चेतनका आभास, औ अज्ञानके अंसका अधिष्ठान जो कूटस्थ है, तिन दोनूंवांकूं **जीव** पद कहै हैं. यातें प्राज्ञका अभाव नही होवै है. काहेतें, सुषुप्तिविषे अज्ञान रहै है. जो **सुषुप्तिविषे चेतनके प्रतिबिंब सहित अज्ञानका अंस है, सोई बुद्धि रूपकूं**

प्राप्त होवै है. औ चेतनका प्रतिबिंब साथही होवै है. ता चिदाभास सहित बुद्धिमें पुन्यादिक संसार प्रतीत होवै है. इस अभिप्रायसें बुद्धिही कहूं सास्त्रनविषे जीवपनेकी उपाधि बर्नन करी है. औ विचार दृष्टिसे जीवपनेकी उपाधि अज्ञान है. ८८

१७१ ## अथ ईस बर्नन.

दोहा.

चितृछाया मायाविषे, अधिष्ठान संयुक्त;
मेघ व्योम सम ईस सो, अंतरयामी मुक्त. ८९

टीका:—मायाकेविषे जो चेतनकी **छाया** कहिये आभास, औ मायाका अधिष्ठान चेतन, दोनूंवाकूं **ईस्वर** कहै हैं. सो ईस्वर मेघाकासके सम है. सो ईस्वर अंतर्यामी है. काहेतें, सर्वके अंतर प्रेरना करै है; यातें **अंतरयामी** है. औ सदा मुक्त है. काहेतें, वाकूं अपने स्वरूपमें आवरन नहीं. यातें जन्म मरनादिक बंधकी प्रतीति नहीं. इस हेतुतें **ईस्वर नित्यमुक्त है**; औ सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थनके जाननेवाला है. याकेविषे यह हेतु है:—मायाविषे सुद्ध सत्वगुन है, तमोगुन औ रजोगुनसें दब्याहुआ सत्वगुन नहीं होवै; किंतु रजोगुन औ तमोगुनकूं आप दबावनेवाला होवै, सो **सुद्ध सत्वगुन** कहिये है. सत्व गुनसें ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. यातें प्रकास स्वभाववाला सत्वगुन है. ऐसी सत्वगुन वाली मायाकेविषे जो चेतनका आभास, ताकूं स्वरूपविषे अथवा और पदार्थविषे आवरन संभवै नहीं. यातें मुक्त है, औ सर्वज्ञ है.

अधिष्ठान जो चेतन है, सो तौ जीव औ ईस्वर दोनूंविषे बंध मोछ भेदसें रहित है, आकासकी न्याई एक रस है. परंतु आभास अंसविषे बंध मोछ है. अधिष्ठानविषे आभासकूं भ्रांतिसें प्र-

तीत होवै है; यातें केवल आभासमें बंध मोछ है. तिसविषे वो इतना भेद है:—जा आभासमें आवरन है, ताकेविषे बंध है. जाविषे स्वरूपका आवरन नही है, सो मुक्त है. ईस्वरमें आवरन नही; यातें ईस्वर सदा मुक्त है. औ जीवविषे आवरन है, सो बंध है. बंध कहिये बंध्या हुवा है. काहेतें, जा अविद्याके अंसमें चेतनके आभासकूं जीव कह्या, ता अविद्याका आवरन करनेका स्वभाव है. **यद्यपि अविद्या** औ **अज्ञान** औ **माया** एकही वस्तुकूं कहै हैं; **तथापि** सुद्ध सत्वगुनकी प्रधानतासें **माया** कहिये है. औ मलिन सत्वगुनकी प्रधानतासें **अज्ञान** औ **अविद्या** कहै हैं. रजोगुन औ तमोगुनसें दब्या जो सत्वगुन है, सो **मलिन सत्वगुन** कहिये है. यातें तमोगुन औ रजोगुनकी अधिकता होनेतें अविद्यामें जो जीवका आभास अंस, ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरन करै है, यातें जीवमें बंधन है; औ ईस्वरमें नही. अधिष्ठान चेतन सहित जो मायामें आभासरूप ईस्वर है, सो **तत्पदका वाच्य** कहिये है; केवल अधिष्ठान चेतन **तत्पदका-लछ्य** है. जो ईस्वर है सोई जगतकी उत्पत्ति औ पालन औ संहार करै है. यह संपूर्न सास्त्रमें कह्या है. ताका यह अभिप्राय है:—चेतन अंस तौ आकासकी न्याई असंग है, औ आभास अंस जगतकी उत्पत्ति आदि करै है; औ ताहीविषे सर्वज्ञता है. औ भक्तजनके ऊपरि अनुग्रह जो करै है, सो वी केवल आभास अंस करै है. और जो कछु ऐस्वर्य है, सो केवल आभासमें है. औ चेतन अंस एक रस है. वाकेविषे सत्ता स्फुर्ति देने बिना और ऐस्वर्य बनै नही.

१७२ अथ ब्रह्म स्वरूप वर्नन.

दोहा.

अंतर बाहिर एक रस, जो चेतन भरपूर;
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहि नेरे नहि दूर. ९०

टीका:—ब्रह्मांडके **अंतर** कहिये भीतर, औ बाहिर जो महाकासकी न्याई भरपूर चेतन है; सो **ब्रह्म** कहिये है. सो ब्रह्म नेरे नही, औ दूरि नहीं. काहेतें, जो वस्तु अपनेसें भिन्न होवै, औ देसरूप उपाधिवाला होवै, सो नेरे औ दूरि कहि जावै है. ब्रह्म भिन्न नहीं; किंतु सर्वका आत्मा है; औ देसादिक सर्व उपाधितें रहित है; यातें नेरे औ दूरि नही कह्या जावै. यद्यपि ब्रह्म सब्दका वाच्य बी सोपाधिक है; काहेतें, व्यापक वस्तुका नाम **ब्रह्म** है. सो **व्यापकता दो प्रकारकी है:**—एक तौ आपेछिक व्यापकता है, औ एक निरपेछिक व्यापकता है. जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेछासें व्यापक होवै, औ किसीकी अपेछासें न होवै, ताकेविषे **आपेछिक व्यापकता** कहिये है. जैसे पृथ्वी आदिकी अपेछासें माया व्यापक है, औ चेतनकी अपेछासें नही है. यातें **मायाविषे आपेछिक व्यापकता है.** औ जो वस्तु सर्वकी अपेछासें व्यापक होवै, ताकेविषे जो व्यापकता सो **निरपेछिक व्यापकता** कहिये है. सो निरपेछिक व्यापकता चेतनविषे है. काहेतें, चेतनके समान अथवा चेतनसें अधिक और कोई व्यापक है नही. किंतु चेतनही सर्वसें व्यापक है. यातें **चेतनविषे निरपेछिक व्यापकता है.** यह दोनूं प्रकारकी व्यापकता सहित जो वस्तु है, सो **ब्रह्म सब्दका वाच्य** है. सो दोनूं प्रकारकी व्यापकता माया विसिष्ट चेतनविषे है. काहेतें, वि-

सिष्टविषे जो माया अंस है, ताकेविषे तौ आपेछिक व्यापकता है, औ चेतन अंसविषे निरपेछिक व्यापकता है. **यद्यपि** माया विसिष्ट चेतनविषे निरपेछिक व्यापकता बनै नही. काहेतें माया चेतनके एक देसविषे है. ता माया विसिष्ट चेतनतें सुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है; यातें **सुद्ध चेतनविषे निरपेछिक व्यापकता है. तथापि** माया विसिष्ट जो चेतन है, सो परमार्थ दृष्टि करिके सुद्धसें भिन्न नही. किंतु सुद्धरूपही है. यातें माया विसिष्टमें भी जो चेतन अंस है, ताकेविषे निरपेछिकही व्यापकता है. इस रीतिसें माया विसिष्टही ब्रह्म सब्दका वाच्य बनै है. औ सुद्ध चेतन **ब्रह्म सब्दका लछ्य** है. यातें ईस्वर सब्द औ ब्रह्म सब्द दोनूंवांका समानही अर्थ प्रतीत होवै है;भिन्न अर्थ नही. **तथापि ब्रह्म सब्दका तौ यह स्वभाव है:**—जो बहुत स्थानविषे लछ्य अर्थकूं बोधन करै है. औ काहू स्थानविषे वाच्य अर्थकूं कहै है. औ **ईस्वर सब्दका यह स्वभाव** है:— जो बहुत स्थानमें वाच्य अर्थका बोधन करै है, इतना भेद है. यातें लछ्य अर्थकूं लेके **ब्रह्म सब्दका अर्थ** भिन्न निरूपन किया है. ९०

१७३ दोहा.

चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव ;
पुन्य पाप फल भोगवै, चित् कूटस्थ सु सीव. ९१

टीका:— हे सिष्य, च्यारि प्रकारका चेतन कह्या. तामें जीवके स्वरूपमें जो मिथ्या आभास अंस है, सो पुन्य पाप करै है. औ तिनके फलकूं भोगै है. औ कूटस्थ जो चेतन है, सो **सीव** कहिये सिवरूप है. **सिव** नाम कल्यानका है. यातें प्रथम जो संका करीथी, "जो बुद्धिरूपी वृछमें दो पछी हैं, एक

परमात्मा, औ जीव;" ताका यह उत्तर कह्या:— परमात्मा औ जीवका ग्रहन नही करना. किंतु कूटस्थ तौ प्रकासमान है ; औ आभास भोगै है. ९१

१७४ दोहा.

कर्मी छाया देत फल, नहि चेतनमें जोग ;
सो असंग इक रूप है, जानै भिन्न कुलोग. ९२

टीका:— जीवके स्वरूपमें जो चेतनकी **छाया** कहिये आभास अंस है, सो **कर्मी** कहिये कर्म करै है. ता कर्म करनेवालेकूं छाया जो ईस्वरका आभास अंस है, सो फल देवै है. **छाया** सब्दका **देहली दीपक न्याय** करिके पूर्व उत्तर दोनूं औरकूं संबंध है. जैसे देहलीके ऊपर धर्या जो दीपक है, सो दोनूं औरकूं प्रकासै है. "छाया कर्मी" औ "छाया देत फल," यातें यह वार्त्ता सिद्ध हुई:— जीवके स्वरूपमें जो आभास अंस है, सो तौ पुन्य पाप करै है, औ तिनका फल भोगै है ; औ ईस्वरमें जो आभास अंस है, सो कर्मका फल देवै है. औ दोनूंवांविषे जो चेतन अंस है, तिसविषे किसी बातका जोग नही. जीवमें जो चेतन अंस है, ताविषे तौ कर्म औ फलका जोग नही. औ ईस्वरमें जो चेतन अंस है, तामें फल देनेका जोग नही है. ता चेतनमें जो कहै है, सो मूर्ख है. काहेतें, चेतन दोनूंवांविषे असंग है ; औ एकरूप है, चेतनमें भेद नही. जीव चेतनकूं जो ईस्वर चेतनसें अथवा ईस्वर चेतनकूं जो जीव चेतनसें भिन्न कहिये न्यारा जानै, सो **कुलोग** कहिये निंदन करने योग्य लोक है. या कहनेतें दूसरा जो प्रस्न कियाथा:— जो "जीव औ परमात्माकी एकता अंगीकार करनेतें कर्म औ उपासनाका प्रति-

पादक वेद निष्फल होवैगा." ताका उत्तर कह्या. जो जीव औ ईस्वरमें चेतन भाग है, तिनका तौ अभेद है. औ आभासका भेद है. यातें दोनूं प्रकारके वचन बनै हैं. ९२

१७५ चौपाई.

अहो सिष्य तैं प्रस्न जु कीनै,
तिनके ये उत्तर मैं दीनै;
कहे जु तैं तरुमें द्वै पछी,
इक भोगै इक आहि अनिछी. ९३
ते चेतन आभास लषाये,
नभ छाया ज्यूं भिन्न बताये;
कह्यो भिन्न कर्मी फल दाता,
मति माया छाया सो ताता. ९४
जीव ईसमें चेतन रूपं,
भेद गंधतें रहित अनूपं;
यातें "अहं ब्रह्म" यह जानौ,
"अहं" सब्द कूटस्थ पिछानौ. ९५
"ब्रह्म" सब्दको अर्थ सु भाष्यो,
महाकास सम लछ्य जु राष्यो;
"अहं ब्रह्म" नहि जौ लौं जानै,
तौ लौं दीन दुषित भय मानै. ९६

टीका:— हे सिष्य, जो तैंने प्रस्न करे, तिनके मैं उत्तर कहे. जो तैं कह्याथा " एक वृछमें दो पछी हैं, एक भोगी है, औ एक इछातें रहित है. यातें जीव ब्रह्मकी एकता बनै नही. " याका हमने उत्तर कह्या. जो " या स्थानमें जीव ब्रह्मका ग्रहन नही करना; किंतु कूटस्थ, औ बुद्धिमें जो आभास, तिनका ग्रहन करना. सो आपसमें घटाकास औ आकासकी छायाकी न्याई भिन्न हैं." और जो तैं प्रस्न कियाथा:— " जीव तौ कर्म उपासना करनेवाला है, औ परमात्मा फल देनैवाला है; तिनकी एकता बनै नही." याका बी हमने यह उत्तर कह्या:— जो " कर्म करनेवाला जीव नही है, औ फल देनैवाला ईस्वर नही है, किंतु जीवमें जो आभास अंस है सो करै है. ईस्वरमें जो आभास अंस है, सो फल देवै है. औ जीव ईस्वरमें जो चेतन अंस है, सो घटाकास महाकासकी न्याई भेदका जो **गंध** कहिये लेस-तासें रहित है." इस रीतिसें हे सिष्य, **जीव औ ब्रह्मकी एकता बनै है.** यातें **अहं** कहिये **"मैं ब्रह्म हूं"** ऐसे तूं जान, **अहं** सब्द-का अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान. औ ब्रह्म सब्दका जो महाकासके सम लछ्य अर्थ कह्या है, सो जान. "अहं" सब्दका औ "ब्रह्म" सब्दका **वाच्य अर्थका** अभेद नही बी है, परंतु **लछ्य अर्थका** अभेद है. औ हे सिष्य, जबलग तूं " **अहं ब्रह्मास्मि** " ऐसे नही जानैगा, तबलग तूं अपनेकूं दीन मानैगा; औ दुषी मानैगा. औ न्यारा जो परमात्मा जान्या है, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा. यातें " **मैं ब्रह्म हूं** " ऐसे जान. ९६

१७६ **तत्वदृष्टिरुवाच.**

दोहा.

कहौ गुरू है कौनकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान?

नहि जानूं मैं आपके, भाषे बिना सुजान. ९७

टीका:–हे गुरु, आप कृपा करिके कहौ, **"अहं ब्रह्मास्मि"** ऐसा ज्ञान किसकूं होवै है? आपके कहे बिना यह वार्त्ता मैं जानूं नही हूं. सिष्यके चित्तमें यह गूढ अभिप्राय है:– **"मैं ब्रह्म हूं"** ऐसा ज्ञान कूटस्थविषे होवै है, अथवा आभास सहित बुद्धिमें होवै है? जो कूटस्थमें कहोगे, तौ कूटस्थ विकारी होवैगा. औ आभास सहित बुद्धिमें कहोगे, तौ वाकूं **"मैं ब्रह्म हूं"** ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा. काहेतें आपने ऐसा पूर्व कह्या जो "कूटस्थकी औ ब्रह्मकी एकता है, औ आभास भिन्न है;" यातें ब्रह्मसें भिन्न जो आभास, ताका ब्रह्मरूप करिके जो ज्ञान सो भ्रांतिही होवैगा. जैसे सर्पसें भिन्न जो रज्जु, ताका सर्परूप करिके ज्ञान भ्रांति है. इस रीतिसें आभास सहित बुद्धिकूं **"मैं ब्रह्म हूं"** यह ज्ञान यथार्थ नही होवैगा. किंतु भ्रांतिरूप होवैगा. औ जो कदाचित् **"अहं ब्रह्मास्मि"** इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपही अंगीकार करौगे, तौं या ज्ञानतें मिथ्या जगतकी निवृत्ति नही होवैगी. किंतु **यथार्थ ज्ञानसें मिथ्याकी निवृत्ति होवै है.** जैसे रज्जुके यथार्थ ज्ञानसें मिथ्या सर्पकी निवृत्ति होवै है; इस रीतिसें आभास सहित बुद्धिकूं **"मैं ब्रह्म हूं"** यह ज्ञान बनै नही. ९७

१७७ **श्रीगुरुरुवाच.**

सोरठा.

कहूं अवस्था सात, सुन सिष्य व आभासकी;
नहि चेतनकी तात, तिनहीमें यह ज्ञान है. ९८

टीका:–हे सिष्य, अब आभासकी **सात अवस्था मैं** कहूं हूं:– सो तूं सुन. (अबकी ठौर वकार पड्या है.) तिन सात अवस्थामें

कोईभी चेतन जो कूटस्थ, ताकी नही हैं. औ " मैं ब्रह्म हूं " यह ज्ञान भी तिन सातके भीतरही है. ९८

१७८ अथ सप्त अवस्था नाम.

चौपाई

इक अज्ञान आवरन जानौ,
भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ;
सोक नास अति हर्ष अपारा,
सप्त अवस्था इम निर्धारा. ९९

अर्थ स्पष्ट. ९९

१७९ अथ अज्ञान औ आवरनस्वरूप बर्नन.

दोहा.

"नाहि जानूं मैं ब्रह्मकूं," याकूं कहत अज्ञान;
"ब्रह्म है न नांहे भान व्है," यह आवरन सुजान. १००

टीका:—हे सिष्य, " मैं ब्रह्मकूं नही जानू हूं " यह जो पुरुष कहै हैं, या व्यवहारका हेतु **अज्ञान** है. " ब्रह्म है नही, औ भान नही होवै है." इस व्यवहारका हेतु **आवरन** है. आवरनसें यह व्यवहार होवै है. काहेतें, **दो प्रकारकी अज्ञानकी सक्ति** है:—एक तौ असत्वापादक है, औ एक अभानापादक है. तिन दोनूंकूं आवरन कहै हैं. " वस्तु नही है " ऐसी प्रतीति करावने वाली जो सक्ति सो **असत्वापादक** कहिये है. औ वस्तुका भान नही होवै है, ऐसी प्रतीति करावने वाली जो अज्ञानकी सक्ति सो

अभानापादक कहिये है. इस रीतिसें "ब्रह्म नही है" इस व्यवहार-की हेतु **अज्ञानकी असत्वापादक सक्ति** है. औ "ब्रह्म भान नही होवै है" इस व्यवहारकी हेतु **अज्ञानकी अभानापादक सक्ति** है. इन दोनूंका नाम **आवरन** है. १००

१८० अथ भ्रांति बर्नन.

दोहा.

जन्म मरन गमना गमन, पुन्य पाप सुष षेद;
निज स्वरूपमें भान व्हे, भ्रांति वषानी वेद. १०१

टीका:—जन्मसें आदिलेके जो संसार है, ताकी जो **निज-स्वरूप** कहिये कूटस्थमें प्रतीति सो वेदमें **भ्रांति** कहिये है. औ याहीकूं संक्र कहै है. १०१

१८१ अथ द्विविध ज्ञान बर्नन.

दोहा.

द्विविध ज्ञान वषानिये, इक परोछ अपरोछ;
अस्ति ब्रह्म सु परोछ है, अहं ब्रह्म अपरोछ. १०२
नही ब्रह्म या अंसकौ, करै परोछ विनास;
सकल अविद्या जालकूं, दूजो नसै प्रकास. १०३

टीका:— "ब्रह्म नही है" या आवरनके अंसकूं "ब्रह्म है" ऐसा परोछ ज्ञान विनासै है. काहितें, "सत्य ज्ञान अनंत रूप ब्रह्म है." ऐसा जो ज्ञान, ताका नाम **परोछ ज्ञान** है. सो "ब्रह्म नही है" ऐसी प्रतीतिका विरोधी है; औरका नही. औ "मैं ब्रह्म हूं"

ऐसा जो **अपरोछ ज्ञान**, सो **सकल अविद्या जालका विरोधी** है. या कारनतें "मैं ब्रह्मकूं नही जानू हूं" यह अज्ञान; औ "ब्रह्म नही है," औ "भान नही होवे हैं" यह **आवरन**; औ "मैं ब्रह्म नही हूं" किंतु "पुन्य पापका कर्त्ता औ सुष दुषका भोक्ता जीव हूं" यह **भ्रांति**; इतना जो **अविद्या जाल है**, **ताकूं अपरोछ ज्ञान नास करै है.** १०३

१८२ अथ भ्रांति नास बर्नन.

दोहा.

जन्म मरन मोमें नही, नहि सुष दुषको लेस;
किंतु अजन्य कूटस्थ मैं, भ्रांति नास यह बेस. १०४

टीका:— मेरेविषे जन्म औ मरन नही है; औ सुष दुषका लेस बी नही है. और कोई बी संसार धर्म मेरेविषे नही है. किंतु अजन्य कहिये जन्मसें रहित जो कूटस्थ, सो "मैं हूं." है सिद्ध्य, इस रीतिसें सर्व अनर्थका जो निषेध, यह भ्रांति नासका **बेस** कहिये स्वरूप है. अथवा यह **भ्रांतिनास** बेस कहिये उत्तम है. या जगी कूटस्थमें जन्मका निषेध करनेतें सर्वका निषेध जानि लेना. काहेतें, जन्म प्रतीतिसें अनंतर और अनर्थ प्रतीत होवै है. यातें जन्मके निषेधतें सर्व अनर्थका निषेध है. यह जो **भ्रांतिनास** है, याहीकूं **सोक नास** बी कहे है. १०४

१८३ अथ हर्ष स्वरूप बर्नन.

दोहा.

संसय रहित स्वरूपको, होइ जु अद्वय ज्ञान;

तब उपजै हिय मोद तव, सो तूं हर्ष पिछान.१०५

टीका.— हे सिष्य, जब तेरेकूं संसय रहित अपने स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा; जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तब तेरेकूं जो मोद होवैगा, ताकूं तूं हर्ष पिछान. १०५

दोहा.

कही अवस्था सात मैं, ताकूं सिष्य सु जान;
सो सगरी आभासकी, है तिनहीमैं ज्ञान. १०६
"ज्ञान होत है कौनकूं," यह पूछी तैं बात;
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछ व तात. १०७

अर्थ स्पष्ट है. १०७

१८४ जा गूढ अभिप्रायतें प्रस्न कर्‍याथा, ताकूं अब सिष्य प्रगट करै है:—

दोहा.

भगवन है आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
तुम भाष्यो सो मैं लष्यो,पुनि संका इक आन.१०८

चौपाई.

है आभास ब्रह्मतें न्यारा,
अस तुम पूर्व कियो निर्धारा;
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै ?
आपहि भिन्न ब्रह्मतें मानै. १०९
जो जानै तौ मिथ्या ज्ञाना,

होइ जेवरी भुजग सामाना,
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ,
युक्ति सहित निज उक्ति सुनाऊ. ११०

टीका:—हे भगवन्, आपने यह पूर्व कह्या, जो "कूटस्थ औ ब्रह्म तौ दोनूं एक हैं; औ आभास ब्रह्मते न्यारा है;" ता ब्रह्मसें भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ब्रह्मरूप करिके ज्ञान बनै नही. मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है, ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवै, तौ यथार्थ ज्ञान होवै; औ "**अहं ब्रह्म**" यह ज्ञान यथार्थ नही बनै; काहेतें, **अहं** नाम अपने स्वरूपका है. जाकूं **मैं** कहै हैं; सो आभासका स्वरूप मिथ्या है. यातें भिन्न है. यातें ब्रह्मसें भिन्न आभासका जो स्वरूप, वाकूं ब्रह्मरूप करिके ज्ञान होवै, तौ मिथ्या ज्ञान होवै. जैसे सर्पसें भिन्न जो जेवरी, ताका सर्परूप करिके ज्ञान मिथ्या होवै है. **मिथ्या** नाम भ्रांतिका है. सो ब्रह्म ज्ञानकूं भ्रांतिरूप कहना बनै नही. ११०

१८५ दोहा.

अहं सब्दके अर्थको, सुन अब सिष्य विवेक ;
तव हियके जासूं नसै, संक कलंक अनेक. १११

अर्थ स्पष्ट. १११

है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ;
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान. ११२
ताको सदा अभेद है, विभु चेतनतें तात ;
बाध समै निज रूपहू, ब्रह्मरूप दरसात. ११३

टीका:– हे सिष्य, **यद्यपि** " मैं ब्रह्म हूं " ऐसा ज्ञान बुद्धि सहित आभासकूं होवै है, औ कूटस्थकूं नही ; **तथापि** सो आभास कूटस्थकूं औ अपने स्वरूपकूं, दोनूंवाकूं अपना आत्मा जानै है. ता आत्माका **मैं** सब्द करिके ग्रहन होवै है ; सोई **अहं सब्दका अर्थ** है.

ता अहं सब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ; ताका तौ ब्रह्मके साथ सदा अभेद है. जैसे घटाकासका औ महाकासका सदा अभेद है. इसी कारनतें कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुष्य समानाधिकरन **वेदांतसास्त्रमें कह्या** हैं. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवै, ता वस्तुका ताके संग **मुष्य सामानाधिकरन** कहिये है. जैसे घटाकासका महाकासके संग सदा अभेद है. यातें घटाकास महाकास है. इस रीतिसें घटाकासका महाकासके साथ **मुष्य समानाधिकरन** है. इस रीतिसें **कूटस्थका ब्रह्मके संग मुष्य समानाधिकरन है.** काहेतें, कूटस्थका ब्रह्मतें सदा अभेद है. यातें **मैं** सब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ ताका तौ ब्रह्मके संग सदा अभेद है.

औ **मैं** सब्दमें भान जो होवै है आभास, ताका ब्रह्मसें अपने स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है; जैसें मुषका जो प्रतिबिंब, ताका त्रिय स्वरूप मुषके संग प्रतिबिंब स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है. इसी कारनतें **वेदांत सास्त्रविषे** आभासका ब्रह्मके संग बाध समानाधिकरन कह्या है. जा वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होइ, ता वस्तुका ताके संग **बाध समानाधिकरन** कहिये है. जैसे मुषके प्रतिबिंबका बाध होयके मुषके साथ अभेद होवै है. यातें प्रतिबिंब मुष है, न्यारा नही ; ऐसा प्रतिबिंबका मुषके साथ **बाध समानाधिकरन** है. किंवा, जैसे स्थानुमें पुरुष भ्रम हो-

यके स्थानु ज्ञानसैं अनंतर पुरुष स्थानु है, इस रीतिसें पुरुषका स्थानुसें **बाध समानाधिकरन** होवै है. तैसें आभासका बाध होईके ब्रह्मके साथ अभेद होवै है. यातें मैं सब्दविषे भान जो होवैं आभास, सो ब्रह्म है, न्यारा नहीं. ऐसा बाध समानाधिकरन आभासका ब्रह्मके साथ होवै है. इस रीतिसें हे सिष्य, **अहं सब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ मुख्य अभेद है.** औ आभासका बाध करिके अभेद है. ११३

१८६ ## तत्वदृष्टिरुवाच.

दोहा.

अहं वृत्तिमें भान व्है, साछी अरु आभास ;
सो क्रमतें वा क्रम बिना, याकौ करहु प्रकास. ११४

टीका:– हे भगवन्, आपने कह्या जो "अहं वृत्तिमें साछी अरु आभास दोनूंवांका भान होवै है." याकेविषे मैं एक वार्त्ता नही जानूंहूं. सो कूटस्थ औ आभासका भान अहंवृत्तिविषे क्रमसें होवै है; अथवा क्रमसें बिना होवै है ? याका अर्थ यह है:– **क्रमसें** कहिये भिन्न भिन्न कालमें होवै है; अथवा दोनूंवांका एकही कालमें भान होवै है ? याका आप मेरेकूं **प्रकास** कहिये बोध करो. ११४

१८७ ## श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

सावधान व्है सिष्य सुन, भाषूं उत्तर सार ;
सुनत नसै अज्ञान तम, बोध भानु उजियार. ११५

टीकाः—हे सिष्य, जो तेने प्रस्न किया, मैं ताका सारभूत उ-त्तर कहूं हूं:—तूं सावधान होईके सुन. कैसा उत्तर है, याके सुनतही बोधरूपी सूर्यका प्रकास होयके अज्ञानरूपी तमकूं नासै है. ११५

दोहा.

एक समयही भान व्है, साछी अरु आभास ;
दूजो चेतनको विषय, साछी स्वयं प्रकास. ११६

टीकाः— हे सिष्य, **एकही समय साछीका औ आभास-का अहं वृत्तिविषे भान होवै है.** सारे प्रकरनविषे **आभास सब्दसें** अंत:करन सहित आभासका ग्रहन करना. यातें **दूजो** कहिये अंत:करन सहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साछी ताका विषय होईके भान होवै है. औ साछी स्वयंप्रकासरूप करिके भान होवै है. औ अंत:करनकी जो **आभास सहित वृत्ति, ताका विजय साछी नही.** औ घटादिक बाहिरके प-दार्थनविषे तौ ऐसी रीति है:—जब इंद्रियका औ घटका संयोग होवै; तब इंद्रिय द्वारा अंत:करनकी वृत्ति निकासिके घट-के समान आकारकूं प्राप्त होवै है. जैसे मुषामें गेर्‍या जो ताम्र, ताका मुषाके आकारके समान आकार होवै है. तैसे अंत:करनकी वृत्तिका बी घटके आकारके समान आकार होवै है. सो वृत्ति आभास विना नही होवै है; किंतु आभा-स सहित होवै है. काहेतें, **वृत्ति अंत:करनका परिनाम है;** अंत:करनका जो परिनाम ताकूं **वृत्ति** कहै है. जैसे अंत:करन सत्वगुनका कार्य होनेतें स्वछ है, यातें अंत:करनविषे चेतनका आभास होवै है. तैसे वृत्ति बी स्वछ अंत:करनका कार्य है; यातें वृत्तिविषे चेतनका आभास होवै है. औ वृत्ति जो उत्पन्न

होवैहै, सो आभास सहित अंतःकरनसें उत्पन्न होवै है. इस कार-
नतें बी वृत्ति आभास सहितही होवै है. औ:—

१८८ विषय जो घट है, सो **तमो गुनका कार्य है,** यातें
स्वरूपसें जड है, औ ताकेविषे **अज्ञान** औ ताका आवरन है.
यामें यह संका होवै है:—अज्ञान औ ताका आवरन विचार
दृष्टिसें चेतनविषे है, घटविषे नही. काहेतें, अज्ञान चेतनके आश्रित
है; औ चेतनहीकुं विषय करै है. **यह वेदांतका सिद्धांत है.** औ
सात अवस्थाके प्रसंगमें जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरन सहित
आभास कह्या, सो **अज्ञानका अभिमानी** है. "मैं अज्ञानी हूं"
ऐसा अभिमान अंतःकरन सहित आभासकूं होवै है. इस कारनतें
अज्ञानका आश्रय कहिये है. औ मुख्य आश्रय चेतन है; आभा-
स सहित अंतःकरन नही. काहेतें, आभास सहित अंतःकरन
अज्ञानका कार्य है; जो **जाका कार्य होवै है, सो ताका आश्र-
य बनै नही.** यातें चेतनही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है.
औ चेतनहीकूं अज्ञान विषय करै है. स्वरूपका जो आवरन कर-
ना सोई अज्ञानका **विषय करना** है. सो अज्ञानकृत आवरन जड
वस्तुविषे बनै नही. काहेतें, **जड वस्तु स्वरूपसेंही आवृत्त है.**
ताकेविषे अज्ञानकृत आवरनका कछु उपयोग नही. इस रीतिसें
अज्ञानका आश्रय औ विषय चैतन्य है. जैसे गृहके मध्य जो
अंधकार है, सो गृहके मध्यकूं आवरन करै है. यातें घटकेविषे
अज्ञान औ ताका आवरन बनै नही.

१८९ ताका यह समाधान है.

जैसे चेतनके स्वरूपसें भिन्न सत असतसें विलछन अज्ञान
चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसें चेतन आवृत्त होवै है; तैसे

घटके स्वरूपसें भिन्न अज्ञान **यद्यपि** घटके आश्रित नही है, **त-थापि** अज्ञाननें घटादिक, स्वरूपसें प्रकास रहित जड स्वरूप रचे हैं. यातें सदाही अंधके समान आवृत्त हैं. सो आवृत्त स्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है. काहेतें, तमो गुन प्रधान अज्ञानसें भूतकी उत्पत्ति द्वारा घटादिक उपजे हैं. सो **तमो गुन आवरन स्वभाववाला** है. यातें घटादिक प्रकास रहित अंधही होवै हैं. इस रीतिसें अंधतारूप आवरन घटादिकनमें अज्ञानकृत स्वभाव सिद्ध है. औ घटादिकनके अधिष्ठान चेतन आश्रित अज्ञान चेतनकूं आ-च्छादित करिके स्वभावसें आवृत्त घटादिकनकूं बी आवृत्त करै है. **यद्यपि** स्वभावसें आवृत्त पदार्थके आवरनमें प्रयोजन नही है, **त-थापि** आवरन कर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेछासें बिनाही निरा-वरनकी न्याई आवरन सहितमें बी आवरन करै है; यह लोकमें प्रसिद्ध है. ता अज्ञानसें आवृत्त घटकूं व्याप्त जो होवै है अंतःक-रनकी आभास सहित घटाकार वृत्ति; तामें वृत्ति भाग तौ घटके आवरनकूं दूरि करै है, औ वृत्तिमें जो आभास भाग है, सो घटका प्रकास करै है. इस रीतिसें **बाहिरके पदार्थविषे वृत्ति औ आभास दोनूंवांका उपयोग है.**

१९० दृष्टांत.

जैसे अंधकारमें कुंडेसें मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढक्या धर्‍या होवै, तहां दंडसें कुंडेकूं फोडि बिगेरे पीछे दीपक बिना उस नि-रावरन पात्रका बी प्रकाश होवै नही. किंतु दीपकसें प्रकास होवै है. तैसे अज्ञानसें आवृत्त जो घट, ताके आवरनकूं वृत्ति भंग बी करै है, तथापि घटका प्रकास होवै नही. काहेतें, घट तौ स्वरू-पसें जड है; औ वृत्ति बी जड है; ताका आवरन भंग मात्र प्र-

योजन है. तासें प्रकाश होवै नही. यातें घटका प्रकासक आभास है. नेत्रका विषय जो वस्तु है, ताके प्रत्यछ ज्ञानकी यह रीति कही. औ श्रवनादिकका जो विषय है, ताके प्रत्यछकी बी रीति ऐसेही जानि लेनी.

वृत्ति औ घट दोनूं एक देसमें स्थित होनेतें घटका **ज्ञान प्रत्यछ** कहिये है. औ अंतःकरनकी वृत्ति तौ घटाकार होवै, औ घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै, किंतु अंतरही वृत्ति होवै, सो घटका **परोछ ज्ञान** कहिये है. यह "घट हैं" ऐसा **अपरोछ ज्ञानका** आकार है. औ "घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोछ ज्ञानका आकार है. **यद्यपि स्मृत्ति** ज्ञान बी परोछ ज्ञानही है, **तथापि स्मृ**ति ज्ञान तौ संस्कार जन्य है; औ अनुमिति आदिक परोछ ज्ञान प्रमाण जन्य हैं; इतना भेद है. प्रमानके प्रसंगसें:—

१९१ हम प्रमान निरूपन करै हैं.

चार्वाक जो हैं, सो एक **प्रत्यछ प्रमान** अंगीकार करै हैं. औ:—

१९२ कनाद औ सुगत मतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमान प्रमान बी अंगीकार करै हैं. काहेतें, एक प्रत्यछही प्रमान अंगीकार करैं तौ तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषे प्रवृत्ति नही होवैगी. काहेतें, अभुक्त भोजनविषे तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यछ प्रमान जन्य प्रत्यछ ज्ञान है नही. यातें भुक्त भोजनमें अनुभव जो करी है तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्त भोजनमें बी अनुमानसें जानिके तृप्तिके **अर्थीकी भोजनमें** प्रवृत्ति होनेतें; अनुमान प्रमान बी अंगीकार कर्या चाहिये. इस रीतिसें कनाद औ **सुगत मतके अनुसारी प्रत्यछ औ अनुमान** दो प्रमान **अंगीकार** करै हैं. औ:—

१९३ **सांख्य सास्त्रका कर्त्ता जो कपिल है;** ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्द प्रमान बी अंगीकार करै हैं. काहेतें, जो प्रत्यछ औ अनुमान दोही प्रमान अंगीकार करैं तौ देसांतर विषे जाका पिता मरि गया होवै, ताकूं कोई यथार्थ वक्ता आनिके कहै, "तेरा पिता मरि गया है." तब श्रोताकूं पिताके मरनेका निश्चय नही हुवा चाहिये. काहेतें, देसांतरविषे स्थित पिताके मरनका ज्ञान प्रत्यछ औ अनुमान करिके बनै नही. इस रीतिसें **कपिल मतके अनुसारी प्रत्यछ औ आनुमान औ सब्द तीनि प्रमान अंगीकार करै हैं.** औः—

१९४ **न्यायसास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है,** ताके मतके अनुसारी उपमान बी चतुर्थ प्रमान अंगीकार करै हैं. काहेतें, प्रत्यछ आदिक तीनिही प्रमाण अंगीकार करैं, तौ जा पुरुषने गवय नही देख्या है, औ बनवासी पुरुषसें ऐसा श्रवन किया हैः—"गोके सादृस्य गवय होवै है." सो पुरुष जो बनमें चल्या जावै, औ गवयकूं देख लेवै; तब वाकूं बनवासी पुरुषनें कह्या जो "गौके सादृस्य गवय होवै है," यह वाक्य; ताके अर्थका स्मरन होवै है. ता स्मृतिसें अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवै हैः— "यह पसु गवय है" ऐसा ज्ञान नही हुआ चाहिये. यातें ऐसे विलछन ज्ञानका हेतु **उपमान प्रमान बी अंगीकार करै हैं.** औः—

१९५ **पूर्व मीमांसाका एकदेसी जो भटका सिष्य प्रभाकर है,** सो पंचम अर्थापत्ति प्रमान बी अंगीकार करै है. दिनमें भोजन त्यागी पुरुषकूं स्थूल देषिके ऐसा ज्ञान होवै हैः—"यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है" तहां रात्रि भोजन विना दिनमें भोजन त्यागीकेविषे स्थूलता बनै नही. यातें रात्रि भोजनका स्थूलता **संपादक है.** रात्रि भोजन **संपाद्य है.** संपाद्य जो रात्रि भोजन,

ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमान कहिये औ:-

१९६ **पूर्व मीमांसक जो भट हैं**, सो षष्ट अनुपलब्धि प्रमान बी अंगीकार करै हैं. औ **वेदांतसास्त्रविषे बी षट् प्रमान अंगीकार किये हैं.** अनुपलब्धि प्रमानका प्रयोजन यह है:— गृहादिकनमें घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है. तहां जा पदार्थकी प्रतीति नही होवै है, ताके अभावका ज्ञान होवै है. अप्रतीतिकूं **अनुपलब्धि** कहै हैं. घटकी जो **अनुपलब्धि** कहिये अप्रतीति, तातें घटका अभाव निश्चय होवै है. ऐसे पदार्थनके अभाव निश्चयका हेतु जो **पदार्थनकी अप्रतीति, ताकूं अनुपलब्धि प्रमान कहै हैं.**

१९७ प्रमा ज्ञानका जो करन है, सो **प्रमान** कहिये है. स्मृतिसें भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषय करने वाला ज्ञान है, सो **प्रमा** कहिये है. स्मृतिज्ञान जो है, सो प्रमा नही है. काहेतें, जो प्रमा ज्ञान है, सो प्रमाताके आश्रित होवै है. औ स्मृति प्रमाताके आश्रित नही; किंतु साछीके आश्रित अंगीकार करी है. औ भ्रांति ज्ञान औ संसय बी साछीके आश्रित अंगीकार किये हैं. इसी कारनतें **स्मृति** औ **भ्रांति** औ **संसय ज्ञान,** ये तीनू आभास सहित अविद्याकी वृत्तिरूप हैं; अंत:करनकी वृत्तिरूप नही. यातें प्रमाताके आश्रित नही; किंतु साछीके आश्रित हैं. जो अंत:करनकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै, सो प्रमाताके आश्रित होवै है. औ सोई **प्रमा** कहिये है. स्मृति ज्ञान अंत:करनकी वृत्ति नही; यातें प्रमाताके आश्रित नही; औ प्रमा बी नही. यातें प्रमाके लछनविषे स्मृतिसें भिन्न कह्या चाहिये. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान तौ स्मृत्ति ज्ञान बी है, परंतु स्मृति ज्ञान स्मृत्तिसें भिन्न नही है. यातें अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला

जो स्मृतिसें भिन्न ज्ञान **है**, सो **प्रमा** कहिये है. या लछन विषे कोई दोष नही.

१९८ और **कोई स्मृति ज्ञानकूं बी प्रमारूप माने हैं.** तिनके मतमें प्रमाके लछनविषे स्मृतिसें भिन्न ऐसा नही कहना. किंतु अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो ज्ञान है, सो **प्रमा** कहिये है. **भ्रांति ज्ञान** जो है, सो अबाधित अर्थकूं विषय नही करै है. किंतु बाधित अर्थकूं विषय करै है. यातें प्रमाका लछन भ्रांतिज्ञानमें नहि जावै है. जिनोंके मतमें स्मृति ज्ञानविषे बी प्रमा व्यवहार है; तिनके मतमें स्मृति ज्ञान अंतःकरनकी वृत्ति है; अविद्याकी वृत्ति नही; औ साछीके आश्रित बी नही. किंतु प्रमाताके आश्रित है. काहेतें, अंतःकरनकी वृत्तिका आश्रय प्रमाताही बनै है; साछी बनै नही. इस रीतिसें स्मृत्ति ज्ञान किसीके मतमें तौ अंतःकरनकी वृत्ति है, यातें प्रमारूप है; औ किसीके मतमें अविद्याकी वृत्ति है, यातें प्रमारूप नही है. औ **भ्रांति ज्ञान** औ **संसय ज्ञान**, ये दोनूं सर्वके मतमें अविद्याकी वृत्ति है; औ साछीके आश्रित है; यामें कोई विवाद नही. औ विचार करिके देखिये तौ **स्मृतिज्ञान बी अविद्याकी वृत्ति है; औ साछीके आश्रित है; प्रमारूप नही.** काहेतें, जो वेदांत संप्रदायके वेत्ता हैं, तिनोंनें **प्रमाज्ञान षट्प्रकारका** कह्या है. ता षट् प्रकारमें स्मृति ज्ञान है नही; यातें प्रमा नही.

१९९ औ **मधुसूदन स्वामीनें स्मृति ज्ञान साछीके आश्रितही कह्या है.** एक तौ प्रत्यछ प्रमा है, औ दूसरी अनुमिति प्रमा है, औ तीसरी उपमिति प्रमा है, औ चतुर्थी साब्दी प्रमा है, औ पंचमी अर्थापत्ति प्रमा है, औ षष्ठी अभाव प्रमा है. ये **षट् प्रमा** हैं औ पूर्व कहे जो प्रत्यछ आदिक षट् प्रमान हैं, सो इनके क्रमतें

करन' हैं. प्रत्यछ प्रमाका जो करन होवै, सो **प्रत्यछ प्रमान** कहिये है. असाधारन कारन जो होवै. सो **करन** कहिये है. जो सर्व कार्यका कारन होवै, सो **साधारन कारन** कहिये है. जैसे धर्म-अधर्मादिक सर्व कार्यके कारन हैं, यातें साधारन कारन हैं. सर्व कार्यका कारन न होवै, किंतु किसी कार्यका कारन होवै, सो **असाधारन कारन** कहिये है. जैसे दंड जो है सो सर्व कार्यका कारन नही ; किंतु घट आदिक जो कार्य विसेष हैं, तिनका कारन है. यातें दंड **असाधारन कारन** कहिये है. औ घटका **करन** बी कहिये है. तैसे प्रत्यछ प्रमाके ईस्वर औ ताकी इछासें आदि लेके तौ साधारन कारन हैं. काहेतें, ईस्वरसें आदि लेके सर्व कार्यके कारन हैं. तिन विना कोई कार्य होवै नही. यातें ईस्वरादिक **साधारन कारन** हैं. औ नेत्रसें आदि लेके जो इंद्रिय हैं, सो प्रयछ प्रमाके असाधारन कारन हैं. यातें नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, सो **प्रत्यछ प्रमाके करन** हैं. इस रीतिसें नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, सो **प्रत्यछ प्रमान** कहिये है.

२०० **यद्यापि** इंद्रियकूं **वेदांत सिद्धांतविषे** प्रमा ज्ञानकी कारनता कहना बने नही. काहेतें, **चेतनके च्यारि भेद** हैं:– एक तौ प्रमाता चेतन है, औ दूसरा प्रमान चेतन है, औ तीसरा प्रमिति चेतन है, ताहीकूं **प्रमा चेतन** बी कहै हैं. औ चौथा प्रमेय चेतन है. ताहीकूं **विषय चेतन** बी कहै हैं. इस रीतिसें **प्रमा** नाम चेतनका है ; सो नित्य है, इंद्रियजन्य नही. यातें इंद्रिय ताका कारन नही. **तथापि** चेनतमें प्रमा व्यवहार-का संपादक वृत्ति बी **प्रमा** कहिये है. ताके इंद्रिय **करन** हैं.

देहके मध्य जो अंतःकरन, ता करिके अवछिन्न जो चेतन

सो **प्रमाता** कहिये है. सोई अंतःकरन नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादिक विषय स्थित होवैं, उतना लंबा परिनाम अंतःकरनका होवै है. औ आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनसें मिलिके जैसा घटादिकका आकार होवै, तैसाही अंतःकरनका आकार होवै है. जैसे कोठेमें भऱ्या जो जल, सो छिद्र द्वारा निकसिके, लंबे नालेका आकार होयके, बगीचेके केदारमें जावै है, औ केदारमें जाईके जैसा केदारका आकार होवै, तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है. तैसे अंतःकरन बी इंद्रियरूपी छिद्र द्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावै है. तहां सरीरसें लेके घटादिक विषय पर्यंत जो अंतःकरनका नालेके समान परिनाम, ताकूं **वृत्तिज्ञान** कहै हैं. ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन, ताकूं **प्रमान चेतन** कहै हैं. औ वृत्ति ज्ञानरूप जो अंतःकरनका परिनाम, ताकूं **प्रमान** कहै हैं. जैसे केदारविषे जल जाईके केदारके समान आकार होवै है; तैसे घटादिक जो विषय हैं, तिनमें वृत्ति जाईके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो **प्रमा चेतन** कहिये है. ज्ञानके विषय जो घटादिक, तिन करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो **विषय चेतन** कहिये है ; औ **प्रमेय चेतन** बी कहिये है. यह वेद अर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है.

२०१ यामें इतना भेद है:— जो **अवछेद वाद अंगीकार करै हैं, तिनके मतमें** तौ अंतःकरन विसिष्ट जो चेतन है, सो **प्रमाता है.** औ सोई **कर्ता भोक्ता** है. औ अंतःकरन उपहित साक्षी है. एकही अंतःकरन प्रमाताका तौ विसेषन है, औ साक्षीकी उपाधि है. **स्वरूपविषे** जाका प्रवेस होवै, ऐसी जो व्यावर्त्तक वस्तु है, सो **विसेषन** कहिये है. और पदार्थसें

भिन्नता करिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावै, सो **व्यावर्त्तक** कहिये है. जाकूं भिन्नता करिके जनावै सो **व्यावर्त्त्य** कहिये है. जैसे " नील घट है. " या स्थानमें घटका नीलता विसेषन है काहेतें, नील घटकेविषे नीलताका प्रवेस है. औ पीत स्वेतादिकनसें भिन्नता करिके जनावै है ; यातें व्यावर्त्तक है. इस रीतिसें नीलता घटका विसेषन है. औ घट परिछेद्य है, काहेतें, पीत स्वेतादिकनतें **भिन्नता** कहिये जुदा करिके जनाईये है. जो भिन्नता करिके जनाईये, सो **परिछेद्य** कहिये है; **व्यावर्त्त** कहिये है, औ **विसेष** बी कहिये है. औ " दंडी पुरुष है. " या स्थानमें बी पुरुषका दंड विसेषन है. इस रीतिसें प्रमाताका अंतःकरन विसेषन है. काहेतें, प्रमाताके स्वरूपविषे अंतःकरनका प्रवेस है. औः—

प्रमेय चेतनसें भिन्नता करिके प्रमाताके स्वरूपकूं जनावै है यातें **व्यावर्त्तक** है. जा वस्तुका स्वरूपविषे प्रवेस न होवै,औ व्यावर्त्तक होवै; सो **उपाधि** कहिये है. जैसे नैयायिकके मतमें करन सस्कुलीसें अवच्छिन्न जो आकास है; सो **श्रोत्र** कहिये है. या स्थानमें करन सस्कुली श्रोत्रकी उपाधि है; काहेतें, श्रोत्रके स्वरूपविषे तौ करन सस्कुलीका प्रवेस है नही; औ बाहिरके आकासतें भिन्नता करिके श्रोत्रकूं जानावै है; यातें **व्यावर्त्तक** है. औ घटाकास जो है, सो मण परिमान अन्नकूं अवकास देवै है. या स्थानमें बी आकासकी घट उपाधि है. काहेतें, मन अन्नकूं अवकास देनेवाला जो आकास है, ताके स्वरूपविषे तौ घटका प्रवेस है नहीं. घट पार्थिव है, ताकेविषे अवकास देना बनै नही; यातें घटका स्वरूपमें प्रवेस बनै नही. औ व्यापक आकासतें भिन्नता करिके जनावै है; यातें मन अन्नकूं अवकास देनेवाला जो आकास

ताकी घट उपाधि है. तैसे अंतःकरन उपहित जो चेतन है, "सो **साछी है**. या स्थानमें अंतःकरन **साछीकी उपाधि है**. काहेतें:–

सान्छीके स्वरूपविषे तौ अंतःकरनका प्रवेस है नहीः औ प्रमेय चेतनसें सान्छीकूं भिन्नता करिके जनावै है. यातें **एकही अंतःकरन सान्छीकी तौ उपाधि है,औ प्रमाताका विसेषन है.** इस रीतिसें अंतःकरन उपहित जो चेतन है, सो तौ **साछी है**; औ अंतःकरन विसिष्ट चेतन **प्रमाता** है. जो उपाधिवाला होवै, सो **उपहित** कहिये है, औ विसेषनवाला होवै सो **विसिष्ट** कहिये है. जो अंतःकरन विसिष्ट प्रमाता है, सोई **कर्त्ता भोक्ता सुखी दुखी संसारी जीव है, यह अवच्छेद वादकी रीति है.** औः–

२०२ **आभास वादमें** आभास सहित अंतःकरन **जीवका विसेषन** है, औ आभास सहित अंतःकरन **साछीकी उपाधि** है. यातें साभास अंतःकरन विसिष्ट चेतन **जीव** है, औ साभास अंतःकरन उपहित चेतन **साछी है. यद्यपि** दोनूं पछमें विसेषन सहित चेतन जीव है, सोई **संसारी** है; **तथापि** विसेष्य भाग जो चेतन है, ताकेविषे तौ जन्म मरनसें आदि लेके संसारका संभव है नही. यातें **विसेषन मात्रमें संसार है, सोई विसिष्ट चेतनमें प्रतीत होवै है.** कहूं तौ विसेषनके धर्मका विसिष्टमें व्यवहार होवै है, औ कहूं विसेष्यके धर्मका विसिष्टमें व्यवहार होवै है; औ कहूं विसेषन विसेष्य दोनूंवांके धर्मका विसिष्टमें व्यवहार होवै है. जैसे दंड करिके घटाकासका नास होवै है, या स्थानमें विसेषन जो घट है, ताका दंडकरिके नास होवै है; औ विसेष्य जो आकास है, ताका नास बनै नही. तौ बी विसिष्ट जो घटाकास है, ताका नास प्रतीत होवै है. औ "कुंडली पुरुष सोवै है." या स्थानमें कुंडल विसेषन है; औ पुरुष विसेष्य है. विसेषन जो

कुंडल है, ताकेविषे सोवना बनै नही. किंतु विसेष्य जो पुरुष है, ताकेविषे सोवना है. औ "कुंडल विसिष्ट होवै है." ऐसा विसिष्टमें व्यवहार होवै है. औ "सस्त्री पुरुष युद्धमें गया है." या स्थानमें विसेषन जो सस्त्र, औ विसेष्य पुरुष; दोनूं युद्धमें गये हैं. यातें दोनूंवांके धर्मका विसिष्टमें व्यवहार होवै है. या स्थानमें **अवछेद वादमें** तौ अंत:करन विसेषन है. औ आभास वादमें साभास अंत:करन विसेषन है; औ **दोनूं पछमें चेतन विसेष्य** है. ताकेविषे तौ जन्मादि संसार बनै नही. किंतु विसेषन अंत:करन अथवा साभास अंत:करन ताका धर्म जो जन्मादिक संसार, ताका विसिष्ट चेतनमें व्यवहार करिये है. **व्यवहार** नाम प्रतीति औ कहनेका है. इस रीतिसें आभास वाद औ अवछेद वादका भेद है.

२०३ **आभास वादमें तौ अंत:करन** आभास सहित है, औ **अवछेद वादमें अंत:करन** आभास रहित है. **दोनूं पछमें आभास वाद** श्रेष्ठ है. काहेतें, **भाष्यकारनें** आभासवाद अंगीकार किया है. औ अवछेदवादमें **विद्यारन्य स्वामीने** दोष बी कह्या है. जो आभास रहित अंत:करन अवछिन्न चेतनकूं प्रमाता मानैं, तौ घट अवछिन्न चेतन बी प्रमाता हुवा चाहिये. काहेतें, जैसे अंत:करन भूतनका कार्य है, तैसै घट बी भूतनका कार्य है. औ जैसें अंत:करन चेतनका **अवछेदक** कहिये व्यावर्त्तक है. तैसे घट बी चेतनका अवछेदक है. यातें अंत:करन विसिष्टकी न्याई घट विसिष्ट बी प्रमाता हुवा चाहिये. औ अंत:करनमें आभास अंगीकार कियेतें यह दोष नही. काहेतें, **अंत:करन तौ भूतनके सत्वगुनका कार्य है**; यातें स्वछ है. औ **घटादिक भूतनके तमोगुनके कार्य हैं**; यातें स्वछ नही. जो स्वछ पदार्थ होवै, सोई आभासके योग्य होवै है. मलिन पदार्थ आभासके योग्य नही. जैसे काच औ ता-

का ढकना दोनूं पृथिवीके कार्य हैं, परंतु काच तौ स्वछ है, तामें मुषका आभास होवै है. ढकना स्वछ नही, यातें तामें आभास होवै नही. तैसे सत्वगुनका कार्य होनेतें अंतःकरन स्वछ है, ताहीमें चेतनका आभास होवै है. सरीरादिक औ घटादिक तमोगुनके कार्य होनेतें स्वछ नही. तिनमें चेतनका आभास होवै नही.

२०४ इस रीतिसें **अंतःकरनमें द्विविध प्रकास** है, **एक** तौ व्यापक चेतनका प्रकास, औ **दूसरा** आभासका प्रकास है. सरीरादिक औ घटादिकनमें एक व्यापक चेतनका प्रकास तौ है, दूसरा आभासका प्रकास नही. यातें द्विविध प्रकास सहित अंतःकरन विसिष्ट ही चेतन **प्रमाता** कहिये है. एक प्रकास सहित जो घटादिक तिन करिके संयुक्त चेतन प्रमाता नही. जिनके मतमें अंतःकरनमें आभास नही, तिनके मतमें घटादिकनकी न्याई अंतःकरनमें बी आभासका दूसरा प्रकास तौ है नही. व्यापक चेतनका जो एक प्रकास अंतःकरनमें, सोई व्यापक चेतनका प्रकास घटादिकनमें है. यातें अंतःकरन विसिष्टकी न्याई घट विसिष्ट, वा सरीर विसिष्ट, वा भीत विसिष्ट, चेतन बी प्रमाता हुवा चाहिये. इस रीतिसें **घट सरीरादिकनतें अंतःकरनमें यही विलछनता है.** अंतःकरन सत्वगुनका कार्य है, यातें स्वछ होनेतें चेतनका आभास ग्रहन करनेके योग्य है; और पदार्थ स्वछ नही; यातें आभास ग्रहन करनेके योग्य नही. आभास ग्रहनके योग्य जो अंतःकरन ता करिके संयुक्तही चेतन **प्रमाता** कहिये है. घटादिक औ सरीरादिक आभास ग्रहनके योग्य नहीं. यातें तिन करिके विसिष्ट चेतन प्रमाता नही. इस रीतिसें **आभास वादही उत्तम है;** अवछेद वाद नही.

२०५ जैसे अंतःकरन आभास सहित है, तैसे **अंतःकरनकी वृत्ति बी आभास सहितही होवै है.** साभास वृत्ति विसिष्ट चेतन **प्रमान चेतन** कहिये है. अंतःकरनकी घटादि विषयाकार जो वृत्ति तामें आरूढ चेतनकूं **प्रमा** औ **यथार्थ ज्ञान** कहै हैं. ताका साधन जो इंद्रिय सो **प्रमान** कहिये हैं. काहेतें, विषयाकार वृत्तिमें आरूढ चेतनकूं **प्रमा** कहै हैं. तहां चेतन यद्यपि स्वरूप करिके नित्य है, यातें इंद्रिय जन्यताके अभावतें प्रमा चेतनका साधन इंद्रिय नही. तथापि निरुपाधिक चेतनमें तौ प्रमा व्यवहार है नही. किंतु विषयाकार वृत्ति उपहित चेतनमें प्रमा व्यवहार होवै है. यातें चेतनविषे प्रमा सब्दकी प्रवृत्तिमें विषयाकार वृत्ति उपाधि है. सो विषयाकार वृत्ति इंद्रिय जन्य है. इंद्रिय ताका साधन है. प्रमापनेकी उपाधि जो वृत्ति, ताकों इंद्रिय जन्य होनेतें उपहित जो प्रमा, सो बी इंद्रिय जन्य कहिये है. यातें इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है. परंतु **अंतःकरनका परिनाम सारा प्रमा नही कहिये है.** किंतु सरीरके भीतर जो अंतःकरन, ताका विषय घटादिकन तोडी परिनाम, ताकूं **प्रमान** कहै हैं. विषयतें मिलीके विषयके समान जो अंतःकरनका परिनाम, उतनेकूं **प्रमा** कहै हैं. सरीरके भीतर जो अंतःकरन तासें लेके घटादिक विषय तोडी पहुचा जो अंतःकरनका परिनाम, सोई **प्रमारूपकूं** धारै है. यातें प्रमाका प्रमानरूप अंतःकरनकी वृत्तिसें अत्यंत भेद नही. इस रीतिसें बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष ज्ञान जहां होवै, तहां अंतःकरनकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आकार रूपकूं धारै है. औ सरीरके अंतर जो आत्मा, ताका प्रत्यक्ष होवै, तब अंतःकरनकी वृत्ति बाहिर जावै नही. किंतु **सरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवै है.** ता वृत्तिसें आत्माके आश्रित

आवरन दूरि होवै है. औ आत्मा अपने प्रकासतें ता वृत्तिमें प्रकासै है. इसी कारनतें वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है. **औ चिदाभासरूप जो वृत्तिमें फल, ताका विषय आत्मा नही.** या प्रकारतें साक्षी आत्मा स्वयं प्रकासरूप भान होवै है; यह सिद्ध हुआ.११६

२०६ तत्वदृष्टिरुवाच.

दोहा.

इंद्रियके संबंध बिन, अहं ब्रह्म यह ज्ञान;
कैसे व्है प्रत्यछ प्रभु ? मोकूं कहौ बषान. ११७

टीका:—"ब्रह्मके अपरोछ ज्ञानतें सकल अविद्या जालका नास होवै है; परोछ ज्ञानतें नही." यह पूर्व कह्या. ताके विषे; **संका करै है.** ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यछ बनै नही. काहेतें, इंद्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यछ होवै है. ब्रह्मका ज्ञान इंद्रिय जन्य बनै नही. काहेतें,

२०७ नेत्र इंद्रियतें रूपवानका अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवै है; ऐसा ब्रह्म नही. **यातें नेत्र इंद्रिय जन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नही. राम कृष्नादिकनकी जो मनुष्याकार मूर्ति है,** सो यद्यपि रूपवाली है, तथापि सो मूर्ति माया रचित है, मिथ्या है, सो मूर्ति ब्रह्म नही. औ पुरानमें राम कृष्नादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है;सो तिनकी सरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप है; इस अभिप्रायतें नही कही. किंतु तिनके सरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है; इस अभिप्रायतें कही है. याकेविषे **ऐसी संका होवै है:**—सर्व सरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है. यातें अधिष्ठान चेतन अभिप्रायतें राम कृष्नादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही होवै, तौ सर्व सरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म होनेतें मनुष्य पसु पछी आदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं. तिनके समानही राम कृष्नादिक होवेंगे. यातें राम कृष्नादिकनकूं अधिष्ठान

चेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायतें ब्रह्मरूपता नही कही. किंतु तिनकूं और जीवनतें विसेष रूपताकी सिद्धि वास्ते, तिनका सरीरही ब्रह्म है, ऐसा मानना योग्य है.

सो बनै नही. काहेतें, सरीरका बाध करिके तिनके सरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानैं, तौ सर्व सरीरनका बाध करिके सारेई सरीर ब्रह्मरूप हैं. औ बाध किये बिना तौ अन्य सरीरनकी न्याई, हस्त पादादिक अवयव सहित रूपवान क्रियावान सरीरका निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मतें अभेद बनै नही. यातें राम कृष्नादिकनका सरीर ब्रह्म नही. परंतु इतना भेद है.— जीवनके सरीर पुन्य पापके आधीन हैं, भूतनके कार्य हैं. औ जीवनकूं देहादिक अनात्म पदार्थनविषे अविद्या बलतें अहं मम अध्यास है. आचार्यके उपदेसतें ता अध्यासकी निवृत्ति होवैहै. औ राम कृष्नादिकनके सरीर अपने पुन्य पापतें रचित नही, भूतनके कार्य नही.

किंतु जैसे सृष्टिके आदिमें प्रानियोंके कर्म भोग देनेकूं सन्मुष होवैं, तब आप्त काम ईस्वरमें बी प्रानियोंके कर्मके अनुसार "मैं जतगकी उत्पत्ति करूं" ऐसा संकल्प होवै है. ता संकल्पतें जगतकी उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है. तैसे सृष्टितें अनंतर बी "मैं जगतका पालन करूं" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवै है. ता संकल्प तें जगतका पालन होवै है. कर्मनके अनुसार सुष दुषका संबंध **पालन** कहिये है. ता पालन संकल्पके मध्य उपासक पुरुषनकी उपासनाके बलतें ईस्वरकूं ऐसा संकल्प होवै है:— "राम कृष्नादिक नाम सहित मूर्त्ति सर्वकूं प्रतीत होवै." ता ईस्वर संकल्पतें विसेष नामरूप रहित ईस्वरमें राम कृष्नादिक नाम पीतांबर धरादि स्यामसुंदर विग्रह रूपकी उत्पत्ति होवै है. सो विग्रह कर्मके आधीन नही. **यद्यपि** राम कृष्नादिक विग्रहतें साधु औ दुष्टनकूं क्र-

मतें सुष दुष होवैहै. जो जाके सुष दुषका हेतु होवै है, सो ताके पुन्य पापतें रचित होवै है. यातें पुन्य पाप आधीन कहिये है. इस रीतिसें अवतारनके सरीर साधु पुरुषनकूं सुषके हेतु होनेतें साधु पुरुषनके पुन्य समुदायतें रचित हैं. तैसे असुरादिक असाधु पुरुषनकूं दुषके हेतु होनेतें तिनके पापतें रचित हैं. यातें "अवतारनके सरीर पुन्य पापके आधीन नहीं," यह कहना नही संभवै. **तथापि** जैसे जीवने पूर्व सरीरमें पुन्य पाप कर्म किये हैं, तिनका फल उत्तर सरीरमें ता जीवकूं सुष दुष होवै है, तहां सरीर अभिमानी जीवके पूर्व सरीरके आपने पुन्य पापके आधीन उत्तर सरीर कहिये है. तैसे राम कृष्नादिकनके सरीर **यद्यपि** साधु असाधु पुरुषनके पुन्य पापके आधीन हैं, औ तिनकूं सुष दुषके हेतु हैं. परंतु राम कृष्नादिकनके पुन्य पापतें रचित अवतार सरीर नही. औ तिनकूं अपने सरीरतें सुषका तथा दुषका भोग होवै नही. यातें राम कृष्नादिकनके सरीर अपने पुन्य पापके आधीन नही; यह संभवै है.

तैसे भूतनके परिनाम बी राम कृष्नादिक सरीर नहीं. किंतु चेतन आश्रित मायाका परिनाम है. जो पंचीकृत भूतनके परिनाम होवै; तो कृष्न सरीर विषे रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव सास्त्रमें कह्या है, सो असंगत होवैगा. **यद्यपि** पंच भूत रचित सिद्ध योगी सरीरमें बी बंधनादिक होवै नही, **तथापि** योगी सरीरमें प्रथम बंधनादिकनका संभव होवै है. फेरि योगाभ्यासरूप पुरुषार्थतें बंधन दाहादिकनकी योग्यता नास होवै है. कृष्नादिकनके सरीरमें योगीकी न्याई कछु पुरुषार्थसें बंधनादिकनका अभाव नही. किंतु तिनके सरीर सहजही बंधनादि योग्य नहीं. यातें भूतनके परिनाम नही. औ मांडुक्य भाष्यकी टीकामें आ-

नंदगिरिनें रामादिक सरीर भूतनके परिनाम कहे हैं; सो स्थूल दृष्टिसें और सरीरनके समान वे सरीर प्रतीत होवै हैं; इस अभिप्रायतें कहे हैं. काहेतें, **भाष्यकारनें** गीताभाष्यमें यह **कह्या** है;—जीवनके ऊपर अनुग्रह करिकें सरीरधारीकी न्याई मायाके बलतें परमात्मा कृष्नरूपं प्रतीत होवै है. सो जन्मादिक रहित है. ताका वसुदेवद्वारा देवकीतें जन्म बी मायातें प्रतीत होवै है. इस रीतिसें भाष्यकारनें कृष्न सरीर मायाका कार्य कह्या है. यातें भूतनतें अवतार सरीरनकी उत्पत्ति नही. किंतु तिनके सरीरनका उपादान कारन साछात माया है.

और जीवनकूं देहादिकनमें आत्म भ्रांति है; रामकृष्नदिकनकूं नही.काहितें जीवकी उपाधि अविद्या मलिन सत्वगुन वाली है, रामकृष्नादिकनकी उपाधि माया सुद्ध सत्वगुन वाली है, यातें जीवनकूं अविद्या कृत भ्रांति, औ राम कृष्नादिकनकूं माया कृत सर्वज्ञता होवै है. जीवनकूं अज्ञानकृत आवरन, औ भ्रांतिके नास निमित्त आचार्य द्वारा महावाक्यके उपदेस जन्य ज्ञानकी अपेछा है. तैसे राम कृष्नादिकनकूं आवरन औ भ्रांति नही; यातें उपदेस जन्य ज्ञानकी अपेछा नही. किंतु जीवकूं अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञानकी न्याई, ईस्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेसादिक विना बी होवै है; परंतु ता ज्ञानतें कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै नही. काहेतें, जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानतें आवरन भंग, औ विषय जो घटादिक तिनका प्रकास होवै है. औ ब्रह्मरूपतें आत्माका ज्ञान जो जीवनकूं होवै है, तहां ज्ञानका विषय जो आत्मा, ताका आवरन भंग तौ ज्ञानतें होवै है. औ आत्मा विषय स्वयंप्रकास है. यातें आत्म ज्ञानतें विषयका प्रकास होवै नही. तैसे ईस्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो"**अहं ब्रह्मास्मि**" ऐसा ज्ञान, ताका

विषय ईस्वरका आत्मा सो आवरन रहित स्वयंप्रकास है. यातें आवरन भंग, वा विषयका प्रकास ईस्वरके ज्ञानका प्रयोजन नही. जैसे जीवन्मुक्त विद्वानकूं निरावरन आत्माकूं विषय करने वाली अंत:करनकी **"अहं ब्रह्मास्मि"** ऐसी वृत्ति आवरन भंगादिक प्रयोजन रहित होवै है. तैसै ईस्वरकूं बी आवरन भंगादिक प्रयोजन विना मायाकी वृत्तिरूप **"अहं ब्रह्मास्मि"** ऐसा ज्ञान उपदेसादिकते विना होवै है.

इस रीतिसें राम कृष्नादिकनकूं जीवनते विलछनता; ईस्वरता है बी, तौ बी तिनका सरीर माया रचित है. यातें ब्रह्म नही; किंतु मिथ्या है. मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका सरीर, सो हस्त पादादिक अवयव सहित, औ रूप सहित किया है. यातें नेत्र इंद्रियका विषय तिनका सरीर होवै है. ब्रह्मकूं नेत्र इंद्रिय विषय करै नही.

२०८ तैसे त्वचा इंद्रिय बी स्पर्सकूं, औ स्पर्सके आश्रयकूं विषय करै है. **ब्रह्म स्पर्सका आश्रय नही; औ स्पर्स नही.** यातें त्वचा इंद्रियका विषय नही.

२०९ रसना इंद्रियतें रसका ज्ञान, घ्राणतें गंधका ज्ञान, श्रोत्रतें सब्दका ज्ञान होवै है. रस, गंध, सब्दतें ब्रह्म विलछन है. यातें **रसना, घ्राण, औ श्रोत्रतें ब्रह्मका ज्ञान होवै नही.**

२१० औ कर्म इंद्रिय ज्ञानके साधन नही; किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं. यातें तिनतें तौ किसीका ज्ञान होवै नही. इस रीतिसें **किसी इंद्रियतें ब्रह्मका ज्ञान बनै नही.** औ इंद्रियतें जो ज्ञान होवै, सो **ज्ञान प्रत्यछ** कहियें है. प्रत्यछकूंही **अपरोछ** कहे है. यातें **ब्रह्मका अपरोछ ज्ञान बनै नही;** किंतु सब्दसे ब्र-

अपका ज्ञान होवै है. जो सब्दसें ज्ञान होवै, सो परोछ होवै है. यातें ब्रह्मका ज्ञान बी परोछही होवै है.

२११ **श्रीगुरुरुवाच.**

दोहा.

इंद्रिय बिन प्रत्यछ नहि, सिष यह नियम न जान;
बिन इंद्रिय प्रत्यछ व्है, जैसे सुष दुष ज्ञान. ११८

टीका.—इंद्रिय संबंध बिना प्रत्यछ ज्ञान होवै नही, **यह नियम नही.** काहेतें, जैसे सुषका औ दुषका ज्ञान होवै, सो किसी इंद्रियतें होवै नही. सो सुष दुषका ज्ञान बी प्रयछ होवै है. यातें इंद्रिय संबंधतें जो ज्ञान होवै, सोई प्रत्यछ ज्ञान होवै, **यह नियम नही.** किंतु विषयतें वृत्तिका संबंध होयके विषयाकार वृत्ति जहां होवै, तहां **प्रत्यछ ज्ञान** कहिये है. सो विषयतें वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रिय द्वारा होवै है; औ कहूं सब्दसें होवै है. जैसे "दसम तूं है" इस सब्दतें दसम जो आप, तातें अंतःकरनकी वृत्तिका संबंध होयके दसमाकार वृत्ति होवै है. यातें **सब्द जन्य बी दसमका ज्ञान प्रत्यछ होवै है.**

तैसे प्रमाताविषे सुष दुष होवै, तब सुषाकार दुषाकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै; ता वृत्तिसें सुषदुषका संबंध होवै है यातें **सुष दुषका ज्ञान प्रत्यछ कहिये है.** पूर्व उत्पन्न सुष दुष नष्ट हुये पाछे जहां पुरुषकूं याद आवै, तहां सुषाकार दुषाकार अंतःकरनकी वृत्ति तौ होवै है; परंतु वृत्तिके नष्ट हुये सुष दुषतें संबंध नही. यातें सो **ज्ञान स्मृतिरूप** है; प्रत्यछ रूप नही. **यद्यपि** अंतःकरनके धर्म सुष दुष साछी भास्य हैं, **तथापि** सुषाकार दुषाकार अंतःकरनकी वृत्तिद्वारा साछी सुष दुषका प्रकास करै

है. जो **साक्षी भास्य पदार्थ हैं,** तिनकूं बी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षा तेंही प्रकासैं है. जैसे सुक्तिरजत साक्षी भास्य हैं**,** तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षा करिके साक्षी रजतकूं प्रकासै है. परंतु सुष दुषके प्रकासमें अंत:करनकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है. औ मिथ्या रजतादिकनके प्रकासमें अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इस रीतिसें साक्षी भास्य पदार्थके ज्ञानमें बी वृत्तिकी अपेक्षा है. सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्य साधनतें होवै, ताका विषय साक्षी भास्य नही कहिये हैं. सुष दुषकूं विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्य इंद्रियादिक हेतु नही. किंतु जब सुषादिक उत्पन्न होवैं; तिसी कालमें अन्य साधनकी अपेक्षा बिना सुषाकार दुषाकार अंत:करनकी वृत्ति होवै है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुष दुषकूं प्रकासै है. यातें **सुष दुष साक्षी भास्य कहिये हैं.**

२१२ औ बाह्य जो घटादिक हैं, तिनसें अंत:करनकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रिय द्वारा होवै है. यातें घटादिक साक्षी भास्य नही. तैसे ब्रह्माकार अंत:करनकी वृत्ति होवै है; सो अंत:करनकी वृत्ति बाहिर नही आवै है; किंतु सरीरके अंतरही होवै है. ता वृत्तिसें ब्रह्मका संबंध है. यातें **ब्रह्मका ज्ञान बी सुष दुषके ज्ञानकी न्याई प्रत्यछरूप है.** परंतु सुषाकार दुषाकार वृत्तिमें बाह्य साधनकी अपेक्षा नही. यातें सुष दुष साक्षी भास्य हैं. औ ब्रह्माकार जो अंत:करनकी वृत्ति, तामें तौ गुरु द्वारा वेद वचनका श्रोत्रसें संबंध बाह्य साधन चाहिये है. यातें **ब्रह्म साक्षी भास्य नही.** इस रीतिसें जहां विषयतें वृत्तिका संबंध होवै, तहां **प्रत्यछ ज्ञान** कहिये है. "**अहं ब्रह्मास्मि**" या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म तासैं संबंध है. यातें **ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यछ संभवै है.**

औ जहां धूमकूं देषिके अग्निका ज्ञान होवै है, तहां धूमका

ज्ञान तौ प्रत्यछ है, औ अग्निका ज्ञान प्रत्यछ नही. काहितें, नेत्र द्वारा अंत:करनकी वृत्तिका धूमतें संबंध है. यातें धूमका ज्ञान प्रत्यछ कहिये है. औ अनुमानतें अंत:करनकी वृत्ति सरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहन करने वाली तौ हुई, परंतु अग्निसें वृत्तिका संबंध नही. यातें अग्निका ज्ञान पत्यछ नही. इस रीतिसें **जहां वृत्तिसें विषयका संबंध होवै, तहां प्रत्यछ ज्ञान कहिये** है. जहां वृत्तिसें विषयका संबंध नही होवै, विषय बाहिर दूरि होवै, अथवा भूत, वा भविष्यत होवै, औ अनुमानतें, अथवा सब्द तें विषयाकार वृत्ति अंतर होवै, सो **ज्ञान परोछ** कहिये है; इंद्रिय जन्य ज्ञानही प्रत्यछ होवै है, यह नियम नही. जैसे सुष दुषका ज्ञान इंद्रिय जन्य नही, औ प्रत्यछ है, तैसे दसम पुरुषका ज्ञान सब्द जन्य है; तौ बी प्रत्यछ होवै है. इस रीतिसें गुरु द्वारा श्रवन किया जो महावाक्य रूप वेद सब्द, तासें उत्पन्न हुवा. **ब्रह्म ज्ञान बी प्रत्यछही संभवै है.** ११८

दोहा.

गुरुको अस उपदेस सुनि, तत्व दृष्टि बुधिमंत;
ब्रह्मरूप लषि आतमा, कियो भेद भ्रम अंत. ११९
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमें, निरावरन व्है भान;
दादू आदू रूप सो, यूं हम लियो पिछान. १२०

इतिश्री उत्तमाधिकारी उपदेस निरूपनं नाम चतुर्थ स्तरंग:

समाप्त: ४

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्री विचार सागरे

पंचमस्तरंग प्रारंभः

अथ श्री गुरु वेदादि व्यावहारिक प्रतिपादन मध्यमाधिकारी साधन निरूपनं.

२१३ पूर्व तरंगमें यह कह्याः– "गुरु मुष द्वारा श्रवन किये वेद वाक्यतें अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है." ताकूं सुनिके अदृष्ट नाम द्वितीय सिष्य, यह संका करै है:– वेद गुरु सत्य होवें तौ अद्वैत की हानि; असत्य होवें तौ, तिनतें पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नही. दोनूं रीतिसें वेद गुरुतें अद्वैत ज्ञान बनै नही.

चौपाई.

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये,
तिनतें भव दुष नस्यो न चहिये;
जैसे मिथ्या मरु थलको जल,
प्यास नासको नहि तामें बल. १
सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत,
भयो गयो सिद्धांत अद्वैत;
यूं संकर मत पेषि असुद्धा,
तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा. २

"भयो" पदको प्रथम पादसें अन्वय है.

यह संका भगवन् मुहि उपजै,
उत्तर देहु दयाल न कुपिजै;
२१४ गुरु बोले सिषकी सुनि बानी,
संकरको मत परम प्रमानी. ३
च्यारि यार मध्वादिक जे हैं,
वेद विरुद्ध कहत सब ते हैं;
यामें व्यास वचन सुनि लीजै,
संकर मतहि प्रमान करीजै. ४
कलिमें वेद अर्थ बहु करि हैं,
श्री संकर सिव तब अवतरि हैं;
जैन बुद्ध मत मूल उषारै,
गंगातें प्रभु मूर्त्ति निकारै. ५
जैसे भानु उदय उजियारो,
दूरि करै जगमें अंधियारो;
सब वस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै,
संसै और विपर्यय नासै. ६
वेद अर्थमें त्यूं अज्ञाना,
नसि है श्री संकर व्याख्याना;
करि है ते उपदेस यथारथ,
नासहि संसय अरु अयथारथ*. ७

*अयथार्थ, कहीये भ्रांति.

और जु वेद अर्थकूं करि हैं,
ते सठ वृथा परिश्रम धरि हैं;
यूं पुरानमें व्यास कही है,
संकर मतमें मान यही है. ८

मध्वादिकको मत न प्रमानो,
यह हम व्यास वचनतें जानो;
और प्रमान कहूं सो सुनिये,
वालमीक रिषि मुष्य जु गिनिये. ९

तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा,
तामें मत अद्वैत स्पष्ठा,
श्री संकर अद्वैतहि गान्यो,
तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो. १०

२१५ वालमीक रिषि वचन विरुद्धं,
भेद वाद लषि सकल असुद्धं; ११

टीका:–सर्व प्रकरनका भाव यह है:– **व्यास भगवाननें पुरानमें यह कही है:**–जब कलिमें वेदके अर्थकूं नाना भांति करेंगे, तब कृपालु **सिव श्री संकर** नाम धारके अवतार लेके बद्रिनाथकी मूर्तिका देव नदी मध्यतें उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, जैन बुद्ध मत षंडन, औ वेदका यथार्थ व्याख्यान करेंगे. या व्यास वचनतें श्री संकर मत प्रमान है, औ मध्वादिकनका भेद मत अप्रमान है. और उपनिषद, गीता, सूत्र, ये **तीनि जो वेदांतके**

प्रस्थान हैं, तिनके **यद्यपि** मध्वादिकननें किसी तरें षींचके स्व मतके अनुसार व्याख्यान किये हैं. **तथापि** व्यास वचनतें श्री संकर कृत व्याख्यानही यथार्थ है. औ आदि कवि सर्वज्ञ **वाल्मीक रिषिनें** उत्तर रामायन वासिष्ठ नाम ग्रंथ किया है; तहां अद्वैत मतमें प्रधान जो दृष्टि सृष्टि वाद है, सो अनेक इतिहासनसें प्रतिपादन किया है. यातें वाल्मीक वचन अनुसार अद्वैत मत प्रमान है, औ वाल्मीक वचन विरुद्ध भेद मत अप्रमान है. इस रीतिसें सर्वज्ञ रिषि मुनि वचन विरोधतें भेद वाद अप्रमान कह्या. औ युक्तिसें बी भेद वाद विरुद्ध है. यह षंडन आदिक ग्रंथनमें श्री-हर्षादिकननें प्रतिपादन किया हैं. युक्ति कठिन है, यातें भेद मत षंडनकी युक्ति नही लिषी. ओः—

२१६ रिषि मुनि वचनतें विरुद्ध भेद मतमें जैन मतकी न्याई, अप्रमानता निश्चय हुयतें युक्तिसें षंडनकी आस्तिक अधिकारीकूं अपेछा बी नही. यह तीनि चौपाईसों कहे हैं.

चौपाई.

किया ग्रंथ श्री हर्ष जु षंडन,
षंडन भेद एकता मंडन;
लिष्यो तहां यह बहु विस्तारा,
भेद वाद नाहि युक्ति सहारा. १२
और भेदधिक्कार जु ग्रंथा,
तहां भेद षंडनको पंथा;
कठिन दुरूह तर्क है ते अति,

नही पैठिहि सिष तिनमें ते मति. १३
यातें कही न ते तुहि उक्ती,
करे जु भेदहि षंडन युक्ती;
अप्रमान मत भेद लष्यो जब,
षंडनमें युक्ति न चहियत तब. १४

वेद वचनसें बी भेद मत विरुद्ध है; यह कहे हैं:—

भेद प्रतीति महा दुष दाता,
यम कठमें यह ठेरत ताता;
यातें भेद वाद चित त्यागहु,
इक अद्वैत वाद अनुरागहु. १५

*"मृत्योः समृत्यु माप्नोति यइहनानेव पश्यती" तिश्रुतेः

"द्वितीया द्वै भयं भवति"

"आन्यो सावन्यो हमस्मीति;

नसवेद यथा पशुरेव सदेवानां" इति द्वेश्रुतीः

अर्थः— जो द्वितियकूं मतिमें धारै,
भय ताकूं यह वेद पुकारै;

---

*अर्थः—"जो पुरुष इस परमात्मा बिषे नानाकी न्याई देषता है, सो मृत्युतें मृत्युकूं पावता है." इति.

ज्ञेय ध्येय मोतें कछु औरा,
लषै सु पसु यह वेद ढंढोरा. १६
सिष यातें मध्वादिक वानी,
सुनी सु विसरह अति दुष दानी;
द्वैत वचन तव हियमें जौलौं,
व्है साछात अद्वैत न तौलौं १७
२१७ द्वैत वचनको स्मरन जु होवै,
व्है साछात तु ताहि विगोवै;
पूर्व स्मृति साछात विनासत,
सुन इक अस तुहि कथा प्रकासत. १८
राजाको इक भर्छू मंत्री,
राज काज सब ताके तंत्री ;
और मुसाहिब मंत्री जेते,
करैं ईरषा तासूं तेते. १९

तंत्री कहिये आधीन.

करि न सकत भर्छूकी हाना,
महाराज निज जिय प्रिय जाना;
तब सब मिलि यह रच्यो उपाया,
धारि दौर दंगा मचवाया. २०
सो सुनि राजाहि करी कचहरी,

लिये वुलाय मुसाहिब जहरा ;
तिनसूं कह्यो वेग चढि जावहु,
दौरत धारि सु धूम नसावहु. २१
तब सब मिलि उत्तर यह दीना,
सदा एक भर्छुहि तुम चीना;
मरनलिये अब हमाहिं पठावतु,
भर्छूकूं कहु क्यूं न चढावतु? २२
तब बोल्यो भर्छू कर जोरी,
महाराज सुनु विनती मोरी;
आज्ञा होय मोहि यह रौरी,
मारूं सकल धारि जो दौरी. २३
तब भर्छूकूं बोल्यो राजा,
तुम चढि जाहु समारहु काजा;
ते जातहि भर्छू सब मारे,
बनक कृषी बल किये सुधारे. २४
भर्छू विजय सुन्यो तिन जवही,
राजापैं भाष्यो यह तबही;
भर्छू मर्‍यो न सुधर्‍यो काजा,
मिथ्या वचन सुनतही राजा. २५
और प्रधान मुसाहिब कीनो,

छत्र रु पीनस पंषा दीनो;
बंदोबस तिन कीने अपनहु,
सुनै न राजा भर्छुहि सुपनहु. २६
सब वृत्तांत भर्छु तव सुनिके,
रूप तपास्व धर्‍यो यह गुनिके;
राजापै मुहि जान न दैहैं,
गये द्वार लग प्रानहु लैहैं. २७
अब लग सबहि पदारथ भोगे,
देह रु इंद्रिय रहे अरोगे;
तिय जो च्यारि चतुर्पद सोहत.
२१८ च्यारि फूल फल षग मन मोहत. २८

"तिय." आदि, "षग" अंत, ये दो पदके अर्थका:-

दोहा.

च्यारि चतुर्पद.

करि कर उरु मृग षुरु पुरज, केहरिसी कटि मान;
लोयन चपल तुरंगसे, बरने परम सुजान. २९

च्यारि फूल.

कमल वदन अलसी कुसुम, चिबुक चिन्ह मति धाम;
तिल प्रसूनसी नासिका, चंपक तनु अभिराम. ३०

च्यारि फल.

बिंब अधर दारिम दसन, उरज बिल्लसे धीर;
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गंभीर. ३१

च्यारि षग.

है मरालसी मंद गति, कंठ कपोत सुढार;
पिकसी बानी अति मधुर, मोर पुच्छसे बार. ३२

चौपाई.

गंग पयोनिधि कबहु न त्यागत,
जातें रसिक सु मन अनुरागत;
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई,
हन्यो सुंद जिन सो न सुहाई. ३३
मिहिंदी जावक कर पद रागा,
तिनको मैं किय निमिष न त्यागा;
और भोग तिनके उपकरना,
भोगे सबैं निकट भौ मरना. ३४
अहो मूढ को मम सम जगमैं,
भौ लंपट अबलग मैं भगमैं;
गीलो मलिन मूत्रतें निसि दिन,
स्रवत मांसमय रुधिर जु छत बिन. ३५
चर्म लपेट्यो मांस मलीना,

ऊपरि वार असुद्ध अलीना;
इनमैं कौन पदारथ सुंदर,
अति अपवित्र ग्लानिको मंदिर. ३६

तियकी जंघ जघन्य सदाही,
रंभा करि कर उपमित जाही;
आर्द्र मूतको मनु पतनारो,
रुधिर मांस त्वक अस्थि पसारो. ३७

लगत जु नीके स्थूल नितंबा,
तिनके मध्य मलिन मल बंबा;
तट ताकेतें अति दुर्गंधा,
व्है आसक्त तहां सो अंधा. ३८

अधर जु थूक लारसें भींजत,
तजि ग्लानि निज मुषमें दीजत;
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि,
सुद्ध असुद्ध विवेक दियो तजि. ३९

दृष्टमदा कहिये जाके देषतही मद चढै.

कहत नारिके अंग जु नीके,
करत विचार लगत यूं फीके;
कपट कूटको आकर नारी,
मैं जानी अब तजन विचारी. ४०

२१९ कलाकंद दधि पायस पेरा,
तंदुल घृत व्यंजन बहुतेरा;
और विविध भोजन जे कीने,
तिन सबके रसना रस लीने. ४१
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं,
यातें वृथा पोषिना ताकूं,
छुधा विनासहि बन फल कंदा,
व्है क्यूं पराधीन यह बंदा. ४२
गुहा महल बन बाग घनेरा,
क्यूं राजाको व्है हूं चेरा !
सेज सिला अरु निज भुज तकिया,
निर्झर जल कर पात्र न रुकिया. ४३
बैठी इकंत होय सुछंदा,
लहिये भर्छू परमानंदा;
बिन एकांत न आनंद कबहू,
मिलै अब्धिलौं पृथ्वी सबहू. ४४

२२० दोहा.

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवंत;
विद्यायुत तिहि भूपमें, मानुष सुषको अंत.

चौपाई.

जे मानव गंधर्व कहावत,
ता नृपतें सत गुन सुष पावत,
होत देव गंधर्व जु औरा,
तिनतें तहँ सौ गुन सुष ब्यौरा. ४६
सुष गंधर्व देवको जो है,
तातें सत गुन पितरनको है;
पुनि आजान देवमैं तिनतें,
सौ गुन कर्म देवमैं जिनतें. ४७
मुष्य देव जे हैं पुनि तिनमैं,
कर्म देवतें सौ गुन जिनमैं;
जो त्रिलोक पति इंद्र कहीजै,
तामैं पुनि सौ गुन गिनि लीजै. ४८

मुष्य देव कहिये ग्यारा रुद्र, बारा आदित, आठ वसु, ये इकतीस.

सब देवनको गुरू वृहस्पति,
लहै इंद्रतें सत गुन सुष गति;
जाको नाम प्रजापति भाषत,
गुरुतें सुष सौ गुन सो राषत. ४९
ताहूतें सौ गुन ब्रह्महि सुष,
लहै न रंचक सो कबहू दुष;

इतनें या क्रमतें सुष पावत,
तैत्तिरीय श्रुति यूं समुझावत. ५०

सोरठा.

राजातें ब्रह्मांत, कह्यो जु सुष सगरो लहै;
रहत सदा एकांत, काम दग्ध जाको न हिय. ५१

चौपाई.

रहै एकांत देसमैं अस सुष,
युवति पुत्र धन संग सदा दुष;

२२१ अथ युवति संग दुष बर्नन.

युवति कुरूप कुबोलनि जाके,
सदा सोक हिय रहै यह ताके. ५२
प्रभु पुरीष पंडा यह रंडा,
दिय मुहि कौन पापको दंडा!
बोलत बैन ब्याल कागनिके,
भेड भैंसि न्योरी नागनिके. ५३
भूतभावती ऊठनिको है,
बोल षरीको सुनि षर मोहै;
रैनि जु ऊचे स्वरहि उचारत,
स्यार हजारन सुनत पुकारत. ५४
निरपराध तिय बिन बैरागा,

तजत न बनत पाप जिय लागा;
रहत दुषित यूं निसि दिन पिय मन,
तिय कुबोल सुनि लषि कुरूप तन. ५५
कामनि व्है जु सुरूप सुबानी,
सो कुरूपतें व्है दुष दानी;
चमक चामकी पियहि पियारी,
अर्थ धर्म नसि मोछ बिगारी. ५६

२२२

अथ धन बिगार.

मीठे बैन जहर युत लडवा,
षाय गमाय बुद्धि व्है भडवा;
और कछू सुपनहु नहि देषै,
काम अंध इक कामनि लेषै. ५७
धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं,
सो सब षरचै कामनि धरमैं;
भूषन वस्त्र ताहि पहिरावै,
गुरु पितु मात यादिहु न आवै. ५८
पायस पान मिठाई मेवा,
देय भक्तितें तिय निज देवा;
नेह नाथ नाथ्यो नहि छूटै,
तिय कृसान पिय बैलहि कूटै. ५९

२२३ ## अथ धर्म बिगार.

ज्यूं सूवा पिंजरेमैं बंधुवा,
सिषयो बोलत सुद्ध असुद्धवा;
तैसे जो कछु नारि सिषावत,
सो गुरु पितु मातही सुनावत. ६०
जैसे मोर मोरनी आगे,
नाचि रिझाय आप अनुरागै;
तैसे विविध वेष करि तियको,
मन रिझाय रीझत मन पियको. ६१
जब दुहूनको मन अनुराग्यो,
तबहि मदन मदिरा मद जाग्यो,
भये बावरे वसनहु त्यागे,
अति उन्मत घूरन पुनि लागे. ६२
प्रेत रूप धरि नग्न अमंगल,
भिरि फिरि भिरत मेष मन दंगल;
ज्यूं लोटत मद्यपि मतवारो,
गिनत मलीन गलीन न नारो. ६३
त्यूं नर नारिं मदन मद अंधे,
अति गलीन अंगनसें बंधे;
करत मदन मद भ्रम जे मनकूं,

ऱ्है अचरज सुनि त्यागी जनकूं. ६४

नसै मदन मदतें मति नरकी,
लषत न ऊंच नीच पर घरकी;
तियहु बावरी मदन बनाई,
क्रिया दुषद जिहि ऱ्है सुषदाई. ६५

प्रबल काम मदिरा मद जागै,
तब द्विज तिय धानकतें लागै;
पियें मदन मदिरा नर नारी,
ऐसे करत अनंत षुवारी. ६६

काम दोष यूं नरहि बिगोवत,
सो प्रकट सुंदरी तिय जोवत;
यातें अति सुरूप तिय दुषदा,
ताको त्याग कहत मुनि सुषदा. ६७

जो सुरूप तियमैं अनुरागत,
विषसमै दुषद पेषि नहि भागत;
उभय लोककी करत सु हानी,
मुनि जन गन गुन साष बषानी. ६८

२२४ जो नाना विध भोजन षावै,
रस ताको फल बिंदु उपावै;
जीवन बिंदु अधीन सबनको,

नसत सोक बिंदुहुतें मनको. ६९
व्है जब जनको मन मलवासी,
करत सोक अति धरत उदासी,
रुधिर निवास धरत मन जबहू,
चंचल अधिक रजोगुन तबहू; ७०
जब मन करत बिंदुमैं वासा,
तबैं सोक चंचलता नासा;
पुनि आपहि बलवत जन जानैं,
व्है प्रसन्न सुभ कारज ठानैं. ७१
बिंदु अधिक होवै जा जनमैं,
सुंदर कांतिरूप ता तनमैं;
बिंदुहुको तनमैं उजियारो,
नसै बिंदु तन मनु हतियारो. ७२
जाको बिंदु न कबहू नासै,
बलिन पलित तिहि तन प्रकासै;
योगी करत षेचरी मुद्रा,
तातें बिंदु राषि व्है भद्रा. ७३
अष्ट सिद्धि जे धारत योगी,
बिंदु षसै हारत ते भोगी;
अस अति उत्तम बिंदु जु जगमें,

तिहिं तिय छीनि लेत निज भगमैं. ७४
ज्यूं किसान वेलनमैं ऊषहि,
पीरत लेत निचोरि पियूषहि;
बार बार वेलनमैं धारहि,
व्है असार दथ्था तब जारहि. ७५

हलकी बाथ गंडेकी बंधी हुई वेलनमें देवै, ताका नाम दथ्था पंजाबमें प्रसिद्ध है.

त्यूं तिय भींचि भुजनमैं पीकूं,
भरत योनि घट षीचि अमीकूं;
पुनि पुनि करत क्रिया नित तौलौं.
सेष विंदुको बिंदुत जौलौं. ७६
कियो असार नारि नर देहा,
षीच फुलेल फूल ज्यूं षेहा,
भौ अकाम सब ताहि जरावै,
सूके बैंन मुरार लगावै. ७७
व्है जु सुरूप जोर धन भारी,
ता नरपैं नारी बलिहारी!
करि सुरूप धन बलको अंता,
कहत ताहि तूं काको कंता? ७८
तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी,

कर धरपैं धरतहु दे गारी;
नाक चढाय आंषिहू मीरै,
जाय न पति सैजहुके धेरै. ७९
कोटि वज्र संघात जु करियें,
सबको सार षीचि इक धरियें;
तियके हिय सम सो न कठोरा,
रिषि मुनि गन यह देत ढंढोरा. ८०
करत गुमान हटत तिय ज्यूं ज्यूं;
चिपटत सठ मति जन मन त्यूं त्यूं;
कबहुक ताको बांछित करिके,
मरन अंत छोडत न पकरिके. ८१
पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता,
तर्क निपुन पुनि किनहू न जीता;
करत अधीन ताहि तिय ऐसे,
बाजीगर बंदरकूं जैसे. ८२
सब कछु मन भावत करवावत,
पढे पसुहि भल भांति नचावत;
उक्ति युक्ति सब तबही विसरै,
जब पंडित पढि तियपैं ढिसरैं. ८३
जब कबहू सुमरत यह वेदा,

तब तियमैं मानत कछु षेदा;
तिहिं त्यागनकी इछा धारै,
पुनि तिय नैन सैन सर सारै. ८४

जंहर कटाछ नैन सर वोरै,
तानि कमान भौंह जुग जोरै;
मारत सारत हिय सव जनकों,
विज्ञहु वचत न धन सठ गनको. ८५

विज्ञ कहिये विद्वानहु न बचत, सठ गनको धन कहिये कहा चीज.

भयो न तियमैं तीव्र विरागा,
यूं मति मंद करत पुनि रागा;
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर,
हुकम करै बैठी मनु ठाकर. ८६

जे नर नार नयन सर वींधे,
तिनके हिये होत नहि सीधे;
भलो बुरो सुष दुष सब विसरत,
ते कैसे भव दुषतें निसरत! ८७

नारि बुरी वेस्या अरु परकी,
तीजी नरक निसानी घरकी;
तजत विवेकी तिहुमैं नेहा,
करै नेह तिह सठ मुष षेहा. ८८

दोहा.

अर्थ धर्म अरु मोछकूं, नारि बिगारत ऐन;
सब अनर्थको मूल लषि, तजै ताहि व्है चैन. ८९

२२५ पुत्र सदा दुष देत यूं, विन प्राप्ति दुष एक;
गर्भ समय दुष जन्म दुष, मरै तु दुःष अनेक. ९०

चौपाई.

गर्भ धरत जौ लौं नहि नारी,
दुष दंपति मन तौ लौं भारी;
व्है जु गर्भ यह चित न नासै,
पुत्री होय कि पुत्र प्रकासै ? ९१

गर्भ गिरनके हेतु अनंता,
तिनतें डरत करत अति चिंता;
व्है जु पूत नव मास विहानै,
जननी जनक अधिक दुष सानै. ९२

नव ग्रहमैं इक है नहि विगरै,
अस जन को जन्म न जग सगरै;
विगरे ग्रहकी निसि दिन चिंता,
करत मात पितु बैठि इकंता. ९३

सिसु उदास व्है जब तिजि षोवा,
तब दोऊ मिलि लागत रोवा;

यूं चिंतत कछु गये महीने,
दांत पूतके निकसे झीने. १४
मरत बाल बहु निकसत दंता,
तब यह चिंता दुष तिय कंता;
जिये दूबरो दुषतें वारो,
देषि चुहारो धरत उतारो. १५
म्लेछ चमार चूहरे कोरी,
तिनतें झरवावत द्विज धोरी;
सइयद ष्वाजा पीर फकीरा,
धोकत जोरत हाथ अधीरा. १६
जाकूं हिंदु कबहु नहि मानै,
पुत्र हेतु तिहि इष्ट पिछानै;
भैरो भूत मनावत नाना,
धरत सिवा बल भूमि मसाना. १७
धानकको डमरू घरि बाजै,
कर जोरत पूजत नहि लाजै;
और जंत्र तावीज घनेरे,
लिषि मढवाय पूंत गर गेरे. १८
निज कुलमें इक अच्युत पूजा,
किनहु न सुपनहु सुमऱ्यो दूजा;

सो कुल नेम पूत हित त्याग्यो,
व्यभिचारन ज्यूं जहँ तहँ लाग्यो. ९९
होत सीतलाको जब निकसन,
नसत मात पितु मनको विकसन;
स्वान क्रिया तजि रहत मलीना,
परम देव गदहाकूं कीना. १००
मोरि वाग बकसहु सिसु मोरा,
गदहा मात चराऊं तोरा;
यूं कहि चना गोदमें धारै,
विनती करि गदहाकूं चारै. १०१
अस अनंत दुषतें सिसु पारन,
जुवा होतलौं और हजारन;
उमर पूतकी व्है जो थोरी,
मरिहै करहु उपाय करोरी. १०२
मरै मात पित कूटहि माथा,
मानि आपकूं दीन अनाथा;
हाय हाय करि निस दिन रोवै,
करि धिक धिक निज जन्म विगोवै. १०३
पूत मरनको व्है दुष जैसो,
लषत सपूत अपूत न तैसो;

जो जीवै तौ होतहि तरुना,
लगत नारिके पोषन भरना. १०४

सपूत कहिये जाका पूत जीवै है, औ **अपूत** कहिये जाके पूत नही हुआ.

जिन अनेक यत्नानि प्रतिपारौ,
तिनकूं जल प्यावन है भारौ;
रजनि सैजपैं सिषवै नारी,
तव पित मात देहु मुहि गारी. १०५
व्है सुपूत तौ प्रातहि उठिके,
नवै दूरतें माथ न गठिके;
चहै मात पित आवैं नेरे,
पूत न सन्मुष आषिहु हेरे. १०६
व्है कुपूत तौ उठतहि प्राता,
वचन गारि सम बकि असुहाता;
जुदौ होय ले सब घरको धन,
दे पित मातहि इक तिनको तन. १०७
फेरि संभारत कबहु न तिनकूं,
पोषत सब दिन तिय निज तनकूं;
देषि लेत पित मात उसासा,
या विधि पुत्र सदा दुष रासा. १०८

दोहा.

करि विचार यूं देषियें, पुत्र सदा दुष रूप;
सुष चाहत जे पूततें, ते मूढनके भूप. १०९

२२६ तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुषमैं धूर;
धन जोरन रछा करन, षरच नास दुष मूर. ११०

चौपाई.

जो चाहै माया बहु जोरी,
करै अनर्थ सु लाष करोरी;
जाति धर्म कुल धर्म सु त्यागै,
जो धनकूं जोरन जन लागै. १११
बिना भाग तदपि न धन जुरि हैं,
जुरै तु रछा करि करि मरि हैं;
षरचत धन घटि है यह चिंता,
नासै निसि दिन ताप अनंता. ११२
सदा करत यूं दुष धन मनकूं,
चहै ताहि धिक धिक तिहि जनकूं;
युवति पूत धन लषि दुष दाता,
तज्यो भछुं मंमताको नाता. ११३

२२७ **कुंडलियाछंद.**

भछूं वन एकांतमैं, गयो कियो चित सांत ;

भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकल वृत्तांत ;
सुन्यो सकल वृत्तांत, चित यह उपजी ताके ;
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ;
तौ झूठे हम होहि, भूप दे सबकूं दंडा ;
यातें अब मिलि कहौ, भर्छु भौ प्रेत प्रचंडा. ११४

दोहा.

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच ;
सबहि कही यह भूपतें, भर्छु प्रेत भौ नीच. ११५
राख लगाये देहमैं, मिलै जाहि बतरात ;
तिहि मारत सो नर बचत, जो तिहि देषि परात. ११६

परात कहिये भाग जावै.

सुनि भूपह निश्चय कियो, भर्छु मरी भौ प्रेत ;
साच झूठ भूप न लषत, व्है जु प्रमाद अचेत. ११७
कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो सिकार ;
पैठ्यो गिरि वन सघनमैं, जहँ मृग राज हजार. ११८
तपत तहां इक तरु तरे, भर्छू निज दीवान ;
पेषि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुषदान. ११९

२२८ इंदव छंद.

भर्छु मर्‍यो रु परेत भयो यह,
वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना ;

देषि लियो निज आषिन जीवत,
तौहु परेत हु मानि भगाना ;
वंचकतें सुनि द्वैत तथा मतिमें,
विसवास करै जु अजाना ;
ब्रह्म अद्वैत लषै परतछहु,
तौहु न ताहि हिये ठहराना. १२०

दोहा.

भेद वचन विस्वास करि, सुनत जु कोउ अजान ;
सो जन दुष भुगतें सदा, व्है न ब्रह्मको ज्ञान. १२१
यातें सुनै जु भेदके, वचन लषै सु असत्य ;
तवही ताकूं ज्ञान व्है, महावाक्यतें सत्य. १२२

चौपाई.

सिष तैं सुनी जु भेद कहानी,
जानि झूठ ते नरक निसानी ;
तिनके कहनहार सब झूठे,
पुरुषारथ सुषतें सठ रूठे. १२३
तिनको संग न कबहू कीजै,
व्है जो संग न वचन सुनीजै ;
जो कहु सुनै तु सुनतहि त्यागहु,
म्लेछ जैन वच सम लषि भागहु. १२४

२२९ जो मिथ्या है दैसिक वेदा,
कैसे करही भवदुष छेदा !
याको अव उत्तर सुनि लीजै,
मिथ्या दुष मिथ्यातें छीजै. १२५
वेद रु गुरू सत्य जो होवै,
तौ मिथ्या भवदुष नहि षोवै;
यामैं इक दृष्टांत सुनाऊं,
जातें तव संदेह नसाऊं. १२६
सुरपति इंद्र स्वर्गमैं जैसो,
प्रबल प्रताप भूप इक ऐसो;
भीम समान सूर बहुतेरे,
तिनके चहुधा डेरे गेरे. १२७
जोधा ले निज निज हथियारन,
षरे रहे तिहि द्वार हजारन ;
अंदिर मंदिर ड्योढी ठाढे,
लिये षडग कोसनतें काढे. १२८

कोस कहीये म्यान.

उंचो महल अटारी जामैं,
फूल सेज सोवै नृप तामैं;
पंछी हू पौचन नहि पावै,

तहां और कैसे चलि जावै? १२९
तहां भूप देष्यो अस सुपना,
पकर्‍यो पैर गादरी अपना;
भूप छुडायो चाहत निज पग,
तजत न गादरि पकरि जु पग रग. १३०
तब राजा यूं परो पुकारि,
है को अस जो गादरि मारि;
जोधा जो ठाढे निज द्वारा,
तिन रंचकहु न दियो सहारा. १३१
तब नृप दंड लियो निज करमैं,
आपुहि मार्‍यो स्यारनि सिरमैं;
लगत दंड भौ ताको अंता,
तब निसरे पग रगतें दंता. १३२
दांत लगे गाढे नृप पगमैं,
यूं लंगरात सु चालत मगमैं;
तब चाल्यो ले लाठी करमैं,
पहुच्यो घावरियाके घरमैं. १३३
ताहि कह्यो फोहा अस दीजै,
घाव पावको तुरत भरीजै;
घावरिया नृपतें यह भाष्यो,

फोहा नहि तयार घर राष्यो. १३४
जो तूं दे पैसा इक मोकूं,
तौ तयारकरि देहूं तोकूं;
तब उलट्यो नृप लाठी टेका,
नही देनकूं कौडिहु एका. १३५
लाग्यो सोच करन टरि घरतें,
दूजै बात कौन विन जरतें!
जो मैं होत धनी बड भागा,
आवतु घर धावरिया भागा. १३६
मोहि निकंमा जानि कंगाला,
घरतें तुरत रोग ज्यूं टाला;
याहीकूं कछु दोष न दीजै,
बिन स्वारथको किहि न पतीजै. १३७
मात पिता बांधव सुत नारी,
करत प्यार स्वारथतें भारी;
जो नहि स्वारथ सिद्धी पावै,
तौ इनकूं देष्यो हु न भावै. १३८
जाबिन घरी एक नहि रहते,
दुष अपार बिछुरे सब लहते;
जब देषै आयो घर पौरी,

घरके मिलत भाजि भरि कौरी. १३९
विधि अधीन कोढी सो होवै,
सब अंगनिमैं पानी चोवै;
अरु जरि परी आंगुरी जाके,
भिनभिनात मुष माषी ताके. १४०
कहत ताहि ते घरके प्यारे,
मरि पापी अब तौ हतियारे;
जिहि देषत अंषिया न अघानी,
तिहि लषि ग्लानि वमन ज्यूं आनी. १४१
जो तिय हिय लागत पति प्यारो,
किय न चहत पल उरतें न्यारो;
ताकी पवन बचायो लौरे,
भिरै जु वसन तु नाक सकौरे. १४२
जिहि पितु मात गोदमैं लेते,
सकुचत तिहि करते कछु देते;
मिलत भ्रात जो भरि भुज कोरी,
सो बतरात बीच दे डोरी. १४३
ऐसे जग स्वारथको सारो,
बिन स्वारथ को काको प्यारो;
मुहि स्वारथ योग्य न विधि कीनो,

यातें इन फोहा नहि दीनो. १४४
यूं चिंतत इक मुनि तिहिं भेट्यो,
तिन दे जरी घाव दुष मेट्यो;
निद्रातें जाग्यो नृप जबही,
घाव दरद मुनि नासै तबही. १४५
सिष यह तुहि दृष्टांत प्रकास्यो,
लषि मिथ्यातें मिथ्या नास्यो;
मिथ्या दुष देष्यो जब राजा,
साच समाज न किय कछु काजा. १४६

२३० टीका:–सर्व प्रकरनका अर्थ स्पष्ट. भाव यह है:– संसाररूप दुष मिथ्या है, यातें तिसके दूरि करनेके साधन वेद गुरु मिथ्या ही चाहिये है. मिथ्याके नासमैं सत्य साधनकी अपेक्षा नहीं. औ सत्य साधन होवै, तौ तिनतें मिथ्याका नास होवै नहीं; जैसे राजाके समीप मिथ्या गादरी स्वप्नमें पहुची, किसी सत्य जोधासें रुकी नहीं; औ राजा पुकार्‍यो, जब काहूसैं बी मरी नहीं; औ राजाके पास अनेक साचे सस्त्र धरे रहे, तौ बी मिथ्या दंडसैं मरी. औ राजाके मिथ्या घाव भया, तब कोई वैद्य जराह साचा पाया नहीं. मिथ्या जराहके पास गया; तानें पैसा माग्या, तौ अनंत षजाने साचे धरेही रहे, एक पैसा बी राजाकूं मिल्या नहीं. कोई बी सत्य साधन राजाके दुषके नास करनेमें समर्थ हुआ नहीं; किंतु मिथ्या मुनिनें मिथ्या जरी देके मिथ्या दुषका नास किया; इस रीतिकें स्वप्न सर्वकूं अनुभव सिद्ध हैं. जागृत पदार्थका स्वप्नमैं काहूकूं कदै बी उपयोग होवै नहीं.

तैसे **मिथ्या जो संसार दुष, ताका नास मिथ्या वेद गुरुसें होवै है.** साचे वेद गुरु अपेछित नही.

२३१ जैसे मरुथलके मिथ्या जलतें तृषाका नास होवै नहीं, तैसे मिथ्या वेद गुरुतें संसार दुषका नास होवै नही; औ मिथ्या वेद गुरु मानिके संसार दुषका तिनतें नास अंगीकार करौगे, तौ मरु भूमिके जलतें बी तृषाका नास हुया चाहिये. यह संका सिष्यने करीथी.

ताका समाधान.

चौपाई.

यद्यपि मिथ्या मरुथल पानी,
तातें किनहु न प्यास बुझानी;
तदपि विषम दृष्टांत सु तेरो,
सत्ता भेद दुहनमैं हेरो. १४७

टीका:— यद्यपि मिथ्या जो मरु भूमिका पानी, तातें किसीने प्यास नही बुझाई; औ मिथ्या गुरु वेदतें दुषके नासकी न्याई मिथ्या जलसें प्यासका नास हुवा चाहिये; औ प्यास नास होवै नही, तैसे मिथ्या गुरु वेदतें संसारका नास बनै नही; **तदपि** कहिये तौबी तेरा दृष्टांत विषम है. काहेतें, दुहुनमें कहिये मरुथलका जल औ प्यास इन दोनूंमें सत्ताका भेद है. ताकूं **हेरो** कहिये देषो. १४७

२३२

चौपाई.

सम सत्ता भव दुष गुरु वेदा,
यूं गुरु वेद करत भव छेदा;

आपसमैं सम सत्ता जिनकी,
लषि साधक बाधकता तिनकी. १४८

टीकाः– भव दुष औ गुरु वेदकी **सम सत्ता** कहिये एक सत्ता है; यातें गुरु वेदतें भव दुषका छेद होवै है. जिनकी आपसमें सम सत्ता होवै, तिनकी आपसमैं साधकता औ बाधकता होवै है ; जैसे मृत्तिका औ घटकी सम सत्ता है, यातें मृत्तिका घटका साधक है; अग्नि औ काष्ठकी सम सत्ता है, ताहां अग्नि काष्ठका बाधक है. **साधक** कहिये कारन, औ **बाधक** कहिये नासक. मरुथलके जलकी औ प्यासकी सम सत्ता नही, यातें मरुथलका जल प्यासका बाधक नही. या स्थानमैं यह रहस्य है:– **चेतनमैं परमार्थ सत्ता है,** औ चेतनसें भिन्न जो मिथ्या पदार्थ, तिनमें दो प्रकारकी सत्ता हैं:– एक तौ **व्यवहार सत्ता है,** औ दूसरी **प्रतिभास सत्ता है.**

२३३ जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान बिना बाध होवै नही, किंतु ब्रह्मज्ञानसेंही बाध होवै, ता पदार्थमें **व्यवहार सत्ता** कहिये है. सो व्यवहार सत्ता ईश्वर सृष्टिमैं है; काहेतें, देह इंद्रियादिक प्रपंच जो **ईश्वर सृष्टी,** ताका ब्रह्मज्ञानसें बिना बाध होवै नही. ब्रह्मज्ञानसैंही बाध होवै है. **यद्यपि** ईश्वर सृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसें बिना नास तौ होवै बी है, परंतु ब्रह्मज्ञानसें बिना बाध होवै नही. अपरोछ मिथ्या निश्चयका नाम **बाध है.** सो अपरोछ मिथ्या निश्चय ईस्वर सृष्टिके पदार्थनमैं ब्रह्मज्ञानसें प्रथम किसीकूं होवै नही ; ब्रह्मज्ञानसें अनंतरही होवै है. यातें मूल अविद्याके कार्य जो जागृतके पदार्थ ; ईस्वर सृष्टि, तामैं **व्यवहार सत्ता** है. जन्म, मरन, बंध, मोछ आदिक व्यवहारके सिद्ध कर-

नेवाली जो **सत्ता** कहिये होना, सो **व्यवहार सत्ता** कहिये है.

२३४ औ ब्रह्मज्ञानसें बिनाही जिनका बाध होवै, तिन पदार्थनमें **प्रतिभास** सत्ता कहिये है. जैसे ब्रह्मज्ञानसें बिनाही सुक्ति, जेवरी, मरुथल, आदिकनके ज्ञानतें, रूपा, सर्प, जल, आदिकनका बाध होवै है. तिनमें **प्रातिभास सत्ता है. प्रतिभास** कहिये प्रतीति मात्र जो **सत्ता** कहिये होना, सो प्रतिभास सत्ता कहिये है. तूल अविद्याके कार्य, रूपा आदिक पदार्थनका प्रतीति मात्र ही होना है. यातें तिनकी **प्रतिभास सत्ता है.**

२३५ जाका तीन कालमें बाध होवै नही, ताकी **परमार्थ सत्ता** कहिये है. चेतनका बाध कदै होवै नही. यातें **परमार्थ सत्ता चेतनकी है.**

२३६ इस रीतिसें वेद गुरु औ संसार दुष, इनकी एक व्यवहार सत्ता होनेतें आपसमें सम सत्ता है. यातें **मिथ्या वेद गुरुतें मिथ्या भव दुषका नास बनै है.** औ छुधा पिपासा प्रानके धर्म हैं, प्रान औ ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसें विना बाध होवै नही, यातें पिपासाकी व्यवहार सत्ता है ; मरुथलके जलका ब्रह्मज्ञानसें विनाही मरुथलके ज्ञानतें बाध होनेतें मरुथलके जलकी प्रातिभास सत्ता है. यातें **प्यास औ मरुथलके जलकी सम सत्ता नही** होनेतें, ता जलतें प्यासका नास होवै नही. याप्रकारतें दृष्टांत विषे बाधक वेद गुरु, औ बाध्य संसार दुष, तिनकी सत्ता एक है, औ दृष्टांत विषे जल, औ प्यासकी सत्ताका भेद है, यातें दृष्टांत **विषम** कहिये दार्ष्टांतके सम नही. १४८

२३७ **संका.**

चौपाई.

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाषी,

तिनको भेद हेतु किहि राषी ?
उपज्यो यह मोकूं संदेहा,
प्रभु ताको अब कीजे छेहा. १४९

टीका:— हे प्रभु, ब्रह्मसें भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहो हो; तिन मिथ्या पदार्थमें सुक्ति रूपा रज्जु सर्प मरुथल जल आदिकन का ब्रह्मज्ञानसें बिनाही बाध, औ संसार दुषका ब्रह्मज्ञानसें अनंत र बाध, यह भेद कौन हेतुसें राषी हो ? १४९

२३८

उत्तर.

चौपाई.

सकल अविद्या कारज मिथ्या,
सिष तामें रंचकहु न तथ्या;
जा अज्ञानसें उपजत जोई,
ताके ज्ञान बाध तिहि होई. १५०

टीका:— हे सिष्य, यद्यपि ब्रह्मसें भिन्न सकल अविद्याका कार्य है, यातें मिथ्या है; तामें रंचक बी तथ्या कहिये सत्य नही; परंतु जाके अज्ञानसें जो उपजै है, ताके ज्ञानसें तिसका बाध होवै है. सुक्ति रज्जु मरुथल आदिकनके अज्ञानतें, रूपा सर्प जल आदि उपजै है; तिनका बाध सुक्ति रज्जु मरुथल आदिकनके ज्ञानतें होवै है; औ ब्रह्मके अज्ञानसें जो जन्म मरनादिक संसार दुष उपजै है, ताका बाध ब्रह्मज्ञानतें होवै है. १५०

२३९ **सिष्यउवाच.**

दोहा.

भगवन् ब्रह्म अज्ञानतें, जो उपजै संसार;
सो किहि क्रमतें होत है, कहौ मोहि निरधार. १५१

अर्थ स्पष्ट. १५१.

२४० **श्रीगुरुरुवाच.**

चौपाई.

जैसे स्वप्न होत विन क्रमतें,
त्यूं मिथ्या जग भासत भ्रमतें;
जो ताको क्रम जान्यो लौरै,
सो मरु थल जल वसन निचौरै. १५२

अर्थ स्पष्ट. १५२

दोहा.

उपनिषदनमैं बहुत विधि, जग उत्पत्ति प्रकार;
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार. १५३

टीका:— **यद्यपि** उपनिषदनमें जगतकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसें कही है, **छांदोग्यमें** तौ सतरूप परमात्मातें अग्नि, जल, पृथवी, क्रमतें उपजे हैं, यह कह्या है. औ **तैत्तिरीयमें** आकास, वायु अग्नि, जल, पृथिवी, क्रमतें होवै हैं. इस रीतिसें पांच भूतकी उत्पत्ति कही है. औ कहूं सर्वकी परमेस्वर उत्पत्ति करै है; इस रीतिसें क्रमसें बिनाही उत्पत्ति कही है. ऐसे जगतकी उत्पत्ति

वेदमें अनेक प्रकारसें कही है. तहां **वेदका यह अभिप्राय है**:—जगत मिथ्या है, जो जगत कछु पदार्थ होता, तौ ताकी उत्पत्ति, अनेक प्रकारसें वेद नही कहता. अनेक प्रकारसें जगतकी उत्पत्ति कही है. यातें **जगतकी उत्पत्ति प्रतिपादनमें वेदका अभिप्राय नही.** किंतु अद्वैत ब्रह्म लषावनेकूं जगतके निषेध करने वास्ते मिथ्या जगतका किसी रीतिसें आरोप किया है. **दृष्टांत**:— जैसे विनोदके निमित्त दारूका हस्ती उडावनेकूं बनावै है, ताके कान पूछ टेढे होवैं, तो सूधे करने वास्ते यत्न नही करते. तैसे अद्वैत ज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. यातें वेदने प्रपंचकी उत्पत्ति क्रम, एकरूप कहनेमें यत्न नहि किया. प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसें वेदने नही कही. यातें यह जानै है:— **वेदका अभिप्राय प्रपंच निषेधनमें है.** ताकी उत्पत्तिमें अभिप्राय नही.

२४१ और **सूत्रकार भाष्यकारने** द्वितीय आध्यायमें उत्पत्ति कहने वाले श्रुतिवचनका विरोध दूरि करिके जो एकरूपसें **तैत्तिरीय श्रुतिके** अनुसार, उत्पत्तिमें सर्व उपनिषदनका अभिप्राय कह्या है, सो मंद जिज्ञासुके निमित्त कह्या है. जो उत्पत्ति वाक्यनके पूर्व कह अभिप्रायकूं नही जानै, ता मंद जिज्ञासुकूं उपनिषदनमें नाना प्रकारसें जगतकी उत्पत्ति देषिके आपसमें उपनिषदनका विरोध है; यह भ्रांति होय जावैगी. ताके दूरि करनेकूं सर्व उपनिषदनमें एकरूपसें जगतकी उत्पत्ति प्रतिपादनका प्रकार कह्या है. औ जाकूं ब्रह्म विंचारसें यथार्थ ज्ञान नही होवै, ताकूं लय चिंतनके निमित्त बी उत्पत्ति क्रम कह्या है. जा क्रमतें उत्पत्ति कही है; तासें विपरीत क्रमतें लय चिंतन करै. ता लय चिंतनसें अद्वैतमें बुद्धि स्थित होवै है. सो लय चिंतनका प्रकार

पंचीकरनमें वार्तिककार सुरेसुराचार्यनें कह्या है. यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है. यातें जगतकी उत्पत्ति औ लयका प्रकार नही लिख्या. औ सागर रूप है, यातें संछेपतें दिषावे है. सुद्ध ब्रह्म सें जगतकी उत्पत्ति होवै नही. काहेतें, सुद्ध ब्रह्म असंग है, औ अक्रिय है; किंतु माया विसिष्ट जो ईस्वर, तासें जंगतकी उत्पत्ति होवै है. यातें **माया औ ईस्वरका स्वरूप प्रतिपादन करै हैं.** १९३

२४२ **कवित्व.**

जीव ईस भेद हीन चेतन स्वरूप मांहि,
माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये;
सत औ असततें विलछन स्वरूप ताके,
ताहिकूं अविद्या औ अज्ञानहू वषानिये;
चेतन सामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमें आरूढ वा विरोधी वृत्ति जानिये;
मायामें आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईस सरवज्ञ जग हेतु पहिचानिये. १९४

टीका.—जीव ईस्वर भेद रहित जो सुद्ध चेतन ताके आश्रित माया है. सो माया **अनादि** कहिये आदि रहित है. **आदि** नाम उत्पत्तिका है. जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ मायाके कार्य प्रपंचसें तौ पुत्रसें पिताकी न्याई मायाकी उत्पत्ति बनै नही. चेतनसेंही मायाकी उत्पत्ति माननी होवैगी. तहां जीव भाव औ ईस्वर भाव तौ मायाके कार्य हैं, मायाकी सिद्धि हुए बिना जीव ईस्वरका स्वरूप असिद्ध है. यातें जीव चेतन वा ईस्वर चेतनसें मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. औ सुद्ध चेतन असंग है,

अक्रिय है, निर्विकार है; तातें मायाकी उत्पत्ति माने विकारी होवै-गा. औ सुद्ध चेतनसें मायाकी उत्पत्ति होवै तौ मोक्ष दसा विषे माया फेरि उपजैगी. यातें मोक्ष निमित्त साधन निष्फल होवैंगे. इस रीतिसें माया उत्पत्ति रहित है; यातें अनादि है; औ एक है, **सांत** कहिये अंतवाली है. ज्ञानतें मायाका अंत होवै है. औ सत असतसें विलक्षन है. जाका तीनि कालमें बाध होवै नही, सो **सत** कहिये है. ऐसा चेतन है. मायाका ज्ञानतें बाध होवै है. यातें सतसें विलक्षन है. जाकी तीनि कालमें प्रतीति होवै नही, सो ससशृंग, वंध्यापुत्र, आकासफूल, आदिक **असत** कहिये है. ज्ञानसें पूर्व माया औ ताका कार्य प्रतीत होवै है. जागृत विषे "मैं अज्ञानी हूं, ब्रह्मकूं नही जानूं हूं" इस रीतिसें माया प्रतीत होवै है, औ स्वप्नके विषे जो नाना पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनका उपादान कारन माया है.

औ सुषुप्तिसें अनंतर अज्ञानकी इस रीतिसें स्मृति होवै है, "मैं सुखसें सोया, कछु बी न जानता भया." सो स्मृति अज्ञात वस्तुकी होवै नही, यातें सुषुप्तिमें अज्ञानका भान होवै है. सो अज्ञान औ माया एकही है; तिनका भेद नही. या प्रकारतें **तीनूं अवस्थाविषे मायाकी प्रतीति होवै है;** यातें असतसें विलक्षन है. इस रीतिसें सत असतसें विलक्षन जो माया, ताका कार्य बी सत असतसें विलक्षन है. सत असतसें विलक्षनकूंही अद्वैत मतमें **मिथ्या** कहै हैं; औ **अनिर्वचनिय** कहै हैं. यातें माया औ ताके कार्यतें द्वैतकी सिद्धि होवै नही. काहेतें, जैसे चेतन सतरूप है, तैसे माया औ ताका कार्य सतरूप होवै तौ द्वैत होवै; सो माया औ ताका कार्य सत असतसें विलक्षन होनेतें मिथ्या है. मिथ्या पदार्थसें द्वैत होवै

नही. जैसे स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं, तिनतें द्वैत होवै नही.

२४३ जीव ईस्वर विभाग रहित सुद्ध ब्रह्मके आश्रित माया है; औ सुद्ध ब्रह्मकूंही आच्छादन करै है. जैसे गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आच्छादन करै है. या पक्षकूं **स्वाश्रय स्वविषय पक्ष** कहे हैं. **स्व** कहिये सुद्ध ब्रह्मही आश्रय, औ **स्व** कहिये सुद्ध ब्रह्मही **विषय** कहिये मायातें आच्छादित है. अर्थ यह:— ढक्या है. संक्षेप सारीरक, विवरन, वेदांत मुक्तावली, अद्वैत सिद्धि, अद्वैत दीपिका, आदिक ग्रंथकारोंने स्वाश्रय स्वविषय ही अज्ञान अंगीकार किया है.

२४४ औ **वाचस्पतिका यह मत है**:— अज्ञान जीवके आश्रित है, औ ब्रह्मकूं विषय करै है. "मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नही जानूं हूं" या प्रतीतिसे "मैं" सब्दका अर्थ जीव, अज्ञानी कहनेतें अज्ञानका आश्रय भान होवै है. औ "ब्रह्मकूं नही जानूं हूं" यातें अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत होवै है. इस रीतिसें अज्ञान जीवके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करै है. सो अज्ञान एक नही, किंतु अनंत हैं; काहेतें जो एक अज्ञान मानैं, तौ एक अज्ञानकी एकके ज्ञानतें निवृत्ति हुयेतें औरनकूं अज्ञान औ ताका कार्य संसार प्रतीत नही हुवा चाहिये. जो ऐसे कहैं, आजतांरी किसीकूं ज्ञान हुवा नही. तौ आगेबी किसीकूं ज्ञान नही होवैगा. यातें श्रवनादिक साधन निष्फल होवैंगे. यातें अनंत जीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं, अनंत जीवनके अनंत अज्ञान कल्पित, ईस्वर अनंत औ ब्रह्मांड अनंत; जा जीवकूं ज्ञान होवै, ताका अज्ञान ईस्वर ब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है. जाकूं ज्ञान नही होवै, ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है, सो समीचीन नही, काहेतें,

२४५ "ईस्वर जीवके अज्ञानसें कल्पित है." यह कहना श्रुति स्मृति पुरानतें विरुद्ध है. ईस्वर अनंत, औ जीव जीवमें सृष्टिका भेद, यह बी विरुद्ध है. यातें **नाना अज्ञान माननें असंगत है.** औ नाना अज्ञान मानिकें ईस्वर औ सृष्टि एक मानैं, तौ बनै नंही. काहेतें, जीव ईस्वर प्रपंच अज्ञान कल्पित है. अनंत अज्ञान मानेतें, एक एक अज्ञान कल्पित जीवकी न्याई ईस्वर औ प्रपंच बी अनंत ही होवैंगे. याहीतें वाचस्पतिनें अनंत ईस्वर औ अनंत सृष्टि कही है. यातें अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

२४६ सो एक अज्ञान बी जीवके आश्रित नहीं; किंतु सुद्ध ब्रह्मके आश्रित है. काहेतें, जीव भाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कदै बी रहै नही. यातें निराश्रय अज्ञानसे तौ जीव भाव बनै नही. प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवै, तब अज्ञानका कार्य जीव भाव होवै. जीवपनेकी न्याई ईस्वरता बी अज्ञानका कार्य है. ताके आश्रित बी अज्ञान नही. किंतु **सुद्ध ब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है.** अनादि जो चेतन औ अज्ञान तिनका संबंध बी अनादि; चेतन अज्ञानके अनादि संबंधसें जीवभाव ईस्वरभाव बी अनादि है. परंतु जीव भाव औ ईस्वर भाव अज्ञानके आधीन है. यातें अज्ञानका कार्य कहिये है. यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसें जीवके आश्रित अज्ञान, प्रतीत होवै है. तथापि सुद्ध ब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवै है. औ जीव अज्ञानका कार्य है. यातें अज्ञानका अधिष्ठान रूप आश्रय जीव बनै नही. किंतु सुद्ध ब्रह्मही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. सुद्ध ब्रह्म अधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान, सो ता ब्रह्मकूंही आछादन करै है. तिसतें अनंतर

"मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसें अज्ञानका अभिमानीरूप आश्रय जीव होवै है. या प्रकारतें **स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है.**

२४७ सो अज्ञान **यद्यपि** एक है, औ ज्ञानतें निवृत्त होवै है. परंतु जा अंतःकरनमें अज्ञान होवै, ता अंतःकरन अवच्छिन्न चेतनमें स्थित जो अज्ञानका अंस, ताकी निवृत्ति ज्ञानसें होवै है. सोई मुक्त होवै है. जा अंतःकरनमें ज्ञान नही होवै, तहां अज्ञानका अंस रहै है; औ बंध रहै है. या रीतिसें एक अज्ञान पक्षमें बंध मोक्ष व्यवहार बनै है. औ किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसें नाना अज्ञान वादही बुद्धिमें प्रवेस होवै, तौ वह बी अद्वैत ज्ञानका उपाय है. ताके षंडनमें कछु आग्रह नही. जिस रीतिसें जिज्ञासुकूं अद्वैत बोध होवै, तैसे बुद्धिकी स्थिती करै. सुद्ध ब्रह्मके आश्रित जो माया, ताकूं **अविद्या** औ **अज्ञान** कहै हैं. अचिंत्य सक्ति औ युक्तिकूं नही सहारै, यातें **माया** कहै हैं. विद्यातें नास होवै है, यातें **अविद्या** कहै हैं. स्वरूपका आछादन करै है, यातें **अज्ञान** कहै हैं, जा चेतनके आश्रित है, सो सामान्य चेतन ताका विरोधी नही. किंतु **सामान्य चेतन मायाका साधक है.** सत्ता स्फुरन देवै है. औ वृत्तिमें आरूढ कहिये स्थित, सो चेतन अथवा चेतन सहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये. कवित्तके तीनि पादनतें मायाका स्वरूप कह्या.

२४८ "मायामें आभास" इत्यादि चतुर्थ पादसें ईस्वरका स्वरूप कहै हैं. सुद्ध सत्वगुन सहित माया औ मायाका अधिष्ठान चेतन, मायामें आभास, तीनू मिले **ईस्वर** कहिये है. सो ईस्वर सर्वज्ञ है. सोई जगतका **हेतु** कहिये कारन है. कारन दो प्रकारका होवै है:-एक तौ उपादान कारन होवै है, एक निमित्त कारन होवै है. जाका कार्यके स्वरूपमें प्रवेस होवै, औ जा बिना कार्यकी स्थिति

होवै नही; सो **उपादान** कारन कहिये है, जैसे मृत्तिका घटका उपादान कारन है. घटके स्वरूपमें ताका प्रवेस है. औ मृत्तिका बिना घटकी स्थिति नही. जाका स्वरूपमें प्रवेस नही, किंतु कार्य कूं भिन्न स्थित होयके करै; औ जाके नासतें कार्य बिगरै नही; सो **निमित्त कारन** कहिये है. जैसे घटके कुलाल दंड चक्र आदिक निमित्त कारन हैं. घटके स्वरूपमें तिनका प्रवेस नही. घटसें भिन्न कहिये किनारे स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करै है. औ उत्पत्ति हुये पाछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नासतें घट बिगरै नही. इस रीतिसें उपादान औ निमित्त दो प्रकारका कारन होवै है.

२४९ **औ जगतका उपादान औ निमित्त दोनूं प्रकारतें ईस्वरही कारन है.** जैसे एकही मकरी जालेका उपादान कारन औ निमित्त कारन है. औ जो ऐसे कहैं:—मकरीका जड सरीर जालेका उपादान कारन, औ मकरीके सरीरमें जो चेतन भाग सो निमित्त कारन है; यातें एक ईस्वरकूं निमित्त कारन, औ उपादान कारन माननेमें कोई दृष्टांत नही. तौ मकरीकी न्याई ईस्वरका सरीर जड माया जगतका उपादान कारन, औ चेतन भाग निमित्त कारन; इस रीतिसें एकही ईस्वर जगतका उपादान औ निमित्त कारन है. तामें मकरीका दृष्टांत औ मुख्य दृष्टांत स्वप्न है. जा समय जीवनके कर्म फल देनेकूं सन्मुष नही होवै, तब प्रलय होवै है. औ जीवनके कर्म फल देनेकूं सन्मुष होवै, तब सृष्टि होवै है. इस रीतिसें **जीव कर्मके आधीन सृष्टि है.** यातें,

२५० जीवका स्वरूप कहै हैं:-

दोहा.

मलिन सत्व अज्ञानमैं, जो चेतन आभास;
अधिष्ठान युत जीव सो, करत कर्म फल आस. १५५

टीका:- रजोगुन तमोगुनकूं दाबि लेवै, सो **सुद्ध सत्व गुन** कहिये है. औ रजोगुन तमोगुनसें आप दबै सो **मलिन सत्वगुन** कहिये है. ता मलिन सत्वगुन सहित अज्ञानके अंस मैं जो चेतनका आभास, औ अज्ञान, औ ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनूं मिले **जीव** कहिये है; सो जीव कर्म करै है; औ फलकी आस करै है. १५५

२५१ ता जीवके कर्मनके अनुसार उंच नीच भोगके निमित्त ईस्वर सृष्टि रचै है. यातें **ईस्वरमें विषम दृष्टि औ क्रूरता नही.** और जो ऐसे कहैं:- सर्वसें प्रथम सृष्टिसें पूर्व कर्म नही. औ प्रथम सृष्टिमें उंच नीच सरीर औ भोग ईस्वरने रचै हैं. यातें ईस्वर विषम दृष्टि है. सो बनै नही. काहेते, **संसार अनादि हैं.** उत्तर उत्तर सृष्टिमें पूर्व पूर्व सृष्टिके कर्म हेतु हैं. सर्वसें प्रथम कोई सृष्टि नही. याते ईस्वरमें दोष नही.

२५२ कवित्व.

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईस,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाईये;
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचे तहां,
सब्द स्पर्श रूप रस गंध गुन गाईये;
सत्व अंस पंचनको मेलि उपजत सत्व,

रजोगुन अंस मिलि प्रान त्यूं उपाईये;
एक एक भूत सत्व अंस ज्ञान इंद्रि रचै,
कर्म इंद्रि रजोगुन अंसतें लषाईये. १५६

टीका:– जब जीवनके कर्म भोग देनेसें उदासीन होवें तब प्रलय होवे है. **प्रलयमें सर्व पदार्थनके संस्कार मायामें रहे हैं.** यातें जीवनके कर्म बी जो बाकी रहेथे सो सूछम होयके मायामें रहे हैं. जब कर्म भोग देनेकूं सन्मुष होवें, तब ईस्वरकूं यह इच्छा होवे है:– "जीवनके भोग निमित्त जगत उपजाईये." २५३ ऐसी ईस्वरकी इच्छातें माया तमोगुन प्रधान होवे है. ता तमोगुन प्रधान मायातें नभ, वायु, तेज, जल, भूमि, ये **पंच-भूत** रचे जावे हैं. तिन भूतनमें क्रमतें सब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये **पांच गुन** होवे हैं. मायातें शब्द सहित आकासकी उत्पत्ति औ आकासतें वायुकी उत्पत्ति, वायु आकासका कार्य है; यातें आकासका सब्द गुन वायुमें होवे है; अपना गुन स्पर्श होवे है. वायुतें तेजकी उत्पत्ति, औ तेजमें आकासका सब्द, वायुका स्पर्श होवे है, अपना रूप होवे है. तेजतें जलकी उत्पत्ति, आकासका सब्द, वायुका स्पर्श, तेजका रूप, जलमें होवे है; अपना रस होवे है. जलसें पृथ्वीकी उत्पत्ति; औ आकासका सब्द, वायुका स्पर्स, तेजका रूप, जलका रस, पृथिवीमें होवे है; पृथिवीका गंध होवे है. आकासमें प्रतिध्वनि रूप सब्द है. वायुमें सीसी सब्द, औ उष्न सीत कठिनतें विलछन स्पर्श है; अग्निरूप तेजमें भुक भुक सब्द औ उष्न स्पर्श औ प्रकास रूप है. जलमें चुल चुल सब्द,सीत स्पर्स, सुक्ल-रूप, मधुर रस है. औ क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसें जल प्रतीत होवे है. जलका रस मधुरही है. सो मधुरता हरीतकी

आदिक भछन करिके जल पान किये प्रगट होवै है. पृथिवीमें कट कट सब्द उष्न सीतसें विलछन कठिन स्पर्स है. स्वेत, नील, पीत, रक्त. हरित, आदिरूप है. मधुर, आम्ल, छार, कटु, कसाय, तिक्त रस है. सुगंध औ दुर्गंध दो प्रकारका गंध है. इस रीतिसें आकासमें एक, वायुमें दोय, तेजमें तीनि, जलमें च्यारि, पृथिवीमें, पांच गुन हैं. तिनमें एक एक अपना है, अधिक कारनके हैं. औ सर्वका मूल कारन ईस्वर है. तामें माया औ चेतन दो भाग हैं. **मिथ्यापना मायाका, औ सत्ता स्फुर्ति चेतनका सर्व भूतनमें हैं.** कवित्वके दो पादका यह अर्थ है.

२५४ पंच भूतनका सत्वगुन अंस मिलिके **सत्व** कहिये अंतःकरनकूं उपजावै है, अंतःकरन ज्ञानका हेतु है. औ ज्ञानकी उत्पत्ति सत्वगुनतें अंगीकार करी है. यातें अंतःकरन भूतनके सत्वगुनका कार्य है. औ पंच भूतनके कार्य पंच ज्ञान इंद्रिय; तिन सबका सहायक है. यातें पंच भूतनके मिले सत्वगुनतें अंतःकरनकी उत्पत्ति कही है. देहके **अंतर** कहिये भीतर है. औ **करन** कहिये ज्ञानका साधन है. यातें **अंतःकरन** कहिये है. औ भूतनके सत्वगुनका कार्य है. यातें अंतःकरनका **सत्व** बी नाम है.

अंतःकरनका जो परिनाम, ताकूं **वृत्ति** कहै हैं. सो अंतःकरनकी वृत्ति च्यारि हैं. पदार्थके भले बुरे स्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति **बुद्धि** कहिये है. संकल्प विकल्प वृत्ति **मन** कहिये है. चिंता वृत्ति **चित्त** कहिये है. "अहं" ऐसी अभिमान वृत्ति **अहंकार** कहिये है.

२५५ पंच भूतनके मिले रजोगुन अंसतें प्रानकी उत्पत्ति होवै है. सो प्रान क्रिया भेदतें, औ स्थान भेदतें पांच प्रकारका है. जाका हृदय स्थान, औ छुधा पिपासा क्रिया, सो **प्रान** कहिये

हैं. औ जाका गुदास्थान, मूत्रलय अधोनयन क्रिया सो **अपान.** जाका नाभिस्थान, औ भुक्त पीत अन्न जलकूं पाचन योग्य सम करै सो **समान.** जाका कंठस्थान, औ स्वास क्रिया सो **उदान.** जाका सर्व सरीर स्थान, रस मेलन क्रिया, सो **व्यान.** औ कहूं नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, **पंच प्रान अधिक कहै हैं.** तिनकी उद्गार, निमेष, छीक, जृंभाई, मृत सरीर फुलावन; ये क्रमतें क्रिया कही है. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकास, पंचनके रजोगुन अंसतें एक एककी क्रमतें उत्पत्ति कही है. औ अपान, समान, प्रान, उदान, व्यान, इनकी बी पृथिवी आदिक एक एकके रजोगुन अंसतें उत्पत्ति कही है. सर्वके मिले रजोगुन अंसतें नही. परंतु अद्वैत सिद्धांतमें यह प्रक्रिया नही. काहेतें, **विद्यारन्य स्वामीने** तथा पंचीकरनमें **वार्त्तिककारने** सूछम सरीरमें औ पंच कोसनमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहन किया नही. औ तिननें अपान आदिक पंच प्रानकी उत्पत्ति बी भूतनके मिले रजोगुन अंसतें कही है. यातें एक एकके रजोगुन अंसतें अपान आदिकनकी उत्पत्ति कथन असंगत, औ सूछम सरीरमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहन असंगत, पंच प्रानकाही सूछम सरीरमें ग्रहन है. प्रान विछेप रूप हैं. औ विछेप स्वभाव रजोगुनका है. यातें भूतनके रजोगुन अंसतें प्रानकी उत्पत्ति कही है. यह तृतीय पादका अर्थ है.

२९६ एक एक भूतका सत्वगुन अंस पंच ज्ञान इंद्रिय रचै है. औ एक एकका रजोगुन अंस एक एक कर्म इंद्रिय रचै है. आकासके सत्वगुनतें श्रोत्र. वायुके सत्वगुन अंसतें त्वक. तेजके सत्वगुन अंसतें नेत्र. जलके सत्वगुन अंसतें रसना. पृथिवीके सत्वगुनतें घ्रान होवै है. ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन हैं. यातें ज्ञानें-

द्रिय कहिये है. औ ज्ञान सत्वगुनतें होवै है, यातें भूतनके सत्व-गुनतें उत्पत्ति कही है. श्रोत्रेंद्रिय आकासके गुनकूं ग्रहन करै है; यातें श्रोत्रेंद्रियकी आकासतें उत्पत्ति कही. तैसे जा भूतके गुनकूं जो इंद्रिय ग्रहन करै, ता भूतसें ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है.

आकासके रजोगुन अंसतें वाक इंद्रियकी उत्पत्ति; वायुके रजोगुन अंसतें पानिकी; तेजके रजोगुन अंसतें पादकी; जलके रजोगुन अंसतें उपस्थकी; पृथिविके रजोगुन अंसतें गुदाकी उत्पत्ति होवै है. स्त्रीकी योनि औ पुरुषके मेढ्रमें जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो **उपस्थ** कहिये है. **कर्म** नाम क्रियाका है. ये पांच इंद्रिय क्रियाके साधन हैं. यातें **कर्मेंद्रिय** कहिये है. क्रिया रजोगुनतें होवै है. यातें भूतनके रजोगुन अंसतें इनकी उत्पत्ति कही है. १५६

२५७ **सवैयाछंद.**

भूत अपंचीकृत औ कारज,
इतनी सूछम सृष्टि पिछान;
पंचीकृत भूतनतें उपज्यो,
स्थूल पसारो सारो मान;
कारन सूछम थूल देह अरु,
पंच कोस इनहीमें जान;
करि विवेक लषि आतम न्यारो,
मुंज इषीकातें ज्यूं भान. १५७

टीका:– अपंचीकृत भूत औ तिनका कार्य अंत:करन, प्रान,

कर्मइंद्रिय, ज्ञान इंद्रिय, इतनी सूछम सृष्टि कहिये है. सूछम सृष्टिका ज्ञान इंद्रियतें होवै नही. नेत्र नासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं; परंतु तिन गोलकनमें स्थित जो इंद्रिय; सो काहुके इंद्रियनके विषय नही. सूछम सृष्टिकी उत्पत्तिसें अनंतर ईस्वरकी इच्छातें स्थूल सृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरन होता भया.

२५८ पंचीकरन दो भांतिसे कह्या है:— एक एक भूतके दो दो भाग सम होयके एक एक भागके च्यारि च्यारि भाग भये. पांच भूतनका आधा आधा भाग, प्रथक ज्यूंका त्यूं रह्या है. आधे आधे भागके जो च्यारि च्यारि भाग सो पृथक रहे. बडे अर्ध भागनमें अपने अपने भागकूं छोडिके मिलेतें अर्ध भाग सब भूतनमें अपना, औ अर्ध भाग अपनेसें इतर च्यारि भूतनका मिलिके पंचीकरन कहावै है.

औ दूसरा यह प्रकार है:— एक एक भूतके दो दो भाग भये सो सम नही; किंतु एक भाग च्यारि अंसका, औ पंचम अंसका एक भाग; इस रीतिसें न्यून अधिक दो दो भाग भये. तिनमें सबके अधिक भाग ज्यूंके त्यूं पृथक स्थित रहे. औ पंच भूतनके न्यून जो पंच भाग, तिनके एक एक भागके पंच पंच भाग करिके पृथक स्थित, अधिक पंच भागनमें एक एक भाग मिलिके पंचीकरन होवै है. प्रथम पछमें एक भागके च्यारि भाग पृथक रहे, आधे आधे भागनमें अपने भागकूं छोडिके मिले. औ दूसरे पछमें न्यून भागके पंच भाग पृथक रहे· अधिक पंच भागनमें अपने भाग सहितमें मिले. औ प्रथम पछमें पंचीकृत भूतनमें अपना अंस अर्ध, औ अर्ध अंस औरनका. दूसरे पछमें पंचीकरन कियेतें अपने अंस इकीस, और इनके अंस च्यारि.

औ दूसरे पछकी सुगम रीति यह है:—एक एक भूतके पचीस

पचीस भाग होय; इकीस इकीस भाग, औ च्यारि च्यारि भाग पृथक भये. च्यारि च्यारि भागनमेंसें एक एक भाग इकीस इकीस भागनमें मिले, अपने इकीस भागनकूं छोडिके, इस रीतिसें दो प्रकारका पंचीकरन कह्या है. एक एक भूतमें पांच पांच भूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरन है. जिन भूतनका पंची· करन किया है, तिनकूं पंचीकृत कहे हैं.

२५९ तिन पंचीकृत भूतनतें इंद्रियनका विषय स्थूल ब्रह्मांड होता भया. ता ब्रह्मांडके अंतर भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, ये सात भुवन ऊपरके होते भये. औ अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल; ये सात लोक नीचेके होते भये. तिन चतुर्दस लोकनमें जीवनके भोग योग्य अनादिक, औ भोगका स्थान देव मनुष्य पसु आदि स्थूल सरीर होते भये. यह संछेपतें सृष्टिका निरूपन किया. औ मायाके कार्यका विस्तारसें निरूपन कियेतें कोटि ब्रह्माकी उमरतें बी मायाकृत पदार्थ निरूपनका अंत होवै नहीं. यह वाल्मिकीने अनेक इतिहासनतें वासिष्टमें निरूपन किया है. यह सवैयाके दो पादनका अर्थ है.

२६० तृतीय पादका अर्थ यह है:—इनहीमें कहिये माया औ ताके कार्यमें तीनि सरीर औ पंच कोस हैं. सुद्ध सत्वगुन सहित माया ईस्वरका कारन सरीर औ मलिन सत्वगुन सहित अविद्या अंस जीवका कारन सरीर है. उत्तर सरीरके आरंभक पंच सूछम भूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच प्रान, पंच कर्म इंद्रिय, पंच ज्ञान इंद्रिय जीवका सूछम सरीर है. औ सर्व जीवनके सूछम सरीरही मिलिके ईस्वरका सूछम सरीर है. संपूर्न स्थूल ब्रह्मांड ईस्वरका स्थूल सरीर है. औ जीवनके व्यष्टि स्थूल

सरीर प्रसिद्ध है. इन तीनि सरीरनमेंही पंच कोस हैं. कारन सरीरकूं **आनंदमय कोस** कहै हैं. विज्ञानमय, मनोमय, प्रानमय, तीनि कोस सूछम सरीरमें हैं. पंच ज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूप अंत:करनकी वृत्ति बुद्धि **विज्ञानमय कोस** कहिये है. पंच ज्ञानेंद्रिय औ संकल्प विकल्प अंत:करनकी वृत्ति मन **मनोमय कोस** कहिये है. पंच प्रान औ पंच कर्मेंद्रिय **प्रानमय कोस** है. स्थूल सरीरकूं **अन्नमय कोस** कहै हैं. इस रीतिसें तीनि सरीरनमें ही पंच कोस हैं. ईस्वरके सरीरनमें ईस्वरके कोस, औ जीवके सरीरनमें जीवके कोस हैं. **कोस** नाम म्यानका है. म्यानकी न्याई पंच कोस आत्माके स्वरूपकूं आछादन करै हैं. यातें अन्नमयादिक कोस कहिये हैं. अनेक मंद मति पुरुष पंच कोसनमें जो अनात्म पदार्थ हैं, तिनमें किसी एककूं आत्मा मानिके मुख्य साछी आत्मस्वरूपतें विमुखहो रहे हैं. यातें अन्नमयादिक आत्मस्वरूपकूं आछादन करै हैं. तहां,

२६१ कितने पामर **विरोचन मतके** अनुसारी स्थूल सरीररूप अन्नमय कोसकूंही आत्मा कहैं हैं. औ यह युक्ति कहै हैं:—जामें अहंबुद्धि होवै सो आत्मा है. सो अहं बुद्धि स्थूल सरीरमें होवै है. "मैं मनुष्य हूं," "मैं ब्राह्मण हूं" ऐसी प्रतीति सबकूं होवै है. औ मनुष्यपना, ब्राह्मनपना, स्थूल सरीरमेंही है. यातें स्थूल सरीरही अहंबुद्धिका विषय होनेतें आत्मा है. किंवा जामें मुख्य प्रीति होवै सो आत्मा है. स्त्री, पुत्र, धन, पसु, आदिक स्थूल सरीरके उपकारक होवैं तौ तिनमें प्रीति होवै है. औ स्थूल सरीरके उपकारक नही होवैं, तौ प्रीति होवै नही. जाके निमित्त अन्य पदार्थमें प्रीति होवै, ता स्थूल सरीरमेंही मुख्य प्रीति है. यातें **स्थूल सरीरही आत्मा है.** ताका वस्त्र, भूषन,

अंजन, मंजन, नानाविध भोजनसें सिंगार पोषनही परम पुरुषार्थ-है; यह असुर स्वामी विरोचनका सिद्धांत है.

२६२ और कोऊ ऐसे कहे हैं:—स्थूल सरीरही आत्मा नही, किंतु स्थूल सरीरमें जाके होनेतें जीवन व्यवहार होवै है, औ जाके नही होनेतें मरन व्यवहार होवै है, सो आत्मा स्थूल सरीरसें भिन्न है. जीवन मरन इंद्रियनके आधीन है. जितने काल सरीरमें इं-द्रिय होवै उतने काल जीवन है. औ कोऊ इंद्रिय न होवै, तब मरन कहिये है. औ "मैं देषूं हूं" "मै सुनूं हूं" "मैं बोलूं हूं" इस रीतिसें अहंबुद्धि बी इंद्रियनमें होवै है. यातें **इंद्रियही आत्मा है.**

२६३ और हिरन्यगर्भके उपासी प्रानकूं आत्मा कहे हैं, तामें यह युक्ति कहे हैं:—जब मरन समय मूर्छा होवै है; तब ताके संबंधी पुत्रादिक प्रान सेष होवैं तौ जीवन जानै है, औ प्रान सेष न होवैं, तौ मरन जानै हैं. किंवा सरीरमें नेत्र इंद्रिय नही होवै, तौ अंधा सरीर रहै है. श्रोत्रसें बिना बधिर रहै है. वाक बिना मूक रहै है. ऐसे जो इंद्रिय नही होवै ताके व्यापारसें बिना बी सरीर स्थितही रहै है. औ प्रानसें बिना तिसी छनमें स्मसा-नके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. औ "मैं देषूं हूं" "सुनूं हूं" या प्रतीतिसें बी इंद्रियनतें भिन्नही आत्मा सिद्ध होवै है. काहेतें, "नेत्र स्वरूप मैं देषूं हूं, श्रवन स्वरूप मैं सुनूं हूं," जौ ऐसी प्रतीति होवै तौ इंद्रिय रूप आत्मा सिद्ध होवै; किंतु "मैं नेत्रवाला देषूं हूं, श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूं," ऐसी प्रतीति होवै है. यातें **इंद्रियनतें भिन्नही आत्मा है.** औ सुषुप्तिमें सर्व इंद्रियनका अभाव है; तौ बी प्रानके होनेतें जीवन व्यवहार होवै है. यातें जीवन मरन बी इंद्रियनके आधीन नही. किंतु स्थूल सरीर औ प्रानके वियोगकूं **मरन** कहे हैं. याते **जीवन मरन प्रानकेही**

आधीन हैं; सोई आत्मा है.

२६४ और कोई ऐसे कहे हैं:—प्रान जड है, यातें घटकी न्याई अनात्मा है. औ बंध मोछ मनके आधीन हैं. विषयमें आसक्त जो मन, सो बंधनका हेतु है. विषयवासना राहित मन मोछका हेतु है. औ मनके संबंधतेंही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं. मनके संबंध बिना इंद्रियतें ज्ञान होवे नही. यातें सर्व व्यवहारका हेतु **मन है; सोई आत्मा है.**

२६५. औ छनिक विज्ञान वादी बौद्ध यह कहे हैं:— मनका व्यापार बुद्धिके आधीन है. काहेतें बुद्धिकाही आकार मन होवे है. यातें छनिक विज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है, मन नही. यह तिनका अभिप्राय है:— संपूर्न पदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं, सो विज्ञान प्रकास रूप है. औ छन छनमें विज्ञानके उत्पत्ति नास होवे हैं. पूर्व विज्ञानके समान अन्य विज्ञानकी उत्पत्ति हुवेतें पूर्व विज्ञानका नास होवे है. तैसे तृतीय विज्ञानकी उत्पत्ति, औ द्वितीय विज्ञानका नास, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नास होवे है. या रीतिसें नदीके प्रवाहकी न्याई विज्ञानकी धारा बनी रहे है. सो विज्ञानकी धारा दो प्रकारकी है. एक तौ आलय विज्ञान धारा है. औ दूसरी प्रवृत्ति विज्ञान धारा है. "अहं अहं" ऐसी विज्ञान धाराकूं **आलय विज्ञान धारा** कहे हैं. ताहीकूं **बुद्धि** कहे हैं. "यह घट है, यह सरीर है" ऐसी विज्ञान धाराकूं **प्रवृत्ति विज्ञान धारा** कहे हैं. आलय विज्ञान धारासें प्रवृत्ति विज्ञान धाराकी उत्पत्ति होवे है. मनका स्वरूप वी प्रवृत्ति विज्ञान॰धारामें है. यातें आलय विज्ञान धारा रूप बुद्धिका कार्य है. सो **बुद्धिही आत्मा है.** आलय विज्ञान धाराविषे प्रवृत्ति विज्ञान धाराका बाध चिंतनतें, निर्विसेष छनिक विज्ञान धाराकी स्थितिही तिनके मतमें **मोछ** है. इस रीतिसें वि-

ज्ञान वादी बुद्धिकूंही छनिक रूप औ स्वयंप्रकास रूप कल्पना करिके आत्मा कहै हैं.

२६६. औ पूर्व मीमांसाका वार्त्तिककार भट यह कहै है:—विद्युतकी न्याई छनिकरूप आत्मा नही. किंतु स्थिर स्वरूप आत्मा जड स्वरूप औ चेतनरूप है. यह ताका अभिप्राय है:—सुषुप्तिसें जागिके पुरुष यह कहै है. "मैं जड होयके सोवता भया" यातें आत्मा जड रूप है. औ जागेकूं स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नही. आत्म स्वरूपसें भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमें और साधन नही. यातें स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमें ज्ञान है. सो आत्माका स्वरूपही है. इस रीतिसें षद्योतकी न्याई आत्मा प्रकास औ अप्रकासरूप है; ज्ञानरूप है, यातें प्रकासरूप; औ जड है, यातें अप्रकासरूप है. सो प्रकासरूप औ अप्रकासरूप आनंदमय कोस है. काहेतें, सुषुप्तिमें चेतनके आभास सहित जो अज्ञान,ताकूं **आनंदमय कोस** कहै हैं तहां आभास तौ प्रकासरूप, औ अज्ञान अप्रकासरूप है. यातें भटके मतमें **आनंदमय कोसही आत्मा है.**

२६७ औ सून्यवादी बौद्ध यह कहै हैं:—आत्मा निरंस है; यातें एक आत्माकूं प्रकासरूप औ अप्रकासरूप कहना बनै नही. औ षद्योतका तौ एक अंस प्रकासरूप है, औ दूसरा अंस अप्रकासरूप है. ताकी न्याई अंस रहित आत्माविषे उभय रूप कहना असंगत है. यातें उभयरूपकी सिद्धि वास्ते आत्मा अंस सहितही मानना होवैगा. जो अंसवाले पदार्थ घटादिक हैं, सो उत्पत्ति औ नासवाले होवै हैं. तैसे आत्मा बी अंस सहित होनेतें उत्पत्ति नासवालाही मानना होवैगा. जो उत्पत्ति नासवाला पदार्थ होवै, सो उत्पत्तिसें पूर्व औ नासतें अनंतर असत होवै है. जो आदि अंतमें असत होवै, सो मध्य बी सत होवै नही. किंतु मध्य बी

असतही होवै है. यातें आत्मा असतरूप है. तैसें आत्मासें भिन्न बी संपूर्न पदार्थ उत्पत्ति नासवाले हैं. यातें असतरूप हैं. इस रीतिसें आत्मा औ अनात्मा समग्र वस्तु असतरूप होनेतें **सून्यही परम तत्व है.** यह सून्यवादी माध्यमिक बौद्धका मत है.

सो बी अज्ञानरूप आनंदमय कोसकूं प्रतिपादन करै हैं. काहेतें, अज्ञान तीनि रूपसें प्रतीत होवै है. अद्वैत सास्त्रके संस्कार रहित जो मूढ, तिनकूं तौ जगतरूप परिनामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै है. औ अद्वैत सास्त्रके अनुसार युक्ति निपुन पंडितनकूं सत असतसें विलछन अनिर्वचनीयरूप अज्ञान औ ताका कार्य जगत प्रतीत होवै है. ज्ञाननिष्टाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्त विद्वान, तिनकूं कार्य सहित अज्ञान तुछरूप प्रतीत होवै है. **तुछ, असत, सून्य,** ये तीनि सब्द एकही अर्थकूं कहै हैं. इस रीतिसें जीवन्मुक्तनकूं तुछरूप जो प्रतीत होवै अज्ञान, ताके विषे मोहित सून्य वादी परम पुरुषार्थकूं नही जानै हैं; किंतु तुछरूप आनंदमय कोसकूंही आत्मा कहै हैं.

२६८ औ पूर्व मीमांसाका एक देसी प्रभाकर औ नैयायिक यह कहै हैं:— आत्मा सून्यरूप नही. काहेतें, जो सून्यरूप आत्मा मानै, ताकूं यह पूछै हैं:— सून्य रूपका तैने अनुभव किया है, अथवा नही ? जो ऐसे कहैं:—सून्य रूपका अनुभव नही किया; तौ सून्य नही है, यह सिद्ध हुआ. औ जो कहैं सून्यका अनुभव किया है; तौ जामें सून्यका अनुभव किया है, सो आत्मा सून्यसें विलछन सिद्ध होवै है. इस रीतिसें सून्यतें विलछन आत्मा है. ताकेविषे मनके संयोगतें ज्ञान होवै है. ता ज्ञान गुनतें आत्मा **चेतन** कहिये है. औ स्वरूपसें आत्मा जड है. तैसे सुष, दुष, इछा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, आदिक गुन आत्माविषे हैं. तिनके

मतमें बी आनंदमय कोसही आत्मा है. औ विज्ञानमय कोसमें जो बुद्धि है, सो आत्माका ज्ञान गुन कहै हैं: काहेतें, आनंदमय कोसमें चेतन गूढ है. विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नही. औ प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमें ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसें जड कहै हैं. यातें गूढ चेतन आनंदमय कोसमेंही तिनकूं आत्मभ्रांति है, औ आत्मस्वरूप नित्य ज्ञानकूं तौ जीवमें मानै नही; किंतु अनित्य ज्ञान मानै है. सो अनित्य ज्ञान सिद्धांतमें अंतःकरनकी वृत्ति बुद्धिरूप है. या रीतिसें प्रभाकर नैयायिक मतमें **आनंदमय कोस आत्मा है; औ बुद्धि ताका गुन है.** तिनका मत बी समीचीन नही. काहेतें:—

२६९ ज्ञानसें भिन्न जो जड वस्तु घटादिक हैं, सो अनित्य हैं. तैसे आत्मा बी ज्ञान स्वरूप नही होवै, तौ घटादिकनकी न्याई जड होनेतें अनित्य होवैगा. जो आत्मा अनित्य होवै, तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवैगा. इस रीतिसें वेदांत वाक्यनमें विस्वासहीन अनेक बहिर्मुख पंचकोसनमेंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानै हैं. औ मुख्य आत्मस्वरूप साक्षीकूं नही जानै हैं. यातें अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनेतें **कोस** कहिये हैं.

जैसे जीवके पंचकोस जीवके यथार्थ स्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करै हैं; तैसे ईस्वरके समष्टि पंचकोस ईस्वरके यथार्थ स्वरूपकूं आच्छादन करै हैं. काहेतें, **ईस्वरका यथार्थ स्वरूप** तौ तत्पदका लक्ष्य है. ताकूं त्यागीके कोई तौ मायारूप आनंदमय कोस विसिष्ट जो **अंतर्यामी** तत्पदका वाच्य, ताकूंही परम तत्व कहै है. तैसे हिरन्यगर्भ, वैस्वानर, विष्नु, ब्रह्मा, सिव, गनेस, देवी, सूर्यसे आदिलेके असिकूं दाल, पीपल, अर्क, वंस, पर्यंत पदार्थनमें परमात्मा भ्रांति करै है. **यद्यपि** सर्व पदार्थनमें लक्ष्य

भाग परमात्मासें भिन्न नहीं; तथापि तिस तिस उपाधि सहित कूं जो परमात्मा मानैं हैं, सो तिनकूं भ्रांति है. या रीतिसें पंचकोसनतें आवृत्त जो जीव ईस्वरका परमार्थ स्वरूप, तासें विमुष होय के देहादिकनमें आत्म भ्रांतिकरीके पुन्य पाप कर्म करै है. औ अंतर्यामीसें आदिलेके वंस पर्यंतकूं ईस्वररूप मानिके आराधन करिके सुष चाहै हैं. जैसी उपाधिका आराधन करै हैं, ताके अनुसारही तिनकूं फल होवै है. काहेतें, कारन सूछम स्थूल प्रपंच सारा ईस्वरके तीनि सरीरनके अंतर्भूत हैं. तामें उपासनाके अनुसार फल बी सर्वसेंही होवै है. परंतु ब्रह्म ज्ञान बिना मोछ होवै नहीं. जो मोछकी इछा होवै, वौ विवेकतें जीव ईस्वरके स्वरूपकूं पंचकोसनतें पृथक् करै; दृष्टांत.— जैसें मुंज औ ईषीका कहियें तूली मिली होवै है; तिनकूं तोरिके पृथक् करै हैं. तैसें विवेकतें जीव ईस्वरके स्वरूपकूं पंचकोसनतें पृथक् जानै. यह सवैयाका अर्थ है. १९७.

२७० सो विवेकका प्रकारदिषावै है:–

सवैया.

स्थूल देहको भान न होवै,
स्वप्नमांहि लषि आतम ज्ञान;
सूछम ज्ञान सुषुप्ति समैं नहि,
सुष स्वरूप व्है आतम भान;
भासै भये समाधि अवस्था,
निरावरन आतम न अज्ञान,
ऐसे तीनि देह व्यभिचारी,

आतम अनुगत न्यारो जान. १५८

टीका:-स्वप्न अवस्थामांही स्थूल देहका भान होवै नही, औ आत्माका भान होवै है. तैसे सुषुप्ति अवस्थामें सूछम सरीरका ज्ञान होवै नही. औ सुष स्वरूप आत्मा स्वयंप्रकासरूपतें **भान** कहिये प्रतीत होवै है. सुषका ज्ञान सुषुप्तिमें नही होवै, तो "मैं सुषसें सोवता भया" ऐसी स्मृति जागिके नही हुई चाहिये; यातें **सुषका ज्ञान सुषुप्तिमें होवै है.** सो सुष विषय जन्य तो सुषुप्तिमें है नही; किंतु आत्म स्वरूपही है. सो आत्मा स्वयंप्रकास है. यातें सुष स्वरूप आत्मा स्वयंप्रकास रूपतें सुषुप्तिमें भासै है. औ निदिध्यासनका फल निर्विकल्प समाधि अवस्थामें निरावरन कहिये अज्ञानकृत आवरन रहित आत्मा भासै है. औ न **अज्ञान** कहिये कारन सरीर आज्ञान नही भासै है. ऐसे **तीनि देह व्यभिचारी हैं,** एक अवस्थाकूं छोडिके दूसरी अवस्थामें भासै नही. आत्मा अनुगत है, सर्व अवस्थामें भासै है. यातें **व्यापक** है. या विवेकतें तीनि सरीरनतें आत्माकूं न्यारो जान. स्थूल सरीर तो **अन्नमय कोस है,** औ कारन सरीर **आनंदमय कोस है,** औ सूछम सरीरमें **प्रानमय, मनोमय, विज्ञानमय,** तीनि कोस हैं. यातें तीनि सरीरनके विवेकतें पंच कोसकाही विवेक होवै है. जैसे जीवका स्वरूप पंच कोसनतें पृथक है, तैसे ईस्वरका स्वरूप बी समष्टि पंच कोसनतें पृथक है. औ चतुर्थ तरंगमें चतुर्विध आकासके दृष्टांतसें जीव ईस्वरके लछ्य स्वरूपका विवेक विस्तारसें करि आये हैं. औ उत्तर तरंगमें अस्ति भाति प्रिय रूपके निरूपनमें, तथा महा वाक्यनके अर्थ निरूपनमें आत्माका परमार्थ स्वरूप प्रतिपादन करैंगे. यातें इहां संछेपतेंही आत्मविवेक कह्या है. इस रीतिसें:-

२७१ पंच कोसनतें, आत्माकूं न्यारा जानेसें बी कृतकृत्य होवै नही, किंतु जीव ब्रह्मके अभेद निश्चय वास्ते फेरि बी विचार कर्तव्य रहे है, यातें कर्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धि वास्ते **महावाक्यका अर्थ** उपदेस करै हैं.

सवैया.

पंच कोसतें आतम न्यारो,
जानि सु जानहु ब्रह्म स्वरूप;
तातें भिन्न जु दीषै सुनिये,
सो मानहु मिथ्या भ्रम कूप;
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै,
स्वप्न भीष न दरिद्री भूप,
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता,
तव अस अद्भुत रूप अनूप. १५९

टीकाः—हे सिष्य पंच कोसतें आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्म स्वरूप है, यह जानी. याके विषेः—

२७२ ऐसी संका होवै हैः—

आत्मा पुन्य पाप करै है, तातें स्वर्ग नरक औ मृत्यु लोकमें नाना प्रकारके सुष दुष भोगै है; वाकी ब्रह्मसें एकता बनै नही.

२७३ ताका समाधानः—

"तातें भिन्न जु दीषै" इत्यादि तीनि पादनतें कहै हैं:—ता ब्रह्मरूप आत्मासें भिन्न जो दीषै है, औ सुनिये है सास्त्रसें, **स्वर्ग**, नरक, पुन्य, पाप, सो संपूर्न मिथ्या भ्रम है; ऐसे मानो. औ मि-

थ्या वस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नही. जैसे स्वमकी मिथ्या भीष कहिये भिछा मागनेतें भूप दरिद्री नही होवै है. औ मरुथलके मिथ्या जलतें भूमि गिली होवै नही, मिथ्या सर्पतें रज्जु विष सहित होवै नही. यातें सब कछु कर्त्ता कहिये संपूर्न मिथ्या सुभ असुभ क्रियाका कर्त्ता है. तऊ कहिये तौ बी अकर्त्ता कहिये परमार्थसें कर्त्ता नही. ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्य रूप, अनूप कहिये उपमा रहित है. याका भाव यह है:— ब्रह्मसें अभिन्न तेरे स्वरूपविषे स्थूल सूछम सरीर, औ तिनकी सुभ असुभ क्रिया औ ताका फल जन्म, मरन, स्वर्ग, नरक, सुष, दुष, संपूर्न अविद्यासें कल्पित है. ता कल्पित सामग्रीसें तेरा ब्रह्म भाव बिगरै नही. यातें ज्ञानतें प्रथम बी आत्मा ब्रह्म स्वरूपही है. ताके विषे तीनि कालमें सरीर औ ताके धर्मनका संबंध नही. किंतु आत्मा सदाही नित्य मुक्त है. ताका ब्रह्मसें कदै बी भेद नही. १९९

२७४ जो ऐसे कहैं:—आत्मा सदाही नित्य मुक्त ब्रह्म स्वरूप होवै, तौ श्रवनादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवैंगे. ताका समाधान:—

इंदव छंद.

नाहि ष पुष्प समान प्रपंच तु,
ईस कहां करता जु कहावै;
साछ्य नही इम साछि स्वरूप न,
दृस्य नही दृक काहि जनावै;
बंध हु होई तु मोछ बनै अरु,
होय अज्ञान तु ज्ञान नसावै;
जानि यही करतव्य तजै सब,

निश्चल होतहि निश्चल पावै. १६०

टीका:— जीवन्मुक्त विद्वानकी दृष्टिमें अज्ञान औ ताका कार्य तुच्छ है. सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावै है:— हे सिष्य, यह प्रपंच **ख पुष्प समान**, कहिये आकासके फूलकी न्याई, है नही. यातें ताका कर्त्ता ईस्वर बी नही है. साछीका विषय अज्ञानादिक **साछ्य** कहिये है; सो साछ्य नही, यातें साछी बी नही. तैसे दृस्यका प्रकासक **दृक्** कहिये है. औ प्रकासनै योग्य देहादिक दृस्य कहिये है. सो देहादिक दृस्य है नही; यातें दृक् बी नही. **यद्यपि** केवल कूटस्थ चेतनकूं **साछी** औ **दृक्** कहै हैं; ताका निषेध बनै नही; **तथापि** साछ्यकी अपेछातें साछी नाम, औ दृस्यकी अपेछातें दृक नाम है. साछ्य औ दृस्यका अभाव है. यातें साछी औ दृक्, नामका निषेध करै हैं; स्वरूपका नही. औ बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोछ होवै, बंध नही यातें मोछ बी नही. औ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसैं नास होवै, अज्ञान है नही, यातें ताका नासक ज्ञान बी नही. यह जानिके **कर्तव्य तजै** कहिये "मेरेकूं यह करने योग्य है" या बुद्धिकूं त्यागे. काहेतें, यह लोक तथा परलोक तौ तुछ हैं, तिनके निमित्त कछु कर्त्तव्य नही. आत्मामें बंध नही, यातें मोछके निमित्त बी कर्तव्य नही. या रीतिसें आत्माकूं नित्य मुक्त ब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सब कर्तव्य त्यागे; तब **निश्चल** कहिये अक्रिय ब्रह्म स्वरूप विदेहमोछकूं प्राप्त होवै. याका **अभिप्राय यह है:**—

यद्यपि आत्मा ज्ञानसें प्रथम बी नित्यमुक्त ब्रह्म स्वरूपही है. परंतु ज्ञानसें पूर्व आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता मिथ्या मानिके सुष प्राप्ति औ दुषकी निवृत्ति वास्ते अनेक साधन करै हैं. तासैं क्लेसकूंही प्राप्त होवै है. जब उत्तम आचार्य मिलै तौ वेदांत वाक्यनका उपदेस

करै है, तिन वेदांत वाक्यनके श्रवनतें ऐसा ज्ञान होवै है:– "मैं कर्त्ता भोक्ता नही, किंतु मैं ब्रह्म स्वरूप हूं" यातें मेरेकूं किंचित् बी कर्त्तव्य नही, ऐसा जाननाही श्रवनादिकनका फल है. औ ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांत श्रवनका फल नही. काहेतें, ब्रह्म अपना स्वरूप है; यातें नित्य प्राप्त है. १६०

२७५ दोहा:

येहि चिन्ह अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य;
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहि जाकूं भवितव्य. १६१

टीका:– जो कर्त्तव्य मानै सो अज्ञानका चिन्ह है, औ जाकूं **भवितव्य नही** कहिये अन्य रूप हुआ नही चाहै है, सो नर ज्ञानी कहीये है. १६१

२७६ **इंदव छंद.**

एक अषंडित ब्रह्म असंग,
अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं;
मूल अज्ञान न सूछम थूल,
समष्टि न व्यष्टिपनौ नहि तामैं;
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न,
तैजस विस्व स्वरूप न जामैं;
भोग न जोग न बंध न मोछ,
नही कछु वामैं रु है सब वामैं. १६२
जागृतमैं जु प्रपंच प्रभासत,

सो सब बुद्धि विलास बन्यो है;
ज्यूं सुपनेमहिं भौग्य न भोग,
तऊ इक चित्र विचित्र जन्यो है;
लीन सुषूपतिमें मति होतहि,
भेद भगै इक रूप सन्यो है;
बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्र सु,
निश्चल बुद्धि प्रकास भन्यो है. १६३

सवैया छंदः

जाके हिये ज्ञान उजियारो,
तम अंधियारो परो विनास;
सदा असंग एक रस आतम,
ब्रह्मरूप सो स्वयं प्रकास;
ना कछु भयो न है नहि व्है है,
जगत मनोरथ मात्र विलास;
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत,
ज्यूं ज्ञानीके कोउ न आस. १६४
देषै सुनै न सुनै न देषै,
सब रस ग्रहै रु लेत न स्वाद;
सूंघि परासि परसै न न सूंघै,
बैन न बोलै करै विवाद;

ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै,
चलै नही अरु धावत पाद;
भोगै युवति सदा सन्यासी,
सिष लषि यह अद्भुत संवाद. १६५

याका अभिप्राय कहै हैं:—

सवैया छंद.

निजं विषयनमें इंद्रिय वर्तें,
तिनतें मेरो नाही संग;
मैं इंद्रिय नहि मम इंद्रिय नहि,
मैं साछी कूटस्थ असंग;
त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय,
मोकूं लगै न रंचक रंग;
यह निश्चय ज्ञानीको जातें,
कर्ता दीषै करै न अंग. १६६

हे अंग प्रिय; अन्य अर्थ स्पष्ट. १६६

२७७ इस रीतिसें आचार्यनें सिष्यकूं गोप्य तत्वका उपदेस किया. तौ बी सिष्यका मुष अत्यंत.प्रसन्न नहि देषिके यह जान्या:— सिष्य कृतार्थ नही हुवा. जो कृतार्थ होता, तौ याका मुष प्रसन्न होता, यातें फेरि स्थूल रीतिसें उपदेस करनेकूं,

लय चिंतन कहै हैं:—

सवैया छंद.

माटीको कारज घट
माटी ताके बाहरि मांहि;
जलतें फेन तरंग बुदबुदा,
उपजत जलतें जुदे सु नाहि;
ऐसे जो जाको है कारज,
कारन रूप पिछानहु ताहि;
कारन ईस सकलको सो मैं,
लय चिंतन जानहु विध याहि. १६७

टीका:—जैसे माटीके कारजके बाहिर भीतरि माटी है; यातें माटीका सर्व कार्य माटी स्वरूपही है. फेन आदिक जलके कार्य जल स्वरूप हैं. ऐसे जो जाका कार्य है, सो ता कारन स्वरूपसें भिन्न नही. किंतु कार्य कारनही स्वरूप है. औ सकल प्रपंचका मूल कारन ईस्वर है. यातें सर्व कार्य प्रपंच ईस्वर स्वरूपसें भिन्न नही. किंतु सर्व प्रपंचका स्वरूप ईस्वरही है. सो ईस्वर मैं हूं. या रीतिसें लय चिंतन जानिके तूं कर.

२७८ लय चिंतनका संछेपतें यह क्रम है:— स्थूल ब्रह्मांड सारा पंचीकृत भूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वी स्वरूप, औ जलका कार्य जलस्वरूप, या रीतिसें जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है. इस रीतिसें सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृत भूत स्वरूप है. तैसें पंचीकृत भूत बी अपंचीकृत भूतनके कार्य हैं. यातें अपंचीकृत स्वरूपही पंचीकृत भूत हैं; भिन्न

नही. औ अंतःकरन आदिक सूछम सृष्टि बी अपंचीकृत भूतनका कार्य होनेतें अपंचीकृत भूत स्वरूप हैं. तामें अंतःकरन सारे भूतनके सत्वगुनके कार्य हैं. यातें सत्वगुन स्वरूप हैं. औ भूतनके रजोगुन अंसके कार्य प्रान, रजोगुन स्वरूप हैं. गुदा इंद्रिय पृथ्वीके रजोगुन अंसका कार्य, सो पृथ्वीका रजोगुन स्वरूप; घ्रान इंद्रिय पृथ्वीके सत्वगुनका कार्य, सो सत्वगुन स्वरूप; ऐसे रसना औ उपस्थ जलके सत्वगुन रजोगुन स्वरूप, नेत्र औ पाद तेजके सत्वगुन स्वरूप; त्वक औ पानि वायुके सत्वगुन रजोगुन स्वरूप; श्रोत्र औ वाक आकासके सत्वगुन रजोगुन स्वरूप; या रीतिसें **सारी सूछम सृष्टि अपंचीकृत भूत स्वरूप है.**

२७९ यह चिंतन करिके अपंचीकृत भूतनका बी लय चिंतन करै. पृथिवी जलका कार्य है, यातें जल स्वरूप है. तेजका कार्य जल, तेज स्वरूप है. तेज वायुका कार्य होनेतें वायु स्वरूप है. आकासका कार्य वायु, आकास स्वरूप है. तमोगुन प्रधान प्रकृतिका कार्य आकास, प्रकृति स्वरूप है.

औ मायाकी अवस्था विषेही प्रकृति है. यातें प्रकृति माया स्वरूप है. **एक वस्तुके प्रधान प्रकृति माया अविद्या अज्ञान ये नाम हैं.** सर्व कार्यकूं अपनेमें लीन करिके प्रलयमें स्थित उदासीन स्वरूपकूं **प्रधान** कहै हैं. औ सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुन प्रधान स्वरूपकूं **प्रकृति** कहै है. जैसे देस कालादिक सामग्री बिना दुर्घट पदार्थकी इंद्रजालसें उत्पत्ति होवै है, तहां इंद्रजालकूं माया कहै हैं. तैसे असंग अद्वितीय ब्रह्ममें इछादिक दुर्घट हैं, तिनकूं करै है. यातें **माया** कहै हैं. स्वरूपकूं आछादन करै है, यातें **अज्ञान** कहै है. ब्रह्म विद्यातें नास होवै है; यातें **अविद्या** कहै हैं; औ स्वतंत्र कदे बी रहै नही; किंतु चेतनके आश्रितही रहै है.

यातें सक्ति बी कहै हैं. इस रीतिसें प्रकृति आदिक प्रधानकेही भेद हैं; यातें प्रधानरूप हैं. सो प्रधान ब्रह्म चेतनकी सक्ति है. जैसे पुरुषमें सामर्थ्यरूप सक्ति पुरुषसें भिन्न नही; तैसे चेतनमें प्रधानरूप सक्ति ब्रह्मचेतनसें भिन्न नही. या प्रकारतें सर्व अनात्म पदार्थनका ब्रह्मविषे लय चिंतन करिके " सो अद्वय ब्रह्म मैं हूं" यह चिंतन करै.

२८० जाकूं महा वाक्य विचार कियेतें बी बुद्धिकी मंदतादिक किसी प्रतिबंधकतें अपरोछ ज्ञान होवै नही; ताकुं यह लय चिंतनरूप ध्यान कह्या है. **ध्यान औ ज्ञानका इतना भेद है:– ज्ञान** तौ प्रमान औ प्रमेयके आधीन है, विधि औ पुरुषकी इच्छाके आधीन नही; औ ध्यान विधिके तथा पुरुषकी इच्छा औ विस्वास तथा हठके आधीन है. जैसे प्रत्यछ ज्ञानमें प्रमान नेत्र औ प्रमेय घटादिक, तहां नेत्रका औ घटका संबंध हुयेतें पुरुषकी इछा बिना बी घटका प्रत्यछ ज्ञान होवै है; भाद्रपद सुद्ध चतुर्थीके दिन चंद्रदर्सनका निषेध है, विधि नही. औ पुरुषकूं यह इछा होवै है; मेरेकूं आज चंद्रदर्सन नही होवै. तौ बी किसी रीतिसें नेत्र प्रमानका जो प्रमेय चंद्रसें संबंध होय जावै, तौ चंद्रका प्रत्यछ ज्ञान अवस्यही होवै है. इस रीतिसें **प्रमान प्रमेयकै आधीन ज्ञान है**. विधि औ इछाके आधीन नही, औ सालिग्राम विष्णुरूप है, यह ध्यान करै, ताकूं उत्तम फल प्राप्त होवै है. वहां सास्त्र प्रमानसें विष्णुकूं तौ चतुर्भुज मूर्त्ति संष, चक्र, गदा, पद्म लछमी सहित जानै है. औ नेत्र प्रमानतें सालिग्रामकूं सिला जानै है. **तथापि** विधि विस्वास इछातें सालिग्राम विष्णु है; यह ध्यान होवै है. परंतु सो ध्यान नाना प्रकारका है. कहूं तौ अन्य वस्तुका अन्य रूपसें ध्यान, जैसे सालिग्रामका विष्णुरूपसें ध्यान; याकूं

प्रतीक ध्यान कहे हैं. औ वैकूंठलोकवासी विष्नुका संष चक्रादिक साहित चतुर्भुज मूर्त्ति रूपसें ध्यान है. तहां अन्यका अन्यरूपसें ध्यान नही. किंतु ध्येय रूपके अनुसार यह ध्यान है. बैकुंठवासी विष्नु-का स्वरूप प्रत्यछ तौ है नही; केवल सास्त्रसें जानिये है. औ सास्त्रनें संष चक्रादिक साहितही विष्नुका स्वरूप कह्या है. यातें ध्येय स्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है. **विधि विस्वास इछा बिना ध्यान होवे नही.** "यह उपासना करे" ऐसा पुरुषका प्रेरक वचन **विधि** कहिये है. ता वचनमें श्रद्धाकूं **विस्वास** कहे है. औ अंतःकरनकी कामना रूप रजोगुनकी वृत्ति **इछा** कहिये है. ध्यानके हेतु यह तीनि हैं; ज्ञानके नही. औ **ध्यान हठसें होवै है.** ज्ञानमें हठकी अपेछा नही. काहेतें, निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं **ध्यान** कहे हैं. तहां वृत्तिमें विछेप होवै तौ हठसें वृत्तिकी स्थिति करै. औ ज्ञानरूप अंतःकरनकी वृत्तिसें तत्काल आवरन भंग हुयेतें वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नही; यातें हठकी अपेछा नही. वैकुंठवासी चतुर्भुज विष्नुके ध्यानकी नांई "मैं ब्रह्म हूं" यह ध्यान बी ध्येयके अनुसार है; प्रतीक नही. परंतु यह अहंग्रह ध्यान है. ध्येय स्वरूपका अपनेसें अभेद करिके चिंतन **अहंग्रह ध्यान** कहिये है. जा पुरुषकूं अपरोछ ज्ञान नही होवे, औ वेदकी आज्ञा-रूप विधिमें विस्वास करिके हठतें निरंतर "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रह ध्यान करै, ताकूं बी ज्ञान प्राप्त होयके मोछकी प्राप्ति होवै है. १६७

२८१ और रीतिसें अहंग्रह-उपासना कहै हैं:—

सवैया छंद.

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको,

कह्यो सुरेस्वर श्रुति अनुसार;
अछर प्रनव ब्रह्म मम रूपसु,
यूं अनुलव निज मति गति धार;
ध्यान समान आन नहि याके,
पंचीकरन प्रकार विचार;
जो यह करत उपासन सो मुनि,
तुरित नसै संसार अपार. १६८

टीकाः—हे सिष्य, प्रनवरूप कहिये ओंकार स्वरूपका अहंग्रह ध्यान मांडुक्य प्रस्न आदिक श्रुतिके अनुसार सुरेस्वराचार्यने कह्या है; सो तूं कर. ताका संछेपतें प्रकार यह है:—प्रनव अछर ब्रह्मस्वरूप है. "सो प्रनवरूप ब्रह्म मैं हूं" या रीतिसें **अनुलव** कहिये छनमात्र अंतराय रहित निज मतिकी गति कहिये वृत्ति धार स्थित कर. याके समान आन ध्यान नही है. औ या ध्यानका **प्रकार** कहिये विसेष रीति सुरेस्वरकृत पंचीकरन नाम ग्रंथसें विचार. चतुर्थ पाद स्पष्ट.

२८२ **यद्यपि** प्रनव उपासना बहुत उपनिषदनमें **हैं; तथापि** मांडुक्य उपनिषदमें विसेष है. ताके व्याख्यानमें भाष्यकार औ आनंदगिरिनें ताकी रीति स्पष्ट लिषी है. सोई रीति वार्त्तिककारनें पंचीकरनमें लिषी है. **तथापि** तिन ग्रंथनके विचारनमें जिनकी बुद्धि समर्थ नही है, तिनके अर्थ **प्रनव उपासनाकी रीति हम लिषै हैं:**—दो प्रकारसें प्रनवका चिंतन उपनिषदनमें कह्या है. एक तो परब्रह्म रूपतें प्रनवका चिंतन कह्या है; औ दूसरा अपर ब्रह्मरूपतें कह्या है. निर्गुन ब्रह्मकूं **परब्रह्म** कहै हैं. सगुन

ब्रह्मकूं **अपर ब्रह्म** कहे हैं. परब्रह्म रूपतें प्रनवका चिंतन करै सो मोक्षकूं प्राप्त होवै है. औ अपर ब्रह्मरूपतें प्रनवका चिंतन करै, सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है. ऐसे निर्गुन सगुन भेदतें प्रनव उपासना दो प्रकारकी है. तामें,

२८३ निर्गुन उपासनाकी रीति लिखै हैं, सगुनकी नही. काहेतें, जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै, ताकूं निर्गुन उपासनातें बी कामनारूप प्रतिबंधकतें ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवै नही. किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवै है. तहां हिरन्यगर्भके समान भोगनकूं भोगिके ज्ञान होवै, तब मोक्ष होवै. औ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नही होवै ताकूं इस लोकमेंही ज्ञान होयके मोक्ष होवै है. इस रीतिसें सगुन उपासनाका फल बी निर्गुन उपासनाके अंतर्भूत है. यातें निर्गुन उपासनाका प्रकार कहे हैं:— जो कछु कारन कार्य वस्तु है, सो **ओंकार स्वरूप** है. यातें सर्व रूप ओंकार है. सर्व पदार्थनमें नाम औ रूप दो भाग हैं. तहां रूप भाग अपने अपने नाम भागसें न्यारा नही. किंतु नाम स्वरूपही रूप भाग है. काहेतें, पदार्थका रूप कहिये आकार, ताका नामसें निरूपन करिके ग्रहन वा त्याग होवै है. नाम जाने बिना केवल आकारतें व्यवहार सिद्ध होवै नही; यातें नामही सार है. औ आकारके नास हुयेतें बी नाम सेष रहै है. जैसे घटका नास हुयेतें मृत्तिका सेष रहै है. तहां घट मृत्तिकासें पृथक वस्तु नही; मृत्तिका स्वरूप है. तैसे आकारका नास हुयेतें मृत्तिकाकी नाईं सेष रहे जो नाम, तासें आकार पृथक नही; **नाम स्वरूपही आकार है**. किंवा जैसे घट सरावादिकनमें मृत्तिका अनुगत है, औ घट सरावादिक परस्पर व्यभिचारी हैं. यातें घट सरावादिक मिथ्या, तिनमें अनुगत मृत्तिका सत्य है. तैसे घट आकार अनेक

हैं, तिन सबका " घट " यह दो अछर नाम एक है. सो आकार परस्पर व्यभिचारी, औ सर्व घटके आकारनमें नाम एक अनुगत है. यातें मिथ्या आकार सत्य नामतें पृथक नही. इस रीतिसें सर्व पदार्थनके आकार अपने अपने नामसें भिन्न नही. किंतु नाम स्वरूपही आकार है. सो सारे नाम ओंकारसें भिन्न नही. किंतु ओंकार स्वरूपही नाम है. काहेतें, वाचक सब्दकूं नाम कहे हैं. औ लोक वेदके सारे सब्द ओंकारसें उत्पन्न हुये हैं. यह श्रुतिमें प्रसिद्ध है, संपूर्न कार्य कारन स्वरूप होवै हैं; यातें ओंकारके कार्य जो वाचक सब्दरूप नाम सो ओंकार स्वरूप है. इस रीतिसें रूप भाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नाम स्वरूप है. औ सर्व नाम ओंकार स्वरूप है. यातें सर्व स्वरूप ओंकार है.

२८४ जैसे सर्व स्वरूप ओंकार है, तैसे सर्व स्वरूप ब्रह्म है; यातें ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्मवाच्य है. वाच्यका औ वाचकका अभेद होवै है; यातें भी ओंकार ब्रह्मरूप है. औ विचार दृष्टितें जो अछर ब्रह्मविषे अध्यस्त है, ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानतें न्यारा होवै नही. यातें बी ओंकार ब्रह्म स्वरूप है. यातें ओंकारकूं ब्रह्म रूप करिके चिंतन करै.

२८५ ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासें बी अभेद चिंतन करै. काहेतें, आत्माका ब्रह्मसें मुख्य अभेद है. औ ब्रह्मके च्यारि पाद हैं; तैसे आत्माके बी च्यारि पाद हैं. पाद नाम भागका है. ताहीकूं अंस बी कहे हैं. विराट, हिरन्यगर्भ, ईश्वर, औ तत्पदका लछ्य ईस्वर साछी; ये च्यारि पाद ब्रह्मके हैं. विस्व, तैजस, प्राज्ञ, औ त्वंपदका लछ्य जीव साछी; ये च्यारि पाद आत्माके हैं. जीव साछीकूंही तुरीय कहे हैं.

समष्टि स्थूल प्रपंच सहित चेतन **विराट** कहिये है. व्यष्टि स्थूल अभिमानी **विस्व** कहिये है. विराटकी औ विस्वकी उपाधि स्थूल है; यातें विराटरूपही विस्व है; विराटतें न्यारा नही. **विराट रूप विस्वके सात अंग हैं.** स्वर्ग लोक मूर्ध है, सूर्य नेत्र है, वायु प्रान है, आकास धड है, समुद्रादिरूप जल मूत्र स्थान है, पृथिवी पाद है, जा अग्निमें होम करिये सो अग्नि मुष है. ये सात अंग विस्वके कहे हैं. मांडुक्यमें **यद्यपि** स्वर्ग लोकादिक विस्वके अंग बनै नही; **तथापि** विराटके अंग हैं. ता विराटसें विस्वका अभेद है. यातें विस्वके अंग कहे हैं.

तैसे **विराट विस्वके उनीस मुष हैं**:— पंच प्रान, पंच कर्म इंद्रिय, पंच ज्ञान इंद्रिय, च्यारि अंत:करन; ये उनीस मुषकी नाई भोगके साधन हैं; यातें **मुष** कहिये हैं. इन उनीसतें स्थूल सब्दादिकनकूं बाह्य वृत्ति करिके जागृत अवस्थाविषे भोगै है, यातें विराटरूप विस्व **स्थूलका भोक्ता** औ **बाह्य वृत्ति** कहिये है; औ **जागृत अवस्था वाला** कहिये है.

२८६ प्रानादिक उनीस जो भोगके साधन हैं, तिनविषे श्रोत्रादिक इंद्रिय, औ अंत:करन च्यारि, ये चतुर्दस अपने अपने विषय, औ अपने अपने देवताकी सहाय चाहै है. देवता विषयकी सहाय बिना केवल इनतें भोग होवै नही. यातें पंच प्रान औ **चतुर्दस त्रिपुटी** विराटरूप विस्वके मुष कहिये हैं. तिनके समुदायका नाम **त्रिपुटी** है.

सो त्रिपुटी इस रीतिसें कही है:— श्रोत्र इंद्रिय अध्यात्म है, औ ताका विषय सब्द अधिभूत है, दिसाका अभिमानी देवता अधिदैव है. या प्रकरनमें क्रिया सक्तिवाले औ ज्ञानसक्तिवाले इंद्रिय औ अंत:करन **अध्यात्म** कहिये है, तिनके विषय **अधिभूत**

कहिये है, औ तिनके सहायक देवता अधिदेव कहिये है. त्वचा इंद्रिय अध्यात्म है, ताका विषय स्पर्स अधिभूत है, वायु तत्वका अभिमानी देवता अधिदेव है. नेत्र इंद्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है, सूर्य अधिदेव है. रसना इंद्रिय अध्यात्म है, रस अधिभूत है, वरुन अधिदेव है. घ्रान इंद्रिय अध्यात्म है, गंध अधिभूत है, अस्विनीकुमार अधिदेव है. औ वार्त्तिककार सुरेस्वराचार्यने पृथिवीका अभिमानी देवता घ्रानका अधिदेव कह्या है, सोबी बनै है; काहेतें, पृथिवीसें घ्रानकी उत्पत्ति है, यातें पृथिवी अधिदेव कह्या है. औ सूर्यकी वडवाकी नासिकातें अस्विनी कुमारकी उत्पत्ति कही है. यातें नासिकाका अधिदेव कहू अस्विनी कुमारही कहै है. वाक इंद्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है, अग्निदेवता अधिदेव है. हस्त इंद्रिय अध्यात्म है, पदार्थका ग्रहन अधिभूत है, इंद्र अधिदेव है. पाद इंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत, विष्नु अधिदेव है. गुदा इंद्रिय अध्यात्म मलका त्याग अधिभूत, यम अधिदेव है. उपस्थ इंद्रिय अध्यात्म ग्राम्य धर्मके सुषकी उत्पत्ति अधिभूत है, प्रजापति अधिदेव है. मन अध्यात्म है, मननका विषय अधिभूत है, चंद्रमा अधिदेव है. बुद्धि अध्यात्म है, बोधव्य अधिभूत है, बृहस्पति अधिदेव है. ज्ञानका विषय बोधव्य कहिये है. अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है, रुद्र अधिदेव है. चित्त अध्यात्म है, चिंतनका विषय अधिभूत है, छेत्रज्ञ जो साछी सो अधिदेव है. ये चतुर्दस त्रिपुटी औ पंच प्रान ये उनीस विराटरूप विस्वके मुष है.

२८७ जैसे विराटतें विस्वका अभेद है, तैसे ओंकारकी प्रथम मात्रा जो अकार, ताका बी विराटरूप विस्वतें अभेद है. काहेतें, ब्रह्मके च्यारि पादनमें प्रथम पाद विराट है. औ आत्माके च्यारि

पादनमें प्रथम विस्व है; तैसे ओंकारकी च्यारि मात्रा रूप पाद-नमें प्रथम पाद अकार है. यातें प्रथम ता तीनूंमें समान धर्म होनेतें विस्व विराट अकारका अभेद चिंतन करै. जो सात अं-ग उनीस मुष विस्वके कहे, सोई:—

२८८ सात अंग औ उनीस मुष तैजसके बी जाननेकूं योग्य है. परंतु इतना भेद है:— विस्वके जो अंग औ मुष हैं; सो तौ ईस्वर रचित है. औ तैजसके जो इंद्रिय देवता विषय रूप त्रि-पुटी औ मूर्द्धादिक अंग सो मनोमय है. तैजसका भोग सूछम है. **यद्यपि भोग** नाम सुष अथवा दुषके ज्ञानका है, ताकेविषे स्थूलता औ सूछमता कहना बनै नहीं; **तथापि** बाह्य जो सब्दादिक वि-षय हैं; तिनके संबंधतें जो सुष अथवा दुषका साछात्कार, सो **स्थूल** कहिये हैं. औ मानस जो सब्दादिक विनके संबंधतें जो भोग होवै, सो **सूछम** कहिये हैं. इसी कारनतें विस्व तौ स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषे कह्या है. औ तैजस सूछमका भोक्ता कह्या है. काहेतें, तैजसके भोग्य जो सब्दादिक हैं, सो तौ मानस हैं; यातें सूछम हैं. औ तिनकी अपेछा करिके विस्वके भोग्य बाह्य सब्दा-दिक हैं; सो स्थूल हैं. औ विस्व बहिर प्रज्ञ है, तैजस अंतर प्रज्ञ है. काहेतें, जो विस्वकी अंतःकरनकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है, सो बाह-रि जावै है, औ तैजसकी नहीं जावै है.

२८९ जैसे विस्वका औ विराटका अभेद है. तैसे तैजसकूं बी हिरन्यगर्भरूप जानै. काहेतें, सूछम उपाधि तैजसकी है. औ सूछ मही हिरन्यगर्भकी है. यातें दोनूंवांकी एकता जानै. तैजस हिरन्य गर्भकी एकता जानके ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकारसें तिनका अभेद चिंतन करै. काहेतें, आत्माके च्यारि पादनमें द्वितीय पाद तैजस है, ब्रह्मके पादनमें हिरन्यगर्भ दूसरा पाद है. ओंकारकी

मात्रामें द्वितीय मात्रा उकार है. द्वितीय ता तीनूंमें समान धर्म है; यातें तीनूंकी एकता चिंतन करै.

२९०. औ प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै. काहेतें, प्राज्ञकी कारन उपाधि है; औ ईश्वरकी बी कारन उपाधि है. ईश्वर औ प्राज्ञ पादनमें तृतीय है. ओंकारकी तृतीय मात्रा मकार है. तीसरापना तीनूंमें समान धर्म है. यातें तीनूंकी एकता जानै. औ यह प्राज्ञ प्रज्ञान घन है. काहेतें, जागृत औ स्वप्नके जितने ज्ञान हैं, सो सुषुप्तिविषे **घन** कहिये एक अविद्यारूप होय जावै है. यातें **प्रज्ञान घन** कहिये है. औ **आनंदभुक** बी यह प्राज्ञ श्रुतिने कह्या है. काहेतें, अविद्यासें आवृत जो आनंद है, ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. यातें **आनंदभुक** कहिये है.

जैसे तैजस औ विश्वका भोग त्रिपुटीसें होवै है; तैसे **प्राज्ञके भोगकी बी त्रिपुटी कहिये है.** चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है, सो अध्यात्म है, अज्ञानसें आवृत जो स्वरूप आनंद, सो अधिभूत है, औ ईश्वर अधिदैव है. इस रीतिसें विश्व तौ **बहिरप्रज्ञ** है; औ तैजस **अंतरप्रज्ञ** है. औ प्राज्ञ **प्रज्ञान घन** है.

२९१. ऐसा जो तीनूंका भेद है, सो उपाधि करिके है. **विश्वकी स्थूल सुछम अज्ञान तीनि उपाधि हैं. औ तैजसकी सूछम अज्ञान दो उपाधि है. औ प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है.** इस रीतिसें उपाधिकी न्यूनता अधिकतासें तीनूंका भेद है. परमार्थ करिके **स्वरूपसें भेद** नही.

विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीनूंविषे अनुगत जो चेतन है, सो परमार्थसें तीनूं उपाधिके संबंधसें रहित है. तीनूं उपाधिका अधिष्ठान **तुरीय** है. सो बहिरप्रज्ञ नही; औ अंतरप्रज्ञ नही;

औ प्रज्ञानघन बी नहीं. कर्म इंद्रियका औ ज्ञानइंद्रियका विषय नही. औ बुद्धिका विषय नही. किसी सब्दका विषय नही. ऐसा जो तुरीय है; ताकूं परमात्माका चतुर्थ पाद ईस्वर साछी सुद्ध ब्रह्मरूप जानै.

२९२. इस रीतीसें दो **प्रकारका आत्माका स्वरूप** कह्या. एक तौ परमार्थ रूप है, औ एक अपरमार्थ रूप है. तीनि पाद तौ अपरमार्थरूप हैं, औ एक पाद तुरीय परमार्थरूप है. जैसे आत्माके दो स्वरूप हैं, तैसे **ओंकारके बी दो स्वरूप** हैं, अकार उकार मकार ये तीनि मात्रारूप जो वर्न है, सो तौ अपरमार्थ रूप है, औ तीनूं मात्राविषे व्यापक जो अस्ति भांति प्रियरूप अधिष्ठान चेतन है, सो परमार्थरूप है. जो ओंकारका परमार्थरूप है, ताकूं श्रुतिविषे **अमात्र** सब्द करिकें कह्या है. काहेतें, ता परमार्थ स्वरूप विषे मात्रा विभाग है नही. यातें **अमात्र** कहिये है. इस रीतिसें दो स्वरूपवाला जो ओंकार है, ताका दो स्वरूपवाले आत्मासें अभेद जानै.

व्यष्टि औ समष्टि जो स्थूल प्रपंच, ता सहित विस्व औ विराटका अकारसें अभेद जानै. आत्माके जो पाद हैं, तिन विषे विस्व आदि है. औ ओंकारकी मात्राविषे अकार आदि है. यातें दोनूं एक जानै. सूछम प्रपंच सहित जो हिरन्यगर्भरूप तैजस है, ताकूं उकाररूप जानै. तैजस बी दूसरा है, औ उकार बी दूसरा है. यातें दोनूंकूं एक जानै. कारन उपाधि सहित जो ईस्वररूप प्राज्ञ है, ताकूं मकाररूप जानै. जैसे ईस्वररूप प्राज्ञ तीसरा है, तैसे मकार बी तीसरा है, यातें ईस्वररूप प्राज्ञ औ मकारकूं एक जानै. तीनूंविषे अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है; ताकूं ओंकार वर्नकी तीनि मात्रा विषे अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, तासें

अभिन्न जानै. जैसे विश्वादिकविषे तूरीय अनुगत है, तैसे अकारादिक तीनि मात्राविषे अमात्र अनुगत है. यातें ओंकारके अमात्ररूपकूं औ तुरीयकूं एक जानै. इस रीतिसें आत्माके पाद औ ओंकारकी जो मात्रा है, तिनकी एकता जानिके लय चिंतन करै.

२९३. सो **लयचिंतन** कहिये है:— विश्वरूप जो अकार है, सो तैजसरूप उकारसें न्यारा नहीं; किंतु उकाररूप है. ऐसा जो चिंतन करना सो या स्थानमें **लय** कहिये है. ऐसाही और मात्राविषे बी जानि लेना. और जा उकारविषे अकारका लय किया है, ता तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है, ताकेविषे लय करै. औ प्राज्ञ रूप जो मकार है, ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताकेविषे लीन करै. काहेतें, स्थूलकी उत्पत्ति औ लय सूक्ष्मविषे होवै है. यातें विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजसरूप उकारमें लय बनै है. औ सूक्ष्मकी उत्पत्ति औ लय कारनमें होवै है. यातें तैजसरूप जो उकार है, ताका कारन प्राज्ञरूप जो मकार है; ताकेविषे लय बनै है. या स्थानविषे विश्व आदिकनके ग्रहनतें समष्टि जो विराट आदिक है, तिनका; औ अपनी अपनी जो त्रिपुटी है, तिन सर्वका ग्रहन जानना. जा प्राज्ञरूप मकारविषे उकार लय किया है, ता मकारकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताकेविषे लीन करै. काहेतें, ओंकारके परमार्थ स्वरूपका तुरीयसें अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है. औ सुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनूं कल्पित हैं. **जो जाकेविषे कल्पित होवै है, सो ताका स्वरूप होवै है.** यातें ईश्वर सहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इस रीतिसें जो ओंकारके परमार्थ स्वरूप अमात्रविषे सर्वका लय कीया है; "सो मै हूं" ऐसा एकाग्र चित्त होयके चिंतन करै. स्थावर

जंगमरूप, औ असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थ स्वरूप, सो मैं हूं. ऐसा चिंतन करनेसें ज्ञान उदय होवै है, यातें ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवाला यह **ओंकारका निर्गुन उपासन** है. सो सर्वसें उत्तम है.

२९४. जो पूर्व रीतिसें ओंकारके स्वरूपकूं जानै है, सो मुनि है. जो नही जानै है, सो मुनि नही. काहेतें, **मुनि** नाम मनन करनेवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है. जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नही, सो मुनि नही. यह मांडुक्य उपनिषदकी रीतिसें संछेपतें ओंकारका चिंतन कह्या है. और बी नृसिंह तापनी आदिक उपनिषदनमें याका प्रकार है. यह **ओंकारका चिंतन परम हंसोंका गोप्य धन है.** बहिरमुष पुरुषका या बिषे अधिकार नही; अत्यंत अंतर मुषका अधिकार है. गृहस्थका यामें अधिकार नही. धन पुत्र स्त्री संगादिक रहित परम हंसका अधिकार है.

२९५. पूर्व प्रकारतें ओंकारका ब्रह्मरूपतें ध्यान कियेतें ज्ञान द्वारा मोछ होवै है. परंतु जा पुरुषकी इस लोकके भोगनमें, अथवा ब्रह्म लोकके भोगनमें कामना होवै, तीव्र वैराग्य नही होवै, औ हठसें कामनाकूं रोकिके, धन पुत्रादिकनकूं त्यागिके, परम हंस गुरुके उपदेसतें ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै; ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमें प्रतिबंध है; यातें ज्ञान नही होवै है; किंतु ध्यान करतेही सरीर त्यागतें अनंतर अन्य सरीरकी प्राप्ति होवै. जो इस लोकके भोगनकी कामना रोकिके ध्यानमें लगा होवै. तौ इस लोकमें अत्यंत विभूतिवाले पवित्र सत्संगी कुलमें जन्म होवै है. तहां पूर्व कामनाकेविषें सारे भोग प्राप्त होवै हैं. औ पूर्व जन्मके ध्यानके संस्कारनतें फेरि विचारमें अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवै है.

तातें ज्ञान होयके मोछ होवै है.

२९६. औ ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमें लग्या होवै, तौ सरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावै है. तहां मनुष्यनकूं, पितरनकूं, देवनकूं दुर्लभ जो स्वतंत्रता है, ताके आनंदकों भोगै है. जितनी हिरन्यगर्भकी विभूति है, सो सारी सत्य संकल्पादिक विभूति इसकूं प्राप्त होवै है.

२९७. जा मार्गतें **ब्रह्मलोककूं जावै है, सो मार्गका क्रम यह है:—** जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामें तत्पर है, ताके मरन समय इंद्रिय अंत:करन यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जानेमें समर्थ नही. औ यमके दूत ताके समीप आवै नही, जो ताके लिंग सरीरकूं ले जावै. परंतु अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरन समय सरीरसें निकासिके अपने लोककूं ले जावै है. ता अग्नि लोकतें दिनका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतें सुक्ल पछका अभिमानी देवता अपने लोककूं ले जावै है. तिसतें आगे उत्तरायन जो षटमास है, तिनका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतें आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतें आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतें आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतें आगे सूर्य देवता लेजावै है. तिसतें आगे चंद्र देवता ले जावै है. तिसतें आगे विजलीका अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जावै है. तहां विजलीके लोकमें तिस उपासकके सामने हिरन्यगर्भकी आज्ञातें दिव्य पुरुष हिरन्यगर्भ लोकवासी हिरन्यगर्भ समान रूपताके लेनेकूं आवै है; सो पुरुष विजलीके लोकतें वरुन लोककूं ले जावै है. विजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है. वरुन लोकतें इंद्रलोककूं ले जावै है. औ वरुन देवता बी इंद्रलोक तांडी हिरन्यगर्भ

लोकवासी पुरुष औ उपासकके साथि रहै है. तिसतें आगे इंद्र देवता प्रजापतिके लोकतांडी दोनूंके साथि रहै है. तिसतें आगे प्रजापति तिन दोनूंके साथ ब्रह्मलोकनें जानिविषे समर्थ नही. यातें ब्रह्मलोकमें ता दिव्य पुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवै है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरन्यगर्भ है. सूछम समष्टिका अभिमानी चेतन **हिरन्यगर्भ** कहिये है; ताहीकूं **कार्यब्रह्म** कहै है. कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं **ब्रह्मलोक** कहै है.

२९८. **यद्यपि** पूर्व रीतिसें ओंकारकी उपासना सुद्ध ब्राह्मन रूप करिके कही है. सुद्ध ब्रह्मके उपासककूं सुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये; **तथापि** सुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतेंही होवै है. औ कामनारूप प्रतिबंधतें जाकूं ज्ञान हुया नही, ताकूं कार्य ब्रह्मकी सायुज्यरूप मोछ होवै है. ब्रह्मलोकमें प्राप्त जो उपासक है, ताकूं हिरन्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है. सत्यसंकल्प होवै है. जैसे सरीरकी इच्छा करै तैसाई उसका सरीर होवै है. जिन भोगनकी वांछा करै, सो सारे भोग संकल्पतेंही प्राप्त होवै है. जो एक समय हजार सरीरनसें जुदे जुदे भोगनकी इच्छा करै, तौ ताही समय हजार सरीर औ उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है. और बहुत क्या कहैं, जो कछु संकल्प करै, सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगतकी उत्पत्ति पालन संहार छोडिके और सारी विभूति ईस्वरके समान होवै है. याहीकूं **सायुज्य मोछ** कहै हैं. ऐसे हिरन्यगर्भके समान हुवा बहुत काल संकल्प सिद्ध दिव्य पदार्थनकूं भोगिके प्रलय कालमें जब हिरन्यगर्भके लोकका नास होवै तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेह मोछकी प्राप्ति होवै है.

२९९. जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्मलोककी प्राप्ति द्वारा मोछकूं प्राप्त होवै है; तैसें और बी उपनिषदनमें

ब्रह्मकी उपासना कही है, तिनतें यही फल होवै है. परंतु **अहंग्रह उपासना बिना और उपासनातें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नही.** यह वार्त्ता सूत्रकारनें औ भाष्यकारनें चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है. जैसे नर्बदेस्वरका सिवरूपतें, औ सालग्रामका विष्नुरूपतें ध्यान कह्या है, सो प्रतीक ध्यान है, अहंग्रह नही. औ मनका ब्रह्मरूपतें, आदित्यका ब्रह्मरूपतें ध्यान कह्या है, सो बी प्रतीक ध्यान है, अहंग्रह नही. तिनतें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नही. सगुन अथवा निर्गुन ब्रह्मकूं अपनेतें अभेद करिके चिंतन करै, ताकूं **अहंग्रह ध्यान** कहै हैं. ताहीतें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है.

३००. पूर्व कह्या जो मार्ग है ताकूं **उत्तरायन मार्ग** कहै हैं; औ **देवमार्ग** बी कहै है. ता देवमार्गतें **ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावै है. तिनकूं फेरी संसार नही होता.** किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवै है. तहां ज्ञानके साधन जो गुरु उपदेसादिक हैं, तिनकी बी अपेछा नही. किंतु ब्रह्मलोकमें गुरु उपदेसादिक साधन विनाहीं ज्ञान होवै है. काहेतें ब्रह्मलोकमें तमोगुन रजोगुनका तौ लेस बी नही. केवल सत्वगुन प्रधान वह लोक है. तमोगुन नही यातें जडता आलस्यादिक नही. रजोगुन नही यातें काम क्रोधादिरूप रजोगुनका कार्य विछेप नही; केवल सत्वगुन है. यातें सत्वगुनका कार्य ज्ञानरूप प्रकास ता लोकमें प्रधान है.

३०१ ओंकारकी ब्रह्मरूपतें जो पूर्व उपासना करी है, तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इस रीतिसें चिंतन किया है:- **स्थूल** उपाधि सहित विराट विस्व चेतन **अकारका वाच्य** है. सूछम उपाधि सहित चेतन हिरन्यगर्भ तैजस **उकारका वाच्य** है. कारन उपाधि सहित चेतन ईस्वर प्राज्ञ **मकारका वाच्य है.** ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन

किया है, ताकी ब्रह्मलोकमें स्मृत्ति होवै है. औ सत्वगुन प्रभावतें ऐसा विवेचन होवै है:- स्थूल उपाधि करिके चेतनमें विराटपना औ विस्वपना प्रतीत होवै है. स्थूल समष्टिकी दृष्टितें विराटपना औ स्थूल व्यष्टिकी दृष्टितें विस्वपना है. औ समष्टि व्यष्टि स्थूलकी दृष्टि विना विराटभाव औ विस्वभाव प्रतीत होवै नही. किंतु चेतन मात्रही प्रतीत होवै है. तैसे सूछम उपाधि सहित हिरन्यगर्भ तैजस चेतन उकारका वाच्य है. तहां समष्टि सूछम उपाधिकी दृष्टितें चेतनमें हिरन्यगर्भता, औ व्यष्टि सूछम उपाधिकी दृष्टितें तैजसता प्रतीत होवै है. सूछम उपाधिकी दृष्टिविना हिरन्यगर्भता औ तैजसता प्रतीत होवै नही. तैसे मकारका वाच्य ईस्वर प्राज्ञ है. तहां समष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टितें चेतनमें ईस्वरता, औ व्यष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टितें चेनतमें प्राज्ञता प्रतीत होवै है. अज्ञान उपाधिकी दृष्टिविना ईस्वरता औ प्राज्ञता प्रतीत होवै नही. **जो वस्तु जाकेविषे अन्यकी दृष्टितें प्रतीत होवै, सो ताकेविषे परमार्थसे होवै नही. जो जाका रूप अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवै, सो ताका परमार्थ रूप होवै है.** जैसे एक पुरुषमें पिताकी दृष्टितें पुत्रता, औ दादाकी दृष्टितें पौत्रतादिक रूप भान होवै है, सो परमार्थसे नही. पुरुषका पिंडही परमार्थ है. तैसे स्थूल सूछम कारन उपाधिकी दृष्टितें जो विराट विस्वादिकरूप भान होवै है, सो मिथ्या है; चेतन मात्रही सत्य है. सो चेतन सर्व भेद रहित है. काहेतें, विराट औ विस्वका जो भेद है, सो उपाधि तौ दोनूंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टि उपाधि विराटकी, औ व्यष्टि उपाधि विस्वकी, सो समष्टि व्यष्टि उपाधितें तिनका भेद है. यातें स्वरूपतें भेद नही. तैसे तैजसका हिरन्यगर्भतें भेद बी समष्टि व्यष्टि उपाधितें है; स्वरूपतें नही.

वैसे ईस्वरतें प्राज्ञका भेद बी समष्टी व्याष्टि उपाधिके भेदतें है, स्वरूपतें नही. ऐसे प्राज्ञका ईस्वरतें अभेद, औ तैजसका हिरन्यगर्भतें अभेद, तथा विस्वका विराटतें अभेद है. या प्रकारतें स्थूल उपाधिवालेका सूछम उपाधि वालेतें, वा कारन उपाधि वालेतें भेद नही. काहेतें स्थूल सूछम कारन उपाधिकी दृष्टि त्यागेतें चेतन स्वरूपमें किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवै नही. औ अनात्मासें बी चेतनका भेद नही. काहेतें, अनात्म देहादिक अविद्या कालमें प्रतीत होवै हैं; परमार्थसें नही. तिनका बी चेतनसें भेद बनै नही. ऐसे सर्व भेद रहित असंग निर्विकार नित्यमुक्त ब्रह्म रूप आत्मा **ओंकारका लछ स्वयंप्रकास रूप** तिस उपासककूं भान होवै है. तातें **हिरन्यगर्भ लोकवासीकूं संसार होवै नही.**

३०२ **यद्यपि** महावाक्यके विवेक विना ज्ञान होवै नही, **तथापि** ओंकारका विवेकही महावाक्यका विवेक **है.** स्थूल उपाधि सहित चेतन **अकारका वाच्य** स्थूल उपाधिकूं त्यागिके चेतन मात्रका **अकारका लछ्य,** तैसे सूछम उपाधि सहित चेतन **उकारका वाच्य,** सूछम उपाधिकूं त्यागिके चेतन मात्र **लछ्य,** कारन उपाधि सहित चेतन **मकारका वाच्य,** कारन उपाधिकूं त्यागिके चेतन मात्र लछ्य. इस रीतिसें उपाधि सहित विस्वादिक अकारादि मात्राके वाच्य,औ उपाधि रहित चेतन सर्व मात्राके लछ्य है. तैसे नाम रूप सकल उपाधि सहित चेतन **ओंकार वर्नका वाच्य है.** औ नाम रूप सकल उपाधि रहित चेतन **ओंकार वर्नका लछ्य** है. ऐसे **ओंकारका औ महावाक्यनका अर्थ एकही** है. यातें ओंकारके विवेकतें **अद्वैत** ज्ञान होवै है. ऐसे आचार्यके मुषतें श्रवन करिके अदृष्ट नाम जो मध्यम सिष्य सो उपासनामें प्रवृत्त होयके ज्ञान द्वारा परम पुरुषार्थ मोछकूं प्राप्त

हुवा. १६८.

२०३. निर्गुन उपासनामें जाका अधिकार नही ताकूं कर्तव्य कहै हैं.

सवैया छंदः

जो यह निर्गुन ध्यान न व्है तौ,
सगुन ईस करि मनको धाम;
सगुन उपासन हू नहि व्है तौ,
करि निष्काम कर्म भजि राम;
जो निष्काम कर्म हू नहि ;,
तौ करिये सुभ कर्म सकाम;
जो सकाम कर्महू नहि होवै,
तौ सठ वार वार मरि जाम. १६९.

दोहाः

ओंकारको अर्थ लषि, भयो कृतार्थ अदृष्टि;
पढै जु याहि तरंग तिहि; दादू करहु सुदृष्टि. १७०

इति श्रीगुरु वेदादि व्यावहारिक प्रतिपादन मध्यमाधिकारी साधन वर्नन नाम पंचम स्तरंग

समाप्त. ५

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्री विचार सागरे.

षष्ठस्तरंग प्रारंभ.

अथ गुरु वेदादि साधन मिथ्या वर्ननं

३०४ दोहा.

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्न समान;
यूं सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान. १

टीका:— चतुर्थ तरंगमें उत्तम अधिकारीकूं, उपदेसका प्रकार कह्या, पंचम तरंगमें मध्यमकूं कह्या; या तरंगमें कनिष्ट अधिकारीकूं उपदेसका प्रकार कहै हैं:—जाकूं संका बहुत उपजै, वाकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह **कनिष्ट अधिकारी** है. यह तरंग युक्तिप्रधान है; यातें सुने अर्थमें जाकूं कुतर्क उपजैं, ताकूं इस तरंगका उपयोग है. कुतर्क दूषित बुद्धि **कनिष्ट अधिकारी** होवै है. ताकूं उपदेसका प्रकार या तरंगमें है. पहले तरंगमें प्रनव उपासना औ जगतकी उत्पत्ति निरूपनसें पूर्व यह कह्या:— जो चेतनसें भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य **अनात्म** कहिये हैं. सो अनात्म पदार्थ सारे स्वप्नकी नाई मिथ्य है. इस वार्ताकूं सुनिके दोनूं भायूंकूं प्रश्नतें उपराम देषिके,

३०५ तर्कदृष्टि प्रश्न करै है.

दोहा.

पहिली जानै वस्तुकी, स्मृति स्वप्नमें होय ;

जागृतमें अज्ञात अति, ताहि लषै नहि कोय. २

टीका:– पूर्व जो अत्यंत अज्ञात पदार्थ है, ताका स्वप्नमें ज्ञान होवै नही. किंतु जागृतमें जाका अनुभव ज्ञान होवै, ताकी स्वप्नमें स्मृति होवै है. यातें स्मृति ज्ञानके विषय जागृतके पदार्थ सत्य होनेतें तिनका स्वप्नमें स्मृतिरूप ज्ञान बी सत्य है. यातें स्वप्नके दृष्टांतसें जागृतके पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवै नही.

३०६ अन्य प्रकारतें स्वप्न ज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करै हैं.

दोहा

अथवा स्थूलहि लिंग तजि, बाहरि देषत जाय;
गिरि समुद्र वन वाजि गज, सो मिथ्या किहिं भाय. ३

टीका:– अथवा कहिये और प्रकारतें स्वप्नका ज्ञान, औ ताके विषय पदार्थ सत्य हैं; मिथ्या नही. कयहेतें, स्वप्न अवस्थामें स्थूल सरीरकूं त्यागिके लिंग सरीर बाहरि निकसिके साचे गिरि समुद्रादिकनकूं देषै है; यातें स्वप्न मिथ्या नही.

३०७ उतर दोहा.

यह हस्ती आगे षरो, ऐसो होवै ज्ञान;
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान. ४

टीका:– पूर्व काल संबंधी पदार्थका ज्ञान स्मृति होवै है. जैसे पूर्व देषे हस्तिकी "सो हस्ति" ऐसी स्मृति होवै है; औ "यह हस्ति सन्मुष स्थित है." ऐसा ज्ञान स्मृति नही; किंतु प्रत्यक्ष कहिये हैं. औ स्वप्नमें तौ "यह हस्ति आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है," ऐसा ज्ञान होवै है. यातें जागृतमें

देषे पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नही. किंतु हस्ति आदिकनका प्रत्यछ ज्ञान होवै है.

और जो ऐसे कहैं:— "जागृतमें जाने पदार्थनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवै है, अज्ञात पदार्थका ज्ञान नही होवै, यातें जागृत पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतें स्वप्नके ज्ञानकी उत्पति होवै है. संस्कार जन्य ज्ञान स्मृति कहिये है. यातें स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है." सो संका बनै नही. काहेतें, प्रत्यछ ज्ञान दो प्रकारका होवै है. एक अभिज्ञानरूप प्रत्यछ होवै है, दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यछ होवै है. केवल इंद्रिय संबंधतें जो ज्ञान होवै, सो अभिज्ञा प्रत्यछ कहिये है. जैसे नेत्रके संबंधतें हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञा प्रत्यछ है. औ पूर्व ज्ञानके संस्कारनतें औ इंद्रिय संबंधतें जो ज्ञान होवै, सो प्रत्यभिज्ञा प्रत्यछ कहिये है. जैसे पूर्व देषे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवै, सो प्रत्यभिज्ञा प्रत्यछ कहिये है. तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार औ हस्तीसें नेत्रका संबंध, प्रत्यभिज्ञा प्रत्यछका हेतु है. यातें "संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवै है," यह नियम नही. किंतु प्रत्यभिज्ञा प्रत्यछ बी संस्कारजन्य होवै है. परंतु इंद्रिय संबंध विना केवल संस्कार जन्य ज्ञान होवै सो स्मृति ज्ञान कहिये है. स्वप्नमें हस्ती आदिकनका ज्ञान केवल संस्कारजन्य नही, किंतु निद्रारूप दोष जन्य है. औ हस्ती आदिकनकी नाई स्वप्नमें कल्पित इंद्रिय बी हैं; यातें इंद्रिजन्य हैं. यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साछीभाष्य हैं, इंद्रिजन्य ज्ञानके विषय नही. तथापि अविवेकीकी दृष्टितें स्वप्नका ज्ञान इंद्रिय जन्य कहिये है. इस रीतिसें स्वप्नका ज्ञान जागृतके पदार्थनकी स्मृति नही. औ

निद्रासें जागिके पुरुष ऐसे कहै है:—"मैं स्वप्नमें हस्ती आदिकनकूं देषता भया" जो हस्ती आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति होवै

तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये " मैं स्वप्नमें हस्ती आदिकनकूं स्मरन करता भया " ऐसे कोई नही कहता, यातें जाग्रतके पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नही. औ " जाग्रतमें जो देषे सुने पदार्थ हैं, तिनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवै " यह नियम नही. किंतु जाग्रतमें अज्ञात पदार्थनका वी स्वप्नमें ज्ञान होवै है. कदाचित स्वप्नमें ऐसे विलछन पदार्थ प्रतीत होवै हैं, जो सारे जन्मविषे कदी देषे सुने होवै नही, यातें तिनका ज्ञान स्मृति नही.

यद्यपि " इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृतिके हेतु हैं, " यह नियम नही. किंतु अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनतें वी स्मृति होवै है. काहेतें, अनुकूल ज्ञानतें प्रवृत्ति होवै है. अनुकूल ज्ञान विना प्रवृत्ति होवै नही. यातें बालककी स्तन पानमें जो प्रथम प्रवृत्ति होवै है, ताका हेतु बालककूं वी " स्तन पान मेरे अनुकूल हैं " ऐसा ज्ञान होवै है. तहां अन्य जन्मविषे जो स्तन पानमें अनुकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनतें बालककूं प्रथम अनुकूलताकी स्मृति होवै है. यातें जन्मांतरके ज्ञान संस्कारनतें वी स्मृति होवै है. तैसे इस जन्मविषे अज्ञात पदार्थनकी वी अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनतें स्वप्नविषे स्मृति संभवै है तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमें ऐसे प्रतीत होवै हैं; जिनका जाग्रतमें किसी जन्मविषे ज्ञान संभवै नहीं. जैसे अपने मस्तक छेदनकूं आप नेत्रनसें स्वप्नमें देषै हैं, तहां अपना मस्तक छेदन नेत्रनसें जाग्रतमें देषै नही. यातें जाग्रत पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतें स्वप्नमें स्मृति नही. ऐसे स्वप्नकूं स्मृतिरूप षंडनमें अनेक युक्ति ग्रंथकारोंनें कही हैं. परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेमें पूर्व उक्त दूषन अति प्रबल हैं. जो स्मृति ज्ञानका विषय सन्मुष प्रतीत होवै नही, औ स्वप्नके हस्ती आदिक सन्मुष प्रतीत स्वप्नकालमें होवै हैं; यातें हस्ती

आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति नही.

३०८. "लिंग सरीर बाहरि निकसिके साचे गिरि समुद्रादिकनकूं देषै है." याका उत्तरः—

दोहा.

बाहरि लिंग जु नीकसै, देह अमंगल होय;
प्रान सहित सुंदर लसै, यातें लिंगहि जोय. ५.

टीकाः— जो स्थूल सरीरतें निकासिके लिंग सरीर बाहरि साचे गिरि समुद्रादिकनकूं देषै, तौ लिंग सरीरके निकसनेतें जैसे मरन अवस्थामें सरीर भयंकर रूप प्रतीत होवै हैं, तैसे स्वप्न अवस्था विषे बी लिंगके अभावतें स्थूल सरीर **अमंगल** कहिये भयंकर हुवा चाहिये; तैसे प्रान रहित मृतक समान हुवा चाहिये. औ स्वप्न अवस्थामें ऐसा होवै नही. किंतु स्वप्न अवस्थामें स्थूल सरीर प्रान सहित होवै है, औ जाग्रतकी नाई **सुंदर** कहिये मंगलरूप होवै है. यातें स्थूल सरीरके बाहरि लिंग सरीर स्वप्नावस्थामें निकसै नही. औ

जो ऐसे कहैंः— स्वप्न अवस्थामें प्रान तौ जावै नही, किंतु अंतःकरन औ इंद्रिय बाहरि पर्वतादिकनमें जायके तिनकूं देषै है. बाहरि नही जावै. यातें स्थूल सरीर मरन अवस्थाके समान भयंकार होवै नही. औ प्रानका बाहरि जानेका कुछ प्रयोजन बी नही. काहेतें, प्रानमें ज्ञानसक्ति नहीं; किंतु क्रियासक्ति है.; यातें बाहरिके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमें सामर्थ्य है, सोई जावै है. ज्ञानसक्ति अंतःकरन औ ज्ञान इंद्रियनमें है. प्रानकी नाई कर्म इंद्रियनमें बी ज्ञानसक्ति नहीं; क्रियासक्ति है. यातें प्रान औ कर्म इंद्रिय सरीरमें रहै हैं. यातें मरन निमित्ततें दाहा-

दिकनकीरिछा होवै है. औ बाहरि अंत:करन ज्ञान इंद्रिय जावै है साचे पर्वतादिकनकूं देषिके प्रान औ कर्म इंद्रियनके समीप आवै है; सोबी बनै नही. काहेतें स्थूल सूछम समाजमें सर्वका स्वामी प्रान है. प्रान बिना सरीरकूं देषिके छनमात्र बी रहने नही देते. बाहरि लेजावै है, दाह करै है; स्पर्सतें स्नान करै है. यातें स्थूल सरीरका सार प्रान है. तैसे सूछम सरीरमें बी प्रधान प्रान हैं.

प्रान इंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठता विवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या, हे भगवन्, हमारेविषे कौन श्रेष्ठ है? तब प्रजापतिने कह्या; तुम सारे स्थूल सरीरमें प्रवेस करिके एक एक निकसते जावो, जिसके निकसेतें सरीर अमंगलरूप होईके गिरि पडै, सो तुमारेमें श्रेष्ठ है. प्रजापतिके वचनतें नेत्रादिक इंद्रियनतें एक एकके अभावतें अंधादिरूप सरीरकी स्थिति देषि, औ प्रानके निकसेनेका उद्योग करतेही सरीर गिरनै लगा, तब सर्वने यह निश्चय किया. हमारा सर्वका स्वामी प्रान है. इस कारनतें जितनें सरीरमें प्रान रहै, उतने रहै है. सरीरतें प्रानके निकसतेंही सारे निकस जावै हैं. यातें सूछम समाजका राजाकी नाई प्रानही प्रधान हैं. ताके निकसे बिना अंत:करन ज्ञान इंद्रिय बाहरि निकसै नही. किंवा,

अंत:करन औ ज्ञान इंद्रिय भूतनके सत्वगुनके कार्य हैं. तिनमें ज्ञान सक्ति है; क्रिया सक्ति नही. प्रानमें क्रिया सक्ति है ताके बलतें मरन समै लिंग सरीर इस स्थूलकूं त्यागिके लोकांतरकूं जावै है. औ प्रानकेही बलतें इंद्रियद्वारा अंतकरनकी वृत्ति बाहरि घटादिकनके समीप जावै है. औ प्रानके सहारे बिना अंत:करनादिकनका बाहरि गमन संभवै नही. इसी कारनतें योग सास्त्रमें कह्या है:— " प्रान निरोध बिना मनका निरोध होवै नही. प्रानके

संचारतें मनका संचार होवै है. प्रान निरोधतें मनका निरोध होवै है." यातें मनका निरोधरूप जो राजयोग ताकी जिसकूं इच्छा होवै, सो प्रान निरोधरूप हठ योगका अनुष्ठान करै; यातें भी प्रानके आधीन अंतःकरनका गमन है. ताके निकसे बिना अंतःकरन ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसै नही. औ स्वप्न अवस्थामें स्थूल सरीर प्रान समेत प्रतीत होवै है. यातें "बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं स्वप्नमें देषै है;" यह संभवै नही. किंवा

कोई पुरुष अपने संबंधीसें स्वप्नमें मिलीके जो व्यवहार करै, तो जागिके वह संबंधी मिलै, तब ऐसे नही कहता जो रात्रिकूं हम मिलेथे. औ अमुका व्यवहार कियाथा. औ पूर्वपच्छकी रीतिसें तो बाहरि निकसिके ता संबंधीसें मिलिके व्यवहार साचा किया है. ता मिलनेका औ व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये. औ मिले जब संबंधीने कह्या चाहिये, औ सिद्धांतमें तो संबंधी औ ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है. किंवा,

जो बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं देषै, तो रात्रिमें सोया पुरुष हरिद्वारमें मध्यानके सूर्यतें तपे महल गंगातें पूर्व, औ नील पर्वत गंगातें पश्चिम देषै है. तहां रात्रिमें मध्यानका सूर्य नही, गंगातें पूर्व दिसामें हरिद्वार पुरी नही; औ गंगातें पश्चिम नील पर्वत नही. यातें बी साचे पदार्थनका देषना स्वप्नमें असंभव है. औ जागृतकी स्मृति, अथवा ईस्वरकृत पर्वतादिनका बाहरि निकसिके स्वप्नमें ज्ञान होवै है; इन दोनूं पच्छनका निराकरन किया.

३०९ सिद्धांत कहै हैंः--दोहाः

यातें अंतर ऊपजै, त्रिपूटी सकल समाज;
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमान सिरताज.

टीका:—जागृतके पदार्थनकी स्मृति, औ बाहरि लिंगका निकसना तौ संभवै नही. **तथापि** जागृतकी नांई ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमें प्रतीत होवै है. यातें कंठकी नाडीके अंतरही सब कुछ उत्पन्न होवै है. सब प्रमानका **सिरताज** कहिये प्रधान जो वेद है, तानें यह कह्या है:—उपनिषदमें यह प्रसंग है; जागृतके पदार्थ स्वप्नमें नही प्रतीत होवै हैं. किंतु रथ औ घोडे तथा मार्ग, तैसें रथमें बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवै हैं. यातें पर्वत समुद्र नदी बन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र **जो कुछ स्वप्नमें दीखै है, सो नवीन उपजै हैं.** जो स्वप्नमें पर्वतादिक नही होवै, तौ तिनका प्रत्यक्ष ज्ञान स्वप्नमें होवै है सो नही हुवा चाहिये. काहेतें, विषयतें इंद्रियका संबंध, वा अंत:करनकी वृत्तिका संबंध, **प्रत्यक्ष ज्ञानका हेतु है.** यातें पर्वतादिक विषय, औ तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय, तथा अंत:करन, सारे अंतर उत्पन्न होवै हैं.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ सुक्ति रजतादिकनकी नांई साक्षीभास्य हैं, अंत:करन इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमें उपयोग नही; यातें ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं, तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य है, ज्ञाता ज्ञान औ इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नही. **तथापि** जैसे स्वप्नमें पर्वतादिक प्रतीत होवै हैं, तैसे इंद्रिय अंत:करन प्रान सहित स्थूल सरीर बी स्वप्नमें प्रतीत होवै है. यातें तिनकी बी उत्पत्ति मानी चाहिये. किंवा,

स्वप्नके पदार्थनविषे नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है. सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिक पदार्थनविषे बनै नही. काहेतें, **सम सत्तावाले पदार्थही आपसमें साधक बाधक होवै हैं.** यह पंचम तरंगमें प्रतिपादन करी है. यातें व्यावहारिक नेत्रादिक सरीरमें है औ, तिनतें स्वप्नके पदार्थन

की विषय सत्ता होनेतें तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादि-कनकूं बनै नही. किंवा व्यावहारिक जो इंद्रियं हैं, सो अपने अपने गोलकूंकूं त्यागिके कार्य करनमें समर्थ होवैं नही. औ स्वप्न अवस्थामें हस्त पाद वाकके गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीपैं हैं; औ हस्तमें द्रव्य ग्रहन करिके पुकारता धावन करै है. यातें स्वप्नमें इंद्रियनकी उत्पत्ति अवस्य मानी चाहिये. तैसे सुष दुष औ तिनका ज्ञान, तथा सुष दुष ज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमें प्रतीत होवै है. औ बिना हुये पदार्थकी प्रतीति होवै नही. यातें सारा त्रिपुटी समाज स्वप्नमें उत्पन्न होवै है.

अनिर्वचनीय ख्यातिकी यही रीति है:— **जितने भ्रमज्ञान हैं तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं.** विषय बिना कोई ज्ञान होवै नही, **यह सिद्धांत है.** और शास्त्रनके मतमें तौ अन्य पदार्थका अन्य रूपतें भान होवै सो **भ्रम** कहिये है. सिद्धांतमें तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान होवै है. यातें भ्रम स्थलमें बी विषयकी उत्पत्ति अवस्य होवै है. विषय बिना ज्ञान होवै नही. इस रीतिसें स्वप्नमें त्रिपुटीकी प्रतीति होनेतें सारा समाज उत्पन्न होवै है.

३१० याकिविषे **ऐसी संका होवै है:**— स्वप्नके जो पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवै तौ जैसे स्वप्न दृष्टांतसें जागृतके पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमें कहे हैं; तैसे जागृतके पदार्थनकी नाई उत्पत्तिवाले होनेतें स्वप्नके पदार्थही सत्य हुये चाहिये. औ स्वप्नके प्रती पदार्थनकी उत्पत्ति नही मानैं तब यह दोष नही. काहेतें, जागृतके पदार्थ तौ उत्पन्न हुये प्रतीत होवै हैं. औ स्वप्नमें पदार्थ बिना हुये प्रतीत होवै हैं. यातें स्वप्नमें बिना हुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवै है. तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य

नही; ता

संकाका समाधानः- दोहा.

साधन सामग्री विना, उपजे झूठ सु होय;
विन सामग्री ऊपजै, यूं तिहि मिथ्या जोय. ७

टीका:— जिस वस्तुकी उत्पत्तिमें जितना देस कालादि सामग्री **साधन** कहिये कारन है, उतनी सामग्री विना उपजे सो **मिथ्या** कहिये हैं. औ स्वप्नके हस्ती आदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देस काल है नही. बहुत कालमें औ बहुत देसमें उपजने योग्य हस्ती आदिक छन मात्र कालमें सूछम कंठ देसमें उपजे हैं; यातें मिथ्या हैं. यद्यपि स्वप्न अवस्थामें काल देस बी अधिक प्रतीत होवै है, तथापि अन्य पदार्थनकी नाई स्वप्नमें अधिक काल औ अधिक देस बी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. काहेते, विषय विना प्रत्यछ ज्ञान होवै नही. औ स्वप्नमें अधिक देस कालका ज्ञान होवै है. व्यावहारिक देस काल न्यून है. यातें प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. परंतु स्वप्न अवस्थामें उपजे जो प्रातिभासिक देस काल, सो स्वप्न अवस्थाके हस्ती आदिकनके कारन नही. काहेतें कारन होवै सो पहली उपजै है. औ कार्य पाछे उपजै है. स्वप्नके देस काल औ हस्ती आदिक एकही समयमें होवै हैं. यातें तिनका कार्य कारन भाव बनै नही. औ व्यावहारिक देस काल न्यून हैं. हस्ती आदिकनके योग्य नही, यातें देस काल रूप, सामग्री विना उपजे हैं. यातें स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. और बी मातासें आदि लेके हस्ती आदिकनकी सामग्री स्वप्नमें नही है. यद्यपि स्वप्नमें प्रानी पदार्थनके माता पिता बी प्रतीत होवै हैं; तथापि स्वप्नके माता पिता पुत्रकी उत्पत्तिके कारन नही, काहेतें

माता पिता औ पुत्र एक छनमें साथ उपजे हैं, यातें तिनका कार्य कारन भाव नही. जा निद्रा सहित अविद्यासें स्वप्नके पदार्थ उपजे हैं; सोई अविद्या तिन पदार्थनविषे मातापना पितापना औ पुत्रपना उपजावै है. इस रीतिसें स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमें और कोई सामग्री नही; किंतु अविद्याही निद्रारूप दोष सहित कारन है. जो दोष सहित अविद्यासें जन्य होवै, सो सुक्ति रजतकी नाई मिथ्या होवै है. यातें स्वप्नके पदार्थ सत्य नही मिथ्या हैं. तिनका उपादान कारन अंतःकरन है. अथवा साछात अविद्याही तिनका उपादान कारन है. पहले पछमें साछी चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, औ दूसरे पछमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. इस रीतिसें अंतःकरनका अथवा अविद्याका परिनाम, औ चेतनका विवर्त स्वप्न है.

११२. याकेविषे **ऐसी संका होवै है:**— दूसरे पछमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या, औ अविद्या उपादान कारन कही. तहां अधिष्ठान ज्ञानसें कल्पितकी निवृत्ति होवै हैं. औ स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है. यातें ब्रह्मज्ञान बिना अज्ञानीकूं जागरनमें स्वप्नकी निवृत्ति नही हुई चाहिये.

११३ **अन्य संका:**— जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म, औ उपादान कारन अविद्या है; तैसे वेदांत सिद्धांतमें **जागृतके व्यावहारिक पदार्थनका बी अधिष्ठान ब्रह्म है. औ उपादान कारन अविद्या है.** यातें जागृतके पदार्थनकूं **व्यावहारिक** कहे हैं; औ स्वप्नकूं **प्रातिभासिक** कहे हैं. ऐसा भेद नही हुवा चाहिये. काहेतें, दोनूंका अधिष्ठान ब्रह्म है; औ उपादान कारन अविद्या है. यातें जागृत स्वप्न दोनूं व्यावहारिक हुये चाहिये; अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहिये.

३१४ सो दोनूं **संका बनै नही:**— काहेतें, प्रथम संकाका **यह समाधान है:**— निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है. यह पूर्व व्याप्ति निरूपनमें कही है. कारन सहित कार्यका विनासरूप **अत्यंत निवृत्ति** तौ स्वमकी जागृतमें ब्रह्मज्ञान विना बनै नही, परंतु दंडके प्रहारतें जैसे घटका मृत्तिकामें लय होवै है; तैसे स्वमकी हेतु जो निद्रा दोष ताके नासतें, वा स्वमकी विरोधी जागृतकी उत्पत्तितें, अविद्यामें **लयरूप निवृत्ति** स्वमकी ब्रह्मज्ञान विना संभवै है.

३१५. और जो संका करी, "जागृत स्वम दोनूं समान हुये चाहिये," **सो बनै नही.** काहेतें, जागृतके देहादिक पदार्थनकी उत्पत्तिमें तौ अन्य दोष रहित केवल अनादि अविद्याही उपादान कारन है. औ स्वमके पदार्थनमें तौ सादि निद्रा दोष बी अविद्याका सहायक हैं. यातें अन्य दोष रहित केवल अविद्या जन्य **व्यावहारिक** कहिये है. औ सादि दोष सहित अविद्या जन्य **प्रातिभासिक** कहिये है. स्वमके पदार्थ निद्रा दोष सहित अविद्या जन्य होनेतें प्रातिभासिक है. औ जागृतके पदार्थ अन्य दोष रहित अविद्या जन्य होनेतें व्यावहारिक कहिये हैं. इस रीतिसें स्वमके पदार्थनमें जागृत पदार्थनतें विलक्षनता है, परंतु यह संपूर्न तीन प्रकारकी सत्ता मानिके स्थूल दृष्टिसें कही है. विचार दृष्टिसें तौ तीनि प्रकारकी सत्ता बनै नही. औ जागृत स्वमकी परस्पर विलक्षनता बी बनै नही.

३१६. यद्यपि वेदांत परिभाषादिक ग्रंथनमें पूर्व प्रकारतें व्यवहारिक औ प्रातिभासिक पदार्थनका भेद कह्या है, यातें तीनि सत्ता मानी हैं. तैसे **विद्यारन्य स्वामीने** बी तीनि सत्ता मानी है. काहेतें, यह प्रसंग तिन्होने लिख्या है:— दो प्रकारके देहादि-

क पदार्थ हैं:— एक तौ ईस्वर रचित हैं, सो बाह्य हैं. औ दूसरे जीवके संकल्प रचित हैं, सो **मनोमय** कहिये हैं, औ अंतर हैं. तिन दोनूमें जीव संकल्पतें रचित अंतर मनोमय साक्षी भास्य हैं. औ ईस्वर रचित बाह्य हैं; सो प्रमाता प्रमानके विषय हैं. औ **अंतर मनोमय देहादिकही जीवकूं सुष दुषके** हेतु हैं; औ बाह्य जो ईस्वर रचित हैं, सो सुष दुषके हेतु नही. यातें मनोमय पदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है. औ बाह्य प्रपंच सुष दुषका हेतु नही, यातें ताकी निवृत्ति अपेक्षित नही. जैसे दो पुरुषनके दो पुत्र विदेसमें गये होवैं, तिनमें एकका पुत्र मरि जावै, एकका जीवता होवै, सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुष द्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूति प्राप्तिका, औ द्वितीयके मरनका समाचार भेजै. तहां समाचार सुनावन वाला दुष्ट होवै, यातें जीवते पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र मरी गया. औ मरे पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र सरीरतें निरोग है, बडी विभूतिकूं प्राप्त हुवा है; थोडे कालमें हस्ती आरूढ बडे समाजतें आवेगा. ता वंचक वचनकूं सुनिके जीवते पुत्रका पिता रोवै है, बडे दुषको अनुभव करै है. औ मरे पुत्रका पिता बडे हरषकूं प्राप्त होवै है. इस रीतिसे देसांतर विषे ईस्वर रचित पुत्र जीवै है, तौ बी मनोमय पुत्र मरि गया यातें दुष होवै है. ईस्वर रचित जीवतेका सुष होवै नही. तैसे दूसरेका ईस्वर रचित पुत्र मरि गया है, ताका दुष होवै नही. मनोमय जीवै है, ताका सुष होवै है. यातें जीव सृष्टिही सुष दुषकी हेतु है; ईस्वर सृष्टि सुष दुषकी हेतु नही. इस रीतिसें **विद्यारन्य स्वामीने** जीव सृष्टि औ ईस्वर सृष्टि दो प्रकारकी कही है. तहां जीव सृष्टि प्रातिभासिक है, औ ईस्वर सृष्टि व्यावहारिक है. ऐसे

और ग्रंथकारोंनें बी सत्ता तीनि प्रकारकी कही है. चेतनकी परमार्थ सत्ता है. औ चेतनतें भिन्न जड पदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है. ऐक व्यवहारिक सत्ता, औ दूसरी प्रातिभासिक सत्ता है. सृष्टिके आदिकालमें ईस्वर संकल्पतें उपजे जो केवल अविद्याके कार्य, पंच भूत औ तिनके कार्यकी व्यावहारिक सत्ता है. दोष सहित अविद्याके कार्य स्वप्न सुक्ति रजतादिकनकी प्रातिभासिक सत्ता है. इस रीतिसें जागृत पदार्थनकी व्यावहारिक सत्ता, औ स्वप्नकी प्रातिभासिक सत्ता कही है.

३१७. तथापि अनात्म पदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है. यातें दो प्रकारकीही सत्ता है. चेतनकी परमार्थ सत्ता औ चेतनसें भिन्न सकल अनात्माकी प्रातिभासिकही सत्ता है. जागृत स्वप्नके पदार्थनकी किंचित मात्र बी विलछनता सिद्ध होवै नही. या उत्तम सिद्धांतकूं प्रतिपादन करै हैं.

चौपाई.

विन सामग्री उपजत यातें,
स्वप्नं सृष्टि सब मिथ्या तातें;
देस कालको लेस न जामें,
सर्व जगत उपजत है तामें. ८

स्वप्न समान झूठ जग जानहु,
लेस सत्य ताकूं मति मानहु;
जागृत मांहि स्वप्न नहि जैसे,
स्वप्न मांहि जागृत नहि तैसे. ९

टीका:— देस काल सामग्री विना स्वप्नके हस्ती पर्वतादिक उपजै हैं, यातें **मिथ्या** कहिये हैं. तैसे आकासादि प्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मतें होवै है. ता ब्रह्मविषे देस कालका लेस बी नही है. स्वप्नविषे हस्ती पर्वतादिकनके योग्य तौ देस काल नही है, **तथापि** अल्प देस काल है. तैसे आकासादिकनकी सृष्टिमें अल्प देस काल बी नही है. काहेतें, देस काल रहित परमात्मासें आकासादिकनकी सृष्टि कही है. इस कारनतें तैत्तिरीय श्रुतिमें आकासादिकनकी क्रमतें सृष्टि कही है. देस कालकी सृष्टि नही कही. औ सूत्रकार भाष्यकारनें बी देस कालकी सृष्टि नही कही. **सृष्टि** नाम उत्पत्तिका है. तहां तैत्तिरीय श्रुतिका औ सूत्रकार भाष्यकारका यही अभिप्राय है:—आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देस काल सामग्री बिना होवै है; यातें आकासादिक स्वप्नकी नाईं मिथ्या है.

३१८ **यद्यपि मधुसूदन स्वामीनें** देसकाल साछात अविद्याके कार्य कहे हैं. यातें माया विसिष्ट परमात्मासें पहली मायाके परिनाम देस काल होवै हैं. तिसतें अनंतर आकासादिकनकी उत्पत्ति होवै है. यातें योग्य देस कालतें आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है.

तथापि मधुसूदन **स्वामीका** यह अभिप्राय नही:— औ देस काल प्रथम होवै है; औ आकासादिक उत्तर होवै हैं. काहेतें, अतीत कालमें होवै सो **प्रथम** औ **पूर्व** कहिये है. औ भविष्य कालमें होवै सो **उत्तर** कहिये है; जाकूं पाछे कहे हैं, आकासादिकनकी उत्पत्तितें प्रथम देस काल उपजै हैं. या कहनेतें आकासादिकनकी उत्पत्ति कालतें पूर्व काल उपहित परमात्मा देस कालका अधिष्ठान है ; यह सिद्ध होवैगा. यातें देस कालकी उत्पत्तिमें

पूर्व कालकी अपेक्षा होवैगी. औ कालकी उत्पत्ति बिना पूर्व काल असिद्ध है. यातें आकासादिकनतें पूर्व कालमें देस कालादिक होवै हैं ; यह कहना बनै नही. किंतु

मधुसूदन स्वामीका यह अभिप्राय है:– जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवै है, तैसे देस काल बी प्रतीत होवै है. औ आत्मासें भिन्न कोई नित्य है नही, यातें देस काल नित्य नही. औ विना हुयेकी प्रतीति होवै नही. यातें आकासादिकनकी नाईं देस कालकी बी उत्पत्ति होवै है. सो देस काल मायाके परिनाम हैं; औ चेतनके विवर्त हैं. **जो विवर्त होवै सो किसीका कारन होवै नही.** यातें आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमें देस कालकूं कारनता बनै नही. किंवा, कारन प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है. आकासादिक प्रपंचतें देस काल प्रथम होवै है, यह कहना बनै नही. यह वार्ता नेडेही कही आये हैं. यातें बी देस कालकूं आकासादिक प्रपंचकी कारनता बनै नही. किंतु स्वप्नके पिता पुत्रकी नाईं देस काल सहित आकासादिक प्रपंच माया विसिष्ट परमात्मातें उत्पन्न होवै है. औ कोई पदार्थ किसी देसमें किसी कालमें उपजै है, अन्य देसमें अन्य कालमें नही उपजै है, इस रीतिसें सारे पदार्थ प्रलय कालमें नही उपजै है; सृष्टि कालमें उपजै है. यातें देस कालकूं कारनता प्रतीत बी होवै है. तौ बी जा मायातें देस काल सहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है; ता मायातेंही देस कालमें कारनता, अन्य प्रपंचमें कार्यता प्रतीत होवै है. औ आकासादि प्रपंचके देस काल कारन नही. याकै विषे

२१९. **ऐसी संका होवै है:–** विना हूये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नही; औ सिद्धांतमें अंगीकार नही. जो

विनाहूयेकी प्रतीति मानै; तौ असत ख्यातिका अंगीकार होवेगा. औ विनाहूये वंध्या पुत्र सस सृंगादिकनकी प्रतीति हूई चाहिये. यातें विनाहूयेकी प्रतीति होवै नही. यातें देस कालमें कारनता नही होवै, तौ देस कालमें सर्व पदार्थनकी कारनता मायाके बलतें बी प्रतीति नही हूई चाहिये. औ कारनता देस कालमें प्रतीत होवै है, यातें देस काल सर्व प्रपंचके कारन हैं. औ

जो **सिद्धांती ऐसे कहै:**— सर्व प्रपंचका कारन ब्रह्म है. ब्रह्मकी कारनता देस कालमें प्रतीति होवै है. औ देस कालमें कारनता नहीं, **सोबी बनै नही.** काहेतें, जैसे देस कालका अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है. देस कालमेंही ब्रह्मकी कारनता प्रतीत होवै, अन्यमें नही. या कहनेमें कोई हेतु नही. यातें अधिष्टान ब्रह्मकी कारनता देस कालमें प्रतीत होवै तौ ब्रह्म सर्व प्रपंचका अधिष्ठान है; यातें सर्व प्रपंचमें कारनता प्रतीत हुई चाहिये. किसीमें कारनता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नही चाहिये. किंवा, देस कालमें कारनता नहीं है. औ ब्रह्ममें कारनता है, सो ब्रह्मकी कारनता देस कालमें प्रतीत होवै है. या कहनेतें अन्यथा ख्यातिका अंगीकार होवैगा. काहेतें, अन्य वस्तुकी अन्यरूपतें प्रतीतिकूं **अन्यथा ख्याति** कहै हैं. देस काल कारन नहीं, यातें कारनतें अन्य अकारन है. तिनकी **अन्यरूपतें** कहिये कारन रूपतें प्रतीत माननेमें अन्यथा ख्यातिका अंगीकार होवैगा. औ सिद्धांतमें अन्यथा ख्याति अंगीकार नही. जो या स्थानमें अन्यथा ख्याति मानैं तौ सुक्तिमें अनिर्वचनीय रूपेकी उत्पत्ति सिद्धांतमें मानी है, सो निष्फल होवैगी. काहेतें, **अन्यथा ख्यातिमें दो मत हैं:**— एक तो अन्य देसमें स्थित पदार्थकी अन्य देसमें प्रतीति अन्यथा ख्याति. जैसे कांता करमें स्थित रजतका सन्मुष सुक्ति

देसमें प्रतीति **अन्यथा ख्याति.** अथवा अन्य पदार्थकी अन्य रूपतें प्रतीति **अन्यथा ख्याति.** जैसे सुक्तिकीही रजत रूपतें प्रतीति अन्यथा ख्याति. ऐसें सारे भ्रम स्थलमें अन्यथा ख्यातिसें निर्वाह संभवै है. अनिर्वचनीय रजतादिकनकी उत्पति कथन असंगत होवैगा. औ

सिद्धांती ऐसें कहै:— विषयके समानाकार ज्ञान होवै है. अन्य वस्तुका अन्य रूपतें ज्ञान संभवै नही. यातें रजताकार ज्ञानका विषय बी अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैत सिद्धांतमें कारनतें अन्य जो देस काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारनताका ज्ञान संभवै नही. यातें देस कालमें कारनता जो प्रतीत होवै है. ताका बिना हूयेका अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान संभवै नहीं. किंतु देस कालमेंही कारनता है; ताका भान होवै है. इस रीतिसें "आकासादिक प्रपंचके कारन देस काल नहीं" यह कथन असंगत है.

३२० सो **संका बनै नही.** कहेतें, ब्रह्मकी कारनता देस कालमें प्रतीत होवै है. जैसे जपा पुष्प संबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्न कालमें मिथ्या हस्ती-पर्वतादिकनमें प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नही; किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. यातें स्वेत स्फटिककी रक्त रूपतें प्रतीत होनेतें रक्तताके ज्ञानमें अन्यथा ख्यातिही मानी है. तैसे स्वप्नमें मिथ्या पदार्थनविषे सत्यता प्रतीत होवै, तहां अनिर्वचनीय सत्यता तिन पदार्थनविषे उत्पन्न होवै है. यह कथन तौ "सत्य मिथ्या है. इस वचनकी नांई" संभवै नही. औ बिना हूयेकी प्रतीति होवै नही. किंतु स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमें प्रतीत होवै है. यातें मिथ्या पदार्थनकी सत्य रूपतें प्रतीति होनेतें सत्यताके ज्ञानमें

अन्यथा ख्यातिही मानी है. तैसे अधिष्ठान ब्रह्मकी कारनता देस कालमें अन्यथा ख्यातिसें प्रतीत होवै है. और

३२१ जो ऐसे कहैं:—इतने स्थानमें अन्यथा ख्याति मानैं तौ सारे भ्रममें अन्यथा ख्यातिही मानी चाहिये. सो संका बनै नही. काहेतें. सुक्ति रजतादिकनमें अन्यथा ख्याति माननेमें यह दोष कह्या है:— विषयतें विलछन ज्ञान बनै नही- औ जहां स्फटिकमें रक्तताका ज्ञान होवै, तहां रक्त पुष्पका स्फटिकत संबंध है. यातें स्फटिक संबंधी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीति होवै है. काहेतें अंतःकरनकी वृत्ति जब रक्त पुष्पाकार होवै; ताही वृत्तिका विषय रक्त पुष्प संबंधी स्फटिक है. यातें पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. औ सुक्तिका तौ रजत रूपतें ज्ञान संभवै नही. काहेतें, सुक्ति देसमें अनिर्वचनीय, तथा व्यावहारिक रजत, तौ अन्य मतमें है नही, किंतु सुक्ति है. ता सुक्तिके संबंधसें सुक्तिके समानाकार ही अंतःकरनकी वृत्ति होवैगी. रजताकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै नहीं. यातें अविद्याका परिनाम चेतनका विवर्त अनिर्वचनीय रजत, औ ताका ज्ञान दोनूं उत्पन्न होवै हैं. औ स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवै, तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक औ रक्त पुष्प दोनूंसें होवै हैं. रक्त पुष्पके संबंधतें रक्ताकार वृत्ति होवै है. ता वृत्तिका स्फटिकतें बी संबंध है. औ स्फटिकमें रक्तताकी छाया है. यातें पुष्पका धर्म रक्तता स्फटिकमें, ताही वृत्तिका विषय है. इस रीतिसें,

जहां दो पदार्थनका संबंध है, तहां एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीत संभवै है. तहां अन्यथा ख्यातिही संभवै है. जहां दोनूं पदार्थनका संबंध नही, तहां अन्यथा ख्याति नही, किंतु अनिर्वचनीय ख्याति है. जैसे पुष्प संबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. तैसे स्वप्नके हस्ती पर्वतादिकनका बी अधिष्ठान चेतनतें संबंध

है. यातें चेतनका धर्म सत्यता औ चेतन संबंधी हस्ती पर्वतादिकन-में प्रतीत होवै है; सो अन्यथा ख्याति है. तैसे अधिष्ठान चेतनका धर्म कारनता अधिष्ठान चेतन संबंधी देस कालमें प्रतीत होवै है.

३२२ और जो पूर्व संका करी, "अधिष्ठान चेतनका संबंध सर्व प्रपंचतें है. जो संबंधीका धर्म अन्यथा ख्यातिसें अन्यमें प्रतीत होवै, तौ चेतनकी कारनता सर्व प्रपंचमै प्रतीतमें हुई चाहिये." **सो संका बनै नहीं.** काहेतें, जैसे स्वप्नमें दो सरीर उत्पन्न होवै है. एक सरीर पितारूप प्रतीत होवै, औ दूसरा सरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै है. तहां दोनूं सरीरनका स्वप्नके अधिष्ठान चेतनतें संबंध तौ है. **तथापि** पिता सरीरमें अधिष्ठान चेतन कारनता प्रतीत होवै है, औ पुत्र सरीरमें कारनता प्रतीत होवै नहीं; किंतु पिता जन्य पुत्र है. इस रीतिसें पुत्र सरीरमें कार्यता प्रतीत होवै है. इस रीतिसें अधिष्ठान चेतनसें संबंध तौ सर्वका है. **तथापि** देस कालमें चेतन धर्म कारनताकी प्रतीति होवै है; औरनमें कार्यताकी प्रतीति होवै है. **अथवा**

अधिष्ठान चेतन असंग है. सो कीसीका परमार्थत कारन नहीं. मायामें आभास **यद्यपि** कारन हैं, **तथापि** आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है. जो आपही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारन बनै नहीं. यातें परमात्माविषे प्रपंचकी कारनता होवै, तौ ताकी देस कालमें भ्रमतें प्रतीति संभवै, सो परमात्माविषे कारनता है नहीं. परमात्मा कारनतादिक धर्म रहित असंग है. ताकी कारनता देस कालमें प्रतीत होवै है; यह कहना संभवै नहीं. किंतु मायाकृत अनिर्वचनिय देस काल अनिर्वचनीय कारनतावाले होवै हैं. औ परमार्थसे देस काल कारन नहीं. जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमें पुत्र पौत्र दोनूवाकूं देखै; तहां पुत्र पौत्र सरीर अनिर्वचनीय होवै है. औ

पुत्र सरीरमें पौत्र सरीरकी अनिर्वचनीय कारनता होवे है. तहां परमार्थसें पुत्र सरीर औ पौत्र सरीरका परस्पर कार्य कारन भाव नही होवे है. तैसें अनिर्वचनीय कारन देस काल प्रतीत होवे है. परमार्थसें देस काल औ आकासादिक प्रपंचका कार्य कारन भाव है नही. इस रीतिसें **देस काल सामग्री बिना जागृत प्रपंचकी उत्पत्ती होवे है.** यातें स्वप्नकी नाई जागृत बी मिथ्या है. और जैसे स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्नमेंही सुष दुषके हेतु हैं; जागृतमें तिनका अभाव है. तैसें जागृतके पदार्थनका स्वप्नमें अभाव होवे है. दोनू सम है. और

३२३ जो ऐसें कहैं:- जागृतसें स्वप्न होयके फिरि जागृत होवे, तहां पहली जागृतके जो पदार्थ हैं; सोई स्वप्न व्यवहित दूसरे जागृतमें रहै हैं. औ प्रथम स्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमें नही रहै हैं. यातें स्वप्नके पदार्थनतें जागृतके पदार्थ विलछन है.

सो संका बी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टितें होवे है. काहेतें, ऐसी मूर्षनकी दृष्टि है. संसार प्रवाह अनादि है, तामें जीवनकूं जागृत स्वप्न सुषुप्ति होवे हैं, जागृत कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवे हैं, औ स्वप्न कालमें जागृत सुषुप्ति नष्ट होवे है. तैसे सुषुप्ति कालमें जागृत स्वप्न नष्ट होवे है, परंतु स्वप्न सुषुप्ति होवे, तब जागृत कालके स्त्री पुत्र पसु धनादिक दूरि होवैं नही; किंतु बने रहैं तिनका ज्ञानही दूरी होवे है. फिरि जागृत होवे तब प्रथम जागृतके विद्यमान पदार्थनका ज्ञान होवे है. यह अज्ञानी मुर्षनकी दृष्टी है. औ

३२४ सिद्धांत यह है:- सारे **पदार्थ चेतनका विवर्त है; अविद्याका परिनाम है.** यातें सुक्ति रजतकी नाई जिस कालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे; तिस कालमें अधिष्ठान चेतन आश्रित

अविद्याका द्विविध परिनाम होवै है. अविद्याके तमो गुन अंसका घटा-दि विषयरूप परिनाम होवै है. औ अविद्याके सत्वगुनका ज्ञानरूप परिनाम होवै है. **यद्यपि** चेतनकूं ज्ञान कहै हैं. यातें सत्वगुनका परिनाम ज्ञान है, यह कहना बनै नहीं. **तथापि** सारे व्यापक चेतन ज्ञान नही. किंतु साभास वृत्तिमे आरूढ चैतनकूं **ज्ञान कहै** है. यातें चेतनमें ज्ञान व्यवहारकी संपादक वृत्ति है. इस रीतिसें चेतनमें ज्ञानपनेकी संपादक वृत्ति है. इस रीतिसे चेतनमें ज्ञान पनैकी उपाधि वृत्ति है. ताकेविषे बी ज्ञान सब्दका प्रयोग होवै है. जैसे लोकमें कहै हैं; "घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा पटका ज्ञान नष्ट हुवा." तहां वृत्तिमें आरूढ चेतनका तौ उत्पत्ति नास संभवै नहीं. वृत्तिके उत्पत्ति नास होवे है; औ ज्ञानके उत्पत्ति नास कहै है. यातें वृत्तीमें बी ज्ञान सब्दका प्रयोग होवै है. सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्वगुनका परिनाम है; यह कहना संभवे हैं. ता वृत्तिरूप परि-नाममें चेतनका अभास होवै है. घटादिक विषयरूप परिनाममें चेतनका अभास होवे नही. काहेतें विषय औ वृत्ति **यद्यपि** दोनूं अविद्याके परिनाम हैं; **तथापि** घटादिक विषय तौ अविद्याके तमोगुनका परिनाम है; यातें मलिन है, तिनमें आभास होवै नही. औ वृत्ति सत्वगुनका परिनाम स्वछ हैं, तामें आभास होवै है. इस रीतिसें वृत्तिकूं चेतनके आभास ग्रहनकी योग्यता होनैतें, वृत्ति अवछिन्न चेतनकूं **ज्ञान** कहै हैं; औ **साछी** कहैं है. घटा-दिक विषयकूं आभास ग्रहनकी योग्यता नहीं. इस कारनतें वि-षय अवछिन्न चेतन ज्ञान नही; औ साछी बी नही. इस रीतिसें जागृतके पदार्थ औ तिनका ज्ञान दोनूं साथिही उत्पन्न होवै हैं. औ साथिही नष्ट होवै हैं. **यह वेदका गुढ सिद्धांत है.** यातें जागृतके पदार्थ दूसरी जागृतमें रहै हैं; यह कहना संभवे नही.

३२९ **यद्यपि** स्वप्नतें जागे पुरुषकूं ऐसी प्रतिभिज्ञा होवै है जो पूर्व पदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं. यातें जागृतके पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्ति नास नही होवै है; किंतु ज्ञानसें प्रथम विद्यमान होवै हैं; औ ज्ञान नासतें अनंतर वी रैह हैं.

तथापि जैसे स्वप्नके पदार्थ तिस छनमें उत्पन्न होवै हैं; औ ऐसें प्रतीत होवै हैं, मेरे जन्मसें बी प्रथम उपजै ये पर्वत समुद्रादिक हैं; तहां तत्काल उपजे पदार्थनमें बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवै है. यातें जा अविद्यानें मिथ्या पर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं; तिसी अविद्यासें बहुकाल स्थिरता औ स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजै है. तैसैं जागृतके पदार्थन विषे बी अनेक दिन स्थिरता है नहीं; किंतु अविद्या बलसें मिथ्या स्थिरता बी तिन पदार्थनके साथि उपजिके प्रतीत होवै है. और

जो ऐसे कहैं:– स्वप्नके पदार्थ साछात अविद्याके परिनाम हैं; औ जागृतके पदार्थ साछात् आविद्याके परिनाम नहीं. किंतु घटकी उत्पत्ति दंड चक्र कुलालसैं होवै है; तैसे सर्व पदार्थनकी उत्पत्ति अपने अपने कारनतैं होवै है; साछात अविद्यासें नहीं. जो साछात अविद्याके परिनाम होवैं, तौ आकासादिक क्रमतें पंच भूतनकी उत्पत्ति, औ पंचीकरन तिनसें ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमैं कही है; सो असंगत होवेगी. यातें ईश्वर सृष्टि जागृतके पदार्थ अपनें अपनें उपादानके परिनाम हैं. अविद्याके साछात परिनाम नहीं. स्वप्नके तौ सारे पदार्थ अविद्याके परिनाम हैं. तिनका एक अविद्या उपादान होनैतैं, तिन पदार्थनको औ तिनके ज्ञानकी एक अविद्यासें, एक कालमें उत्पत्ति संभवै है. जागृतके पदार्थ भिन्न भिन्न कारनसें उत्पन्न होवै हैं. कार्यतें पहली कारन होवै है. औ कारनमें कार्यका लय होवै है. यातें घटकी उत्पत्तिसें प्रथम,

औ घट नासतें आगे मृत्पिंड रहै है. इस रीतिसें कोई पदार्थ अल्प काल स्थिर, औ कोई अधिक काल स्थिर कार्य कारन है; तैसे स्वप्नके नहीं.

३२६ **सो संका बनै नहीं.** काहेतें, जागृतके पदार्थनकी नाईं स्वप्नके पदार्थनविषे बी कार्य कारन भाव प्रतीत होवै है. जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः- मेरी गउके वछा हुवा है, अथवा मेरी स्त्री के पुत्र हुवा है. तहां गउ औ स्त्रीविषे कारनताकी प्रतीति, औ बहु काल स्थायिताकी प्रतीति होवै है. वत्स औ पुत्रविषे कार्यता औ अल्पकाल स्थिरता प्रतीत होवै है. औ सारे समकाल हैं. कोई किसीका कारन, नहीं; किंतु गउ वत्स स्त्री आदिकनका अविद्याही उपादान है. तैसे जागृतविषे बी कोई अधिक काल स्थायि कारन रूपतैं; कोई न्यून काल स्थायि कार्यरूपतैं प्रतीत स्वप्नकी नाईं होवै. कोई किसीका परस्पर कार्य कारन नहीं; किंतु साछात अविद्याके कार्य हैं. और

३२७ श्रुति विषे जो क्रमतैं सृष्टि कही है; तहां सृष्टि प्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं; किंतु अद्वैत बोधनमें अभिप्राय है. सारे पदार्थ परमात्मासें उपजे हैं; यातें ताके विवर्त हैं. **जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवै है.** यातें सारा नाम रूप ब्रह्मतैं पृथक नहीं; ब्रह्मही है. इस अर्थ बोधन करनेकूं सृष्टि कही है. सृष्टिका और प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूल दृष्टिकूं विपरीत क्रमतैं लय चिंतनके निमित्त है. ताका बी अद्वैत बोधही प्रयोजन है. यातें क्रम कथनमें बी अभिप्राय नही. सृष्टिमें क्रम नही है. किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासें उपजै हैं. तिनका परस्पर कार्य कारन भाव, औ पूर्व उत्तर भाव अविद्याकृत स्वप्नकी नाईं मिथ्या प्रतीत होवै है. औ श्रुतिनें तिनकी

आपसमें कार्य कारनता, औ पूर्व उत्तरता कही है; सो लय चिंतनके निमित्त कही है. ध्यानमें यह नियम नहीं. जैसा स्वरूप होवै तैसाही ध्यान होवै है. यातें जागृतके पदार्थनका आपसमें कारन कार्य भाव नहीं. किंतु,

३२८ सारे पदार्थ साछात अविद्याके कार्य हैं, सुक्ति रजतकी नाईं वा स्वप्नकी नाईं अविद्याकी वृति उपहित साछीतें तिनका प्रकास होवै है. यातें सारे पदार्थ साछी भास्य हैं. औ ज्ञानाकार औ ज्ञेयाकार अविद्याका परिनाम एकही कालमें उपजै है. साथही नष्ट होवै है. यातें जब पदार्थकी प्रतीति होवै, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवै है. अन्य कालमें नहीं होवै है. याहीकूं **दृष्टि सृष्टि वाद** कहै हैं.

या पछमें पदार्थकी अज्ञात सत्ता नहीं ज्ञात सत्ता है. अद्वैत वादमें **यह सिद्धांत पछ है.** या पछमें दो सत्ता हैं; तीनि नहीं. काहेतें, अनात्म पदार्थ सारे स्वप्नकी नाईं प्रातिभासिक हैं. प्रतीति कालसें भिन्न कालमें आनात्माकी सत्ता नहीं. यातें तीसरी व्यावहारिक सत्ता नहीं. या पछमें सारे अनात्म पदार्थ साछी भास्य हैं. प्रमाता प्रमानका विषय कोई बी नहीं. काहेतें, अंत:करन औ इंद्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी औ ज्ञान, स्वप्नकी नाईं एक कालमें उपजै हैं; तिनका विषय विषयी भाव बनै नहीं. जो घटादिक विषय औ नेत्रादिक इंद्रिय, तैसें अंत:करन, ये ज्ञानतें प्रथम होवै; तौ नेत्रादि द्वारा अंत:करनकी वृत्तिरूप ज्ञान प्रमान जन्य होवै. सो अंत:करन, इंद्रिय, विषय, तीनू ज्ञानके पूर्व कालमें हैं नहीं. किंतु ज्ञान सम कालही स्वप्नकी नाईं त्रिपुटी उपजै है. यातें त्रिपुटी जन्य ज्ञान कोई बी नहीं. **तथापि** ज्ञानविषे स्वप्नकी नाईं त्रिपुटी जन्यता प्रतीत होवै है. यातें जागृतके पदार्थ साछी

भास्य हैं. प्रमान जन्य ज्ञानके विषय नहीं यातें वी स्वप्नके समान मिथ्या हैं. किंवा जागृतमें कितने पदार्थनकूं मिथ्यारूप करिके जाने हैं. औरनकूं सत्यरूप करिके ऐसें जाने हैं:— अनादि कालके पदार्थ हैं; तिनमें कोई नष्ट होवे हैं, और तिसके समान उत्पन्न होवे है. ऐसें प्रपंच धाराका उच्छेद कदै होवे नहीं. जाकूं ज्ञान होवे है, ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवे नही. औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवे है. ता ज्ञानके साधन वेद गुरु हैं. तिनतें परम सत्यकी; प्राप्ति होवे है ऐसी प्रतीति जागृतमें होवे है, तहां किसी पदार्थमें मिथ्यापना, किसीमें नास, किसीमें उत्पत्ति, वेद गुरुतें परम पुरुषार्थकी प्राप्ति, ये सारी अविद्याकृत स्वप्नकी नांई मिथ्या है. वासिष्टमें ऐसे अनंत इतिहास कहे हैं. छनमात्रके स्वप्नमें बहु काल प्रतीत होवें; औ जागृतकी नांई स्थाई पदार्थ प्रतीत होवे. औ तिनतें बहुकाल भोग होवें; यातें **जागृत पदार्थकी स्वप्नतें किंचित विलछनता नही.** किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या है.

३२९ सिष्यउवाच

दोहा

लाष हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार;
यातें ज्ञानी मुक्त व्है, बंधे अज्ञ हजार. ११
झूठो स्वप्न समान जो, छन घटिका व्है जाम;
बद्ध कौन को मुक्त हैं, श्रवनादिक किह काम. ११

टीका:— ईश्वरसृष्टि अनंत कल्पतें अनादि है. तामें ज्ञानी मुक्त होवे है. अज्ञानीकूं बंध रहे है. जौ स्वप्न समान होवे तो स्वप्न एक छन घडी तथा पहर होवे है; तैसें संसार वी छन अथवा घडी वा पहर काल, वा किंचित अधिक काल होवैगा. स्व-

भकी नांई स्वल्पकाल स्थायि संसार होवै; तौ अनादि कालका बंध नही होवैगा. बंध निवृत्तिरूप मोछके निमित्त श्रवनादिक साधन निष्फल होवैंगे.

यद्यपि पूर्व उक्त सिद्धांतमें, बंध मोछ वेद गुरू अंगिकार नहीं. किंतु चेतन नित्य मुक्त है. अविद्याके परिनाम चेतनमें नाना विवर्त होवै है. तातैं आत्मरूपकी किंचित मात्र बी हानी नहीं. आत्मा सदा असंग एक रस है. आज तोडी कोई मुक्त हुवा नहीं; आगे होवै नहीं; किंतु चेतन नित्य मुक्त है. अविद्या औ ताके परिनामका चेतनसें किसी कालमें संबंध नहीं. यातें बंध औ वेदगुरू श्रवनादिक; औ समाधि वथा मोछ, इनकी प्रतीति बी स्वप्नकी नांई अविद्या जन्य है; यातें मिथ्या है. इनविषे बहुकाल स्थायिता बी अविद्या जन्य है. तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिकै स्थूल दृष्टिका प्रश्न है.

३३० **गुरुवाक्य**

दोहा.

अग्रध देवकूं स्वप्नमें, भ्रम उपज्यो जिहि रीति;
सिष तोकूं यह ऊपजी, बंध मोछ परतीति. १२

टीका.— हे सिष्य, जैसे निद्रा दोषतें स्वप्नमें, अध्यापक अध्ययन, वेदसास्त्र, पुरान, धर्मसास्त्र, औ अध्ययन कर्त्ता, कर्म, औ तिनका फल प्रतीति होवै है. औ तिन सर्व पदार्थनमें सत्यताकी भ्रांति होवै है. तथापि सो स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तैसें जागृतके सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तिनविषे सत्यता प्रतीति भ्रम है. दोहेमें बंध मोछ ग्रहनतें सर्व अनात्माका ग्रहन है. जैसे तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवै हैं; वेद अर्थका बंध विघातक उपदेस करे हैं;

सो तेरेकूं मिथ्या प्रतीति है.जैसें अग्रध देवकूं स्वप्नमें मिथ्या प्रतीतिके विषय, गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजे हैंतैसें तेरी प्रतीतिके विषे मेरेसें आदिलेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं. सो.

३३१. अग्रध देवका ऐसा स्वप्न हुवा है:– एक अग्रध नाम देवता अनादि कालका निद्रामें सोवता हुवा स्वप्नकूं देषता भया. ता स्वप्नमें तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई:–जो मैं चंडाल हूं, औ महा दुषी हूं, औ अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्तधातुसैं मेरा मुष भऱ्या है. औ महा घोर भयंकर सर्प हस्ती आदिकासें युक्त जो वन, ताकेविषे मैं भ्रमन करूं हूं. सो देवता भ्रमन कर्ता हुवा ता वनमें अनंत अस्थान देषता हुवा. कहूं नाना भयंकर प्रानी सन्मुष भछन करनेकूं धावन करै हैं. औ कहूं राधि रुधिर से भरे कुंड हैं; तिन्हमें पडे प्रानी हाहाकार सब्द करे हैं. औ कहूं लोहेके तप्त स्तंभ हैं, तिन्हसें बंधे पुरुष रोवे हैं. औ कहूं तप्त वालू युक्त मार्ग होइके नग्न पाद पुरुष जावै हैं. औ तिन्ह पुरुषनकूं राजभट लोहमय दंडनसैं ताडना करै हैं. इस रीतिसें नाना जो भयंकर स्थान हैं, तिनकूं सो देवता देषता हुवा. औ कदाचित आप वी अपराध करिके स्वप्नमें तिन्ह दुषनकूं प्राप्त होता भया. औ

कहूं दिव्य स्थान देषता हुवा तिन्ह स्थाननमें उत्तम देव विराजे हैं. तिन्ह देवनके दिव्य भोग हैं. अमृतके दर्सन मात्रसें तिन्हकूं तृप्ति रहै हैं. छुधा तृषाकी बाधा तिन्ह देवनकूं होवै नहीं. औ मल मुत्र रहित जिनका प्रकासमान सरीर है. औ उत्तम विमानमें स्थित होयके कोई देवरमन करै हैं. सो विमान वा देवकी इछाके अनुसार गमन करे है. औ कहूं रंभा उर्वसीसे आदिलेके अप्सरा नृत्य करै हैं. तिन्हके संपूर्न अंग दोष रहित

हैं. औ संपूर्न स्त्री गुनयुक्त हैं. उत्तम सुगंध तिन्हके सरीरसें काम की प्रकासक आवे हैं. औ कहूं तिन्हसें देव रमन करे हैं. औ कदाचित आप वी देवभावकूं प्राप्त होयके, तिन्हतैं बहुत काल रमन करै है. औ कदाचित् तिन्ह अप्सरानसें दिव्य स्थानमें रमन करता हुवा, अकस्मात् रुधिर मल पूरित जो कुंड हैं; तिन्हविषे मज्जन करे है. औ,

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है. ताकि आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं. कितने पुरुषनकूं सो अधिपति औ ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवै हैं. औ कितने पुरुषनकूं महा भयंकर रूप प्रतीत होवै हैं. औ ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवै हैं. इस रीतिसें अग्रधनाम देवता स्वप्न कालमें नाना जो स्थान हैं, तिन्हकूं देषता हुवा, औ कहूं अन्य स्थानमें ब्राह्मन वेदकी ध्वनी करे हैं. औ कहूं यज्ञ सालामें उत्तम कर्म करै हैं. औ कहूं उत्तम नदी वहै हैं. तिन्हमें पुन्यके निमित्त लोक स्नान करे हैं. औ कहूं ज्ञानवान आचार्य सिष्यनकूं ब्रह्म विद्याका उपदेस करै हैं. ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होय के ता वनसें निकासि जावै हैं.

इस रीतीसें स्वप्नविषे अग्रध नाम देवता छनमात्रमें नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमें देषता हुवा. ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमें हुई:— जो मैं अनंत कालका या वनमे स्थित हूं. या वनका कदी उछेद होवै नहीं. कदाचित् बागवान च्यारि मुषनतैं नाना बीज निकासिके वनकी उत्पात्ति करै है. औ जल सेचनसें पालन करै है. औ कदाचित घोर हास्य करिके मुषसें अग्नि निकासिके वनका दाह करै है. वनकी उत्पत्तिके संगि मेरी उत्पात्ति होवै है. औ वनकै दाह संगि मेरा दाह होवै है. औ सर्व वनका दाह

करिके सो बागवान एकही रहे है. ताके सरीरमैं बनके बीज रहे हैं. यह प्रतीति स्वप्न वेदके श्रवनसैं वा अग्रध देवताकूं स्वप्नही विषे हुई. तब,

३३२. बारंबार अपना जन्म मरन सुनिके ताने विचार किया, जो किसी प्रकारसें बनके बाहरि निकसी जाऊं. औ बनके बाहरि नही बी निकसूं, तौ बी चांडाल भाव मेरा दूरि होय जावै. औ देव भाव सदा बन्या रहै. सो और तौ कोई उपाय बनतैं निकसनेका है नहीं. ब्रह्म विद्याके उपदेस करने वाले आचार्य अपनैं सिष्यनकूं बनके बाहरि निकासैं हैं. यह विचारिके आचार्यकूं स्वप्न कालमैं ही सो अग्रध देवता प्राप्त हुवा. सो विधिपूर्वक प्राप्त हुवा जो सिष्य, ताकूं आचार्य देववानीरूप मिथ्या ग्रंथ उपदेस करता हुवा.

३३३. संस्कृत ग्रंथ जो मिथ्या आचार्यनें मिथ्या सिष्यकूं उपदेस किया, ता ग्रंथकूं भाषा करिके लिषे हैं. संस्कृत ग्रंथके भाषा करनैमैं मंगल करै हैं. काहेतैं मंगल करनैतें जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न हैं, तिन्हका नास होवै है. **विघ्न** नाम पापका है. पापतैं सुभ कार्यकी समाप्ति होवै नहीं. ता पापका मंगलतैं नास होवै है. औ जो पाप रहित होवै सो बी ग्रंथके आरंभमे मंगल अवस्य करै. काहेतैं जो ग्रंथ आरंभमैं मंगल नही किया होवै, तौ ग्रंथकर्ता विषे पुरुषनकूं नास्तिक भ्रांति होयके, पंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

सो **मंगल तीनि प्रकारका** है. एक वस्तु निर्देसरूप है, औ दूसरा नमस्कार रूप है, औ तीसरा आसिर्वादरूप है. सगुन अथवा निर्गुन जो परमात्मा सो **वस्तु** कहिये. है ताके कीर्तिनका नाम **वस्तु निर्देस** कहिये है. अपना अथवा सिष्यनका जो वां-

वस्तु ताके प्रार्थनका नाम **आसिर्वादरूप मंगल** कहिये सो अपने वांछितका प्रार्थन चतुर्थ दोहेमें स्पष्ट है. सिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचम दोहेमें स्पष्ट है.

३३४. गनेस औ देवीकूं ईस्वरता पुरानमें प्रसिद्ध है. यातें अनीश्वरका चिंतन नहीं. औ पुरानमें गनेसका जो जन्म है, सो जीवकी नांई कर्मका फल नहीं. किंतु राम कृस्नादिकनकी नांई भक्त जनके अनुग्रह वास्ते परमात्माकाही आविर्भाव होवे है; यह व्यास भगवानका परम अभिप्राय है. या स्थानमें यह रहस्य है:— परमार्थ दृष्टिसैं जीव वी परमात्मासे भिन्न नहीं. परंतु जन्म मरनादिक बंधका आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है. सो जन्मादिक बंध गनेसादिकनकूं आत्मामैं प्रतीत होवे नही; यातें जीव नही. इस रीतिसें गनेसादिकनकूं ईश्वरता है. यातें ग्रंथके आरंभमें तिन्हका चिंतन योग्य है. नानारूप ईस्वरका जो कथन है, सो सर्वकूं ईस्वरता द्योतन करने वासते है. औ ईस्वर भक्ति औ गुरु भक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य साधन है. इस अर्थकूं वी द्योतन करने वासते हैं.

३३५. अथ निर्गुन वस्तु निर्देसरूप मंगल.

दोहा

जा विभु सत्य प्रकासतें, परकासत रवि चंद;
सो साछी मैं बुद्धिको, सुद्धरूप आनंद. १

अथ सगुन वस्तु निर्देस मंगल.

दोहा.

नासै विघ्न समूलतैं, श्री गनपतिको नाम;
जा चिंतन बिन व्है नहीं, देवनहूके काम. २

टीका—त्रिपुर वधमैं यह वार्ता प्रसिद्ध है.

अथ नमस्काररूप मंगल

सोरठा.

असुरनको संहार, लछमी पारवती पती;
तिन्हे प्रनाम हमार, भजतनकूं संतत भजैं. ३

अथ स्ववांछित प्रार्थनरूप आसिर्वाद:

मंगल:

दोहा.

जा सक्तीकी सक्ति लहि, करै ईस यह साज;
मरी बानीमैं बसहु, ग्रंथ सिद्धिके काज. ४

अथ सिष्य वांछित प्रार्थनरूप आसिर्वाद.

दोहा.

बंध हरन सुष करन श्री, दादू दीन दयाल;
पढै सुनै जो ग्रंथ यह, ताके हरहु जंजाल. ५

२२६ अथ वेदांत सास्त्र कर्त्ता आचार्य नमस्कार:

कवित्त.

वेद वाद वृछ बन भेद वादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया कंटक पसारिकैं;
सरल सु सुद्ध सिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
सूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिकै;
पेषि सु पथिक भगवान जानि अनुचित,
अंकमैं उठाय ध्याय व्यासरूप धारिकैं;
सूत्रको बनाई जाल बनको विभाग कीन्ह,
करत प्रनाम ताहि निश्चल पुकारिकै. ६

टीका. जैसैं वायु बनमैं पैठिकै, वृछनकूं हलायकै, तिन्हकै कंटक पसारिकै, सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थानसैं तोरिकै, कंटकनविषे भ्रमावै; तिन्ह भ्रमते पुष्पनकूं देषिकै, पथिकके चित्तमैं ऐसी आवै:– जो ये सुंदर कमल या स्थान योग्य नहीं. किंतु-उत्तम स्थान योग्य है. यह विचारिकै तिन्ह पुष्पनकूं उठाइ लेवै, औ फेरि विचार करै, जो आगे बी पवन कंटकन विषे पुस्पनकूं तोडिके भ्रमन करावैगा; यातैं ऐसा उपाय करूं, जातैं फेरि वायु कंटकनमैं पुष्पनकूं भ्रमावै नही. यह विचारकै सूत्रके जालसैं कंटक युक्त वृछनका विभाग करि देवैं. ता जालसैं पुष्पनका कंटकनमैं प्रवेस होवै नही.

३३७. तैसैं भेद वादी आचार्यरूप जो वायु है, सो वेदरूपी बनमैं वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटक सहित वृछ हैं, तिन्हतैं सकाम कर्मरूप कंटक प्रवर्त करिकैं, सरल कहिये कपट रहित औ सुसुद्ध कहिये अति सुद्ध रागादि दोष रहित जो सिष्यरूप

कमल पुष्प, तिन्हकूं समादिरूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकाम कर्मरूप कंटकनविषे भ्रमावतैं देषिकै, पथिक समान व्यापक बिस्नुनैं विचार किया; जो यह सुद्ध पुरुष या स्थान जोग नहीं हैं. किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है. यह विचारिकै व्यासरूप धारिकै, तिन्ह सिष्यनकूं उपदेसरूप अंकमैं स्थापन किया. जैसे पुरुषके अंकमैं स्थित पुष्पकूं वात उडावने विषै समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ट आचार्यके उपदेसमै स्थित पुरुषनकूं भेदवादि बहकावनेमैं समर्थ नहीं. यातैं उपदेसही अंक कहिये गोद है. फेरि व्यासभगवाननें विचार किया जो, भेदवादि और पुरुषनकूं आगै बी सकाम कर्मरूप कंटकनमैं भ्रमावेंगे. यातें ऐसा उपाय होवे, जाते आगे सिष्य भ्रमै नहीं. यह विचारिके सूत्ररूपी जालसैं बेदके वाक्यरूप वृछनका विभाग करि दिया.

जैसैं बनमैं दो प्रकारके वृछ होवैं; सकंटक औ कंटक रहित, तिन्हका जालसैं विभाग करि देवै; औ जालतैं पुष्पनका कंटक सहित वृछनमैं प्रवेस होवै नहीं. तैसे बेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं. एक तो कर्मकी स्तुति करिकै कर्मविषै बहिर्मुष पुरुषकी प्रवृत्ति करावे हैं; औ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिकै पुरुषकी निवृत्ति करावे हैं. तिन्ह वाक्यनका

३३८. वेदव्यासने विभाग करिके सुत्रनसैं यह बोधन किया:— जो सर्व वाक्यनका निवृत्तिमें तात्पर्य है. प्रवृत्तिमें किसी वाक्यका बी तात्पर्य नहीं. जो प्रवृत्ति बोधक वाक्य हैं, तिन्हका बी स्वभाविक, औ निषिद्ध जो प्रवृति है, तासे निवृत्ति करिकै, विहित प्रवृत्तिसें अंतःकरन सुद्ध होयके, तासैं बी निवृत्ति होयके, ज्ञाननिष्ठ पुरुष होवे. इस रीतिसैं निवृत्तिमें तात्पर्य हैं. औ अर्थवाद वाक्यनें जो कर्मका फल बोधन किया है. सो गुड जिव्हा न्यायतैं

किया है. फलमें तिनका तात्पर्य नहीं. यह अर्थ सूत्रनसें व्यास-जीने बोधन किया है. या अर्थकूं सूत्रनसें जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममें प्रवृत्ति होवै नही. जैसें सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसें निरोध करै है; तैसें व्यास भगवानके सूत्र सकाम कर्मनसें निरोध करै हैं. यातें जालरूप कहे. ६

३३९ दोहाः

कोउक सिष्य उदार मति, गुरुके सरने जाइ;
प्रश्न कियो कर जोरिके, पाद पद्म सिर नाइ. ७

सिष्य उवाच.

दोहा.

भो भगवन मैं कोन यह, संसृति कातैं होइ;
हेतु मुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ? ८

टीकाः— हे भगवन मैं कोनहूं ? देह स्वरूप हूं अथवा देहसें भिन्न हूं ? मैं मनुष्य हूं, औ मेरा सरीर है. यह दो प्रतीति होवै हैं. यातें मेरेकूं संसय है. औ देहसें भिन्न बी जो आप कहो, तौ मैं कर्त्ता भोक्ता हूं, अथवा अक्रिय हूं ? जो अक्रिय कहो, तौ बी सर्व सरीर विषे एक हूं, अथवा नाना हूं ? यह प्रथम प्रश्नका अभिप्राय है. औ

यह संसृत कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन हैं ? याका यह अभिप्राय है:— या संसारका कोई कर्त्ता है, अथवा आपही होवै है। जो कर्त्ता कहो तौ बी कोई जीव कर्त्ता है, अथवा ईश्वर है ? जो ईश्वर कहो तौ बी एक देसमें सो ईस्वर स्थित है अथवा व्यापक है ? जो व्यापक है, तौ बी जैसें व्यापक आकासतें भीन

भिन्न है, तैसे वा ईस्वरतें जीव भिन्न है, अथवा अभिन्न है ? औ

मुक्तिका हेतु ज्ञान है, अथवा कर्म है, अथवा उपासना है, अथवा दो है ? जो दो कहो, तौ वी ज्ञान कर्म है, अथवा ज्ञान उपासना हैं, अथवा कर्म उपासना हैं ?

३४० श्रीगुरु वाक्य.

अर्द्ध दोहा.

सत चित आनंद एक तूं, ब्रह्म अजन्म असंग;

टीका:— प्रथम जो सिष्यनें प्रश्न किया, ताका उत्तर कहै हैं "तूं सत चित आनंद स्वरूप है." या कहनेतें देहतैं भिन्न कह्या. काहेतें देह असत रूप है, औ जड रूप है, औ दुष रूप है. औ कर्त्ता भोक्ता वी नहीं. काहेतें,

जाकेविषे दुष होवै, सो दुषकी निवृत्ति औ सुषकी प्राप्ति वास्ते क्रिया करै, सो कर्ता कहिये है. सो तेरेविषे दुष है नहीं, यातें दुषकी निवृत्ति वास्ते क्रियाका कर्ता नहीं. तूं आनंद स्वरूप है. यातें सुषकी प्राप्तिके निमित्त वी तूं क्रियाका कर्त्ता नहीं. जो कर्ता होवै, सोई भोक्ता होवै है. तूं कर्ता नहीं, यातें भोक्ता वी नहीं. पुन्य पापका जनक जो कर्म है, ताका कर्ता औ सुष दुषका भोक्ता स्थूल सूछम संघात है; तूं नहीं. तूं संघातका साछी है. याहीतें

३४१ आत्मा एक है, नाना नहीं. जो आत्मा कर्ता भोक्ता होवै, तब तो नाना होवै. काहेतें कोई सुषी है, कोई दुषी है. औ कर्ता भोक्ता एकही अंगीकार होवै तो एकके सुष होनेतें तथा दुष होनेतें, सर्वकूं सुष तथा दुष हुवा चाहिये. यातें भोक्ता नाना है, औ आत्मा भोक्ता है नहीं; यातें एक है.

३४२. **सांख्यके मतमें** आत्मा कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करिके नाना पुरुष भी अंगीकार किये, सो अत्यंत विरुद्ध है. काहेतें, यह सांख्यका सिद्धांत है:— सत्व रज तम गुनकी सम अवस्थाका नाम **प्रधान** कहे हैं. सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं. विकृति नाम कार्यका है. औ **प्रकृति** नाम उपादान कारनका है. सो प्रधान महत्तत्वका उपादान कारन है, यातें प्रकृति है. औ अनादि है, यातें विकृति नहीं. औ महत्तत्व अहंकार पंच तन्मात्रा, ये सात प्रकृति विकृति हैं. उत्तर उत्तरके प्रकृति हैं, औ पूर्व पूर्वके विकृति हैं. तन्मात्रा बी भूतनके प्रकृति हैं. इस रीतिसैं सात प्रकृति विकृति हैं. औ पंच भूत, औ दस इंद्रिय, औ मन, ये **सोलह विकृति** हैं; प्रकृति नहीं. औ पुरुष प्रकृति विकृति नहीं. काहेतें, जो हेतु किसी पदार्थका होवै, तौ प्रकृति होवै, औ कार्य होवै तौ विकृति होवै, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं, यातें प्रकृति नहीं; औ कार्य नहीं, यातें विकृति नहीं; यातें पुरुष असंग है. इस रीतिसैं सांख्य मतमै पचीस तत्व हैं. तत्व नाम पदार्थका है. सांख्य मतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं; स्वतंत्र प्रकृति जगतका कारन है. औ पुरुषके भोग मोछके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवै है; पुरुष नहीं. प्रकृतिके विषयरूप परिनामतैं पुरुषकूं भोग होवै है; औ बुद्धि द्वारा विवेकरूप प्रकृत्ति के परिनामतैं मोछ होवै है, यद्यपि पुरुष असंग है, ताकै विषे भोग मोछ बनै नहीं. तथापि ज्ञान सुष दुष राग द्वेषसैं आदिलेकै बुद्धिके परिनाम हैं. ता बुद्धिका आत्मासैं अविवेक है, विवेक नहीं. यातैं आत्मामैं आरोपित बंध मोछ है, परमार्थसे नहीं. अविवेक सिद्ध जो आत्मामैं भोग, तासैंही आत्माकूं सांख्य मतमैं भोक्ता कहे हैं. औ परमार्थसैं आत्मा भोक्ता नहीं, बुद्धिही भोक्ता है. बु-

है आत्मासैं भिन्न है; इस ज्ञानका नाम विवेक है. ताके अभावका नाम अविवेक है. इस रीतिसैं सांख्य मतमैं आत्मा असंग है.

औ सुषादिक बुद्धिके परिनाम हैं, यातै बुद्धिके धर्म हैं. औ "आत्मा नाना है," सो वार्त्ता अत्यंत विरुद्ध है. जो सुष दुष आत्माके धर्म होवैं, तौ सुष दुषके प्रति सरीर भेद होनेंतै, आत्माका भेद होवै. सो सुष दुष आत्माके धर्म तो है नहीं; किंतु बुद्धिके धर्म हैं. यातै, सुष दुषके भेदसैं बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवै है; आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं. जैसैं एकही व्यापक आकासमैं नाना उपाधिके धर्म, उपाधि औ आकासके अविवेकसैं प्रतीत होवै है. तैसैं एयही व्यापक आत्मामैं नाना बुद्धिके धर्म अविवेकसैं प्रतीत होवैं हैं. यह वार्त्ता सांख्य मतमैं अंगीकार करनी उचित है. आत्माकूं असंग मानिकै नाना अंगीकार करनैं निष्फल हैं. औ कोई आत्मा मुक्त है, औरनकूं बंध है; इस रीतिसैं बंध मोछके भेदसैं जो आत्माका भेद अंगिकार करैं, सो बी बनै नहीं. काहेतैं, जो बंध मोछ आत्मामैं अंगीकार करैं, तौ बंध मोछके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै, सो बंध मोछ सांख्य मतमैं असंग आत्मामैं अंगीकार किये नहीं. किंतु,

बुद्धिके अविवेकसैं बंध अंगिकार किया है, औ बुद्धिके विवेकसैं बंधका मोछ अंगीकार किया है. जो वस्तु अविवेकसैं होवै, औ विवेकसैं दूरि होवै, सो वस्तु रज्जु सर्पकी नांई मिथ्या होवै है. आत्माविषे बी बुद्धिके अविवेकसैं बंध है, औ विवेकसैं दूरि होवै है. यातैं बंध मिथ्या है; जैसैं बंध मिथ्या है, तैसे आत्माका मोछ बी मिथ्या है. जामैं बंध सत्य होवै, ताकाही मोछ सत्य होवैं है. औ आत्मामैं बंध मिथ्या है, यातैं मोछ बी मिथ्या ही है. इस रीतिसैं मिथ्या जो बंध मोछ सो आकासकी नांई एक आत्मामैं

वी बनै है; तिन्हके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै नही. यातैं सांख्य मतमैं आत्माका भेद असंगत है. तैसे,

२४३. न्याय मतमैं वी आत्माका भेद असंगत है. काहेतैं, यह **न्यायका सिद्धांत है:**— सुष, दुष, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमान, पृथक्, संयोग, विभाग, ये **चतुर्दस गुन जीवरूप आत्मा विषे हैं.** संख्या, परिमान, पृथक, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, ये **अष्ट गुन ईस्वरमैं हैं.** इतना भेद है:— ईस्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, नित्य हैं, औ जीवके तीनूं अनित्य हैं; ईस्वर व्यापक है, औ नित्य है, जीव नाना है, औ संपूर्न व्यापक है, नित्य है. ओ जीवका ज्ञान अनित्य है. यातैं जब ज्ञान गुन होवै, तब तो जीव चेतन है; औ ज्ञान गुनका नास होवै, तब जड रूप रहै है. ईस्वर जीवकी नांई आकास, काल, दिसा मन, नित्य हैं.

औ पृथिवी, जल, तेज, वायुके परमानु, नित्य हैं. जो झरोषेमैं सूछम रज प्रतीत होवै है; ताके छठे भागका नाम **परमानु है.** सो परमानु आत्माकी नांई नित्य हैं. और वी जातिसैं आदिलेके कितने पदार्थ न्याय मतमें नित्य हैं. वेद विरुद्ध सिद्धांतका बहुत लिषनेका जिज्ञासूकूं उपयोग नहीं; यातैं लिखे नहीं. “मैं मनुष्य हुं ब्राह्मन हूं” ऐसी जो देह विषे आत्म भ्रांति; तासैं राग द्वेष होवै है. ता राग द्वेषतें धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै है. तिन्हतैं सरीरके संबंध द्वारा सुष दुष होवै है. इस रीतिसैं न्याय मतमैं आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञान है.

सो भ्रांतिज्ञान तत्वज्ञानसैं दूरि होवै है. देहादिक संपूर्न पदार्थनसैं आत्मा भिन्न है; या निश्चयका नाम **तत्व ज्ञान है.** ता तत्वज्ञानसैं “मैं ब्राह्मन हूं, मनुष्य हूं.” यह भ्रांति दूरि होवै है.

भ्रांतिके नासतैं राग द्वेषका अभाव होवै है. तिन्हके अभावतैं धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है. प्रवृत्तिके अभावतैं सरीर संबंधरूप जन्मका अभाव होवै है. औ प्रारब्धका भोगतें नास होवै है. सरीर संबंधके अभावतैं इकीस दुषका नास होवै है. ता दुषका नासरूपही **न्याय मतमैं मोछ है**. एक सरीर, औ श्रोत्र, त्वक, नेत्र, रसना; घ्रान, मन, ये **षट् इंद्रिय**, औ षट् इंद्रियके **विषय**, औ षट् इंद्रियके **ज्ञान**, औ सुष, दुष, ये **इकीस दुष हैं**. सरिरादिक बी दुषके जनक हैं, यातैं दुष कहिये हैं. औ स्वर्गादिकनका सुष बी नासके भयतें दुषका हेतु है; यातें दुष कहिये हैं.

यद्यपि न्याय मतमैं श्रोत्र औ मन नित्य हैं, तिन्हका नास बनै नहीं. तथापि जिस रूप कारिकै श्रोत्र मन दुषके हेतु हैं; तिस रूपका नास होवै है. पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति कारिकै दुषके हेतु हैं. सो पदार्थनका ज्ञान मोछ कालमैं श्रोत्र औ मन करै नहीं. काहेतैं, जो कर्नगोलकमैं स्थित आकास है, सो **श्रोत्र** कहिये है. ता कर्नगोलकका मोछकालमें अभाव है. यातैं आकास रूप श्रोत्र इंद्रिय है बी, परंतु गोलकके अभावतैं ज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं ज्ञानका जनक जो श्रोत्र इंद्रियका स्वरूप, सोई दुष है; औ ताकाही नास होवै है. औ

आत्माकै साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है. सो मनका संयोग न्याय सिद्धांतमैं एककी क्रियातैं अथवा दोकी क्रियातैं होवै है. जैसैं बाज वृछका संयोग एक बाजकी क्रियातै होवै है. औ दो मेषनका संयोग दोकी क्रियातैं होवै है. तैसैं विभू आत्मामैं तो क्रिया कदै बी होवै नहीं. औ मोछ कालमैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं. यातैं संयोगवान मनकाही मोछ कालमैं अभाव होवै है. औ

३४४. कोई एकदेसी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहै है; आत्माके संयोगकूं नहीं. सुषुप्तिमैं पुरीतत नाम नाडी विषे मन प्रवेस करै है. त्वचासैं मनका संयोग है नहीं. यातैं सुषुप्तिमैं ज्ञान होवै नहीं. तिन्हके मतमैं त्वचासैं संयोगवाला मनही ज्ञान द्वारा दुषका हेतु होनैतैं दुष है; केवल मन नहीं. मोछमैं त्वचाके नास होनैतैं ताके साथि संयोग है नहीं; यातै ज्ञान होवै नहीं. मोछ कालमैं मन है वी, परंतु दुषका हेतु जो ज्ञान का जनक त्वचासैं संयोगवाला मन; ताका संयोगके नासतैं नास होवै है. इस रीतिसैं मोछ कालमैं परमात्मासैं भिन्नही दुष रहित होयके, व्यापक आत्मा जलरूप स्थित होवै है. काहेतैं, ज्ञान गुनतैं आत्माका प्रकास होवै है. सो जीवका ज्ञान संपूर्न इंद्रिय जन्यही है; नित्य है नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोछकालमैं नास होवै है. यातैं प्रकास रहित जडरूप होयके आत्मा मोछ कालमैं स्थित होवै है. **यह न्यायका सिद्धांत है**. औ

३४५ न्याय मतमैं पूर्व उक्त प्रकारसैं सुष दुष औ बंध मोछ आत्माकूं होवै हैं. यातैं आत्मा नाना हैं. औ संपूर्न व्यापक है. सर्व अल्प पदार्थनसैं जो संयोग, सोई **न्याय मतमैं व्यापकका लछन है**. औ सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव व्यापकका लछन नहीं. काहेतैं न्याय मतमैं यद्यपि आत्मा निरवयव है; यातैं **स्वगत भेदका** तो ताके विषै अभाव है वी, परंतु सजातीय, औ विजातीयके भेदका अभाव नहीं. किंतु **सजातीय** जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामैं है. औ **विजातीय** घटादिकनका भेद वी आत्मामैं है. यातैं सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव व्यापकका लछन नहीं; किंतु सर्व अल्प पदार्थनसैं संयोगही व्यापकका लछन है.

याके विषै **कोई संका करै है.** न्याय मतमैं आत्माकी नांई आकास, काल, दिसा बी व्यापक हैं. औ परमानु सूछम हैं, निरवयव हैं; तिनसैं सर्व व्यापक पदार्थनका संयोग बनै नहीं. काहेतैं, जो परमानु सावयव होवैं तब तो किसी देसमैं आत्माका संयोग होवै; औ किसी देसमैं अन्य व्यापक पदार्थनका संयोग होवै. सो परमानु सावयव हैं नहीं; किंतु निरवयव हैं. औ अति सूछम है. तिन्हके साथि एकही देसमें सर्व व्यापक पदार्थनका संयोग होवैगा; **सो बनै नहीं.** काहेतैं जो एकके संयोगसैं स्थान निरुद्ध है; ता देसमैं अन्य पदार्थका संयोग बनै नहीं. यातैं नाना पदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं. एकही कोई पदार्थ व्यापक बनै है.

यह संका बनै नहीं. काहेतैं, जो सावयव वस्तुका संयोग है; सो तो अन्यके संयोगका विरोधी है. जैसैं जा पृथिवी देसमैं हस्तका संयोग होवै, ता देसमैं पादका संयोग होवै नहीं. औ निरवयवका संयोग, स्थानकूं रोकै नहीं. यातैं अन्यके संयोगका विरोधी नहीं. यह वार्त्ता अनुभव सिद्ध है. जैसैं घटके जा देसमैं आकासका संयोग है; ता देसमैंही कालका औ दिसाका संयोग बी है. जो कोई घटका देस, आकास, काल, दिसासैं बाहिर होवै; तौ ता देसमैं आकास काल दिसाका संयोग होवै नहीं; सो बाहिर तौ कोई देस है नहीं; किंतु सर्व पदार्थनके सर्व देस आकास काल दिसामैंही हैं. यातैं सर्व पदार्थनके सर्व देसनविषे आकास काल दिसाका संयोग है. इस रीतिसैं परमानु विषे बी एकही देसमैं नाना निरवयव विभुका संयोग बनै है; कोई दोष नहीं; याते आत्मा नाना है; औ संपूर्न व्यापक है.

३४६ सर्वका सर्व पदार्थनसैं संयोग है. यह न्यायका सिद्धांत

है; सो समीचीन नहीं. काहेतैं, जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैं, तौ सर्व सरीरमैं सर्व आत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा. यातैं कौन सरीर किसका है, यह निश्चय नही होवैगा. किंतु एक एक आत्माके सर्व सरीर हुये चाहिये. जो ऐसैं कहैः— जाके कर्मसैं जो सरीर उत्पन्न हुवा है, ता आत्माका सो सरीर है. **सो बी बनै नहीं.** काहेतैं, कर्म जा सरीरसैं होवै है, ता कर्म करनेवाले पूर्व सरीरमैं बी सर्व आत्माका संबंध है. यातैं कर्म बी सर्व आत्माकेही होवैंगे, एकके नहीं. और **ऐसे कहैः**—जा आत्माके मन सहित सरीर हैं, ता आत्माका सो सरीर है. **सो बी बनै नहीं.** काहेतैं, सरीरकी नांई मनके साथ बी सर्व आत्माका संबंध है. ताके विषे यह निश्चय होवै नहीं; जो कौनसा मन किस आत्माका है. किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये. तैसैं इंद्रिय बी सर्व आत्माके सर्वही होवैंगे. बाहरिके पदार्थन विषे "यह मेरा है. यह औरका है" ऐसा व्यवहार बी सरीर निमित्तक है. सो सरीर सर्व आत्माके सर्व हैं. यातै बाहरिके पदार्थ बी सर्व आत्माके सर्व हुए चाहिये. और

जो ऐसैं कहैः— जा आत्माकूं जा सरीरमैं अहंबुद्धि औ ममबुद्धि होवै; ता आत्माका सो सरीर है. सो अहंबुद्धि औ ममबुद्धि एक है; यातै सर्व आत्मामैं रहै नहीं. किंतु एक धर्म एकही धर्मी विषे रहै है. यातैं एकही आत्माका सरीर है. जा आत्माका जो सरीर है, ता सरीरके संबंधी मन इंद्रिय औ बाहरिके पदार्थ ता आत्माके हैं. यातै व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनेमैं बी दोष नहीं.

सो वार्त्ता बी बनै नही. काहेतैं, **यद्यपि** अहंबुद्धि एक देहमैं एकही आत्माकूं होवै है, **तथापि** सो न्याय मतमैं बनै नहीं.

किंतु सर्व आत्माकूं एक देहमैं अहंबुद्धि हुई चाहिये. काहेतैं, न्याय मतमैं बुद्धि नाम ज्ञानका है. सो ज्ञान आत्मा औ मनके संयोगतैं होवे है. सो मनके साथि संयोग सर्व आत्माका है. यातैं मनके संयोगसैं जैसे एक देहमैं एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवे है; तैसे एक देहमें सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसैं कहै:— यद्यपि मनका संयोग तौ सर्व आत्मासैं है; तथापि जा आत्मामैं ज्ञानका जनक अदृष्ट है, ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवे है; तौ बी सर्वकूंही ज्ञान हुवा चाहिये. काहेतैं, जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करैं, तौ एक सरीरकी सुभ असुभ क्रियातैं, सरीरमैं स्थित सर्व आत्मामैंही अदृष्ट हुये चाहिये; यह वार्त्ता पूर्व कही आये. यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करैं, तौ एक देहमैं सर्वकूं सुख दुखका भोग हुया चाहिये. यातैं "व्यापक नाना कर्त्ता भोक्ता आत्मा है" यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं. औ

३४७. **हमारे सिद्धांतमैं** तौ कर्त्ता भोक्ता अंतःकरन है, सो अंतकरन नाना हैं, व्यापक औ अनु नहीं. किंतु सरीरके समान ता अंतःकरनका परिमान है. दीपकके प्रकासकी नांई बडे सरीरकूं प्राप्ति होवै, तब अंतःकरनका विकास होवै है. औ न्यून सरीरमैं संकोच होवे है. यह वार्त्ता सिद्धांत बिंदुके व्याख्यानमैं मधुसूदन स्वामीनैं प्रतिपादन करी है. जा अंतःकरनका जा सरीरसैं संबंध है; ता अंतःकरनकूं ता सरीरसें भोग होवै है.

जो अंतःकरनकूं व्यापक अंगीकार करैं, तौ सर्व सरीर सर्वके होवैं; औ भोग बी सर्वकूं होवैं; सो व्यापक अंतःकरन नहीं; यातैं दोष नहीं. औ अंतः करनकूं अनु अंगीकार करैं, तौ सरीरके एक देसमें अंतःकरन रहै है; ऐसा अंगीकार करना होवेगा, सो वार्त्ता

बनै नहीं. काहेतें, जो एक कालमैंही पाद औ मस्तकमैं कंटक बेध होवै, तौ दोनूं स्थानमैं एकही कालमैं पीडा होवै है; सो नही हुई चाहिये. काहेतें, जो अंतःकरन अनु होवै, तौ एक ही स्थानमैं एक कालमैं रहै. यातैं जा स्थानमैं अंतःकरन होवै, ता स्थानमैंही पीडा हुई चाहिये. दोनूं स्थानमैं नहीं. यातैं अंतःकरन अनु औ व्यापक नहीं; किंतु सरीरके समान है. यातैं, कोई दोष नहीं. अनु औ व्यापकसैं बिलछन जो है; ताकूंही **मध्यम परिमान** कहै हैं. औ.

३४८. न्याय मतमैं किसी नवीननैं ऐसा अंगीकार किया है:— आत्मा नाना हैं, कर्ता भोक्ता है, व्यापक नहीं, यातै भोगका संकर नहीं. अनु बी नहीं, यातै दो स्थानमैं पीडाका असंभव बी नहीं. किंतु जैसैं वेदांत मतमैं अंतःकरन मध्यम परिमान है; तैसै आत्मा बी मध्यम परिमान है. ताकेविषे चतुर्दस गुन रहै हैं.

३४९. **सो बी समीचीन नहीं.** काहेतें, जो आत्माकूं संकोच विकासवाला अंगीकार करैं, तौ दीपकी प्रभाकी नांई आत्मा बिकारी, औ विनासवाला होवैगा. यातैं मोछ प्रतिपादक सास्त्र औ साधन निष्फल होवैंगे. औ मध्यम परिमान अंगीकार करिके संकोच विकास अंगीकार नही करैं तौ कौनसे सरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करैं यह निश्चै होवै नहीं. जो मनुष्य सरीरके समान अंगीकार करैं; तौ जब आत्मा हस्तीके सरीरकूं प्राप्त होवै, तब सर्व सरीरमैं आत्मा नहीं होवैगा. यातें जा देसमैं हस्तीके आत्मा नहीं है, ता देसमैं पीडा नहीं हुई चाहिये. औ हस्तीके सरीरके समान अंगीकार करैं, तौ तासैं और सरीर बडे हैं; तिन्हके एक देसमैं पीडा नहीं हुई चाहिये. औ सर्वसें बडा किसीका सरीर है नहीं, जाके

समान आत्मा अंगीकार करैं. औ सर्वसैं बडा विराटका सरीर है. ताके समान जो आत्मा अंगीकार करैं, तौ विराटके सरीरके अंतर्भूत सर्व सरीर हैं. यातै सर्व आत्माका सर्व सरीरसैं संबंध होवैगा. ताकिविषै पूर्व दोष कहेही हैं. औ **यह नियम है:– जो मध्यम परिमान वस्तु होवै सो सरीरकी न्याई अनित्य होवै है.** यातैं आत्मा बी अनित्य होवैगा. औ अंतःकरनका तो हमारे मतमैं ज्ञानतैं नास होवै है; यातै अनित्य है. मध्यम परिमान. अंगीकार कीयेसैं दोष नहीं. इस रीतिसैं. नवीन तार्किकका मत बी समीचीन नहीं. औ

२९०. **जो कोई ऐसै कहै:–** " आत्मा नाना हैं, औ अनु हैं" **सो वार्ता बी बनै नही.** काहेतैं, जो आत्माकूं कर्ता भोक्ता अंगीकार करैं, तौ अंतःकरनके अनु पक्षमैं जो दोष कह्या, सो दोष होवैगा. औ कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवैंगे. एकही व्यापक सर्व सरीरमैं अंगीकार करना योग्य है. औ कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ अपने सिद्धांतका बी त्याग होवैगा. काहेतैं, **अनुवादीका यह सिद्धांत है:–** ज्ञान सुष दुष धर्मसैं आदिलेके आत्माके धर्म हैं. यातैं जो आत्माकूं अनु अंगीकार करैं, तौ जा सरीर देसमैं आत्मा नहीं है, सो देस मृत समान है; ताके विषै पीडादिक नहीं हुई चाहिये.

२९१. और **जो ऐसै कहैं:– यद्यपि** आत्मा तौ सरीरके एक देसमैं है; परंतु कस्तुरीके गंधकी नांई वाका ज्ञान सारे सरीरमैं व्याप्त है. यातैं सर्व सरीरविषै अनुकूल प्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव करै है.

सो बी बनै नही. काहेतैं **यह नियम है:–** जितने देसमैं

गुनवाला रहै, तासैं बाहरि गुन रहै नहीं; किंतु गुनीमैंही गुन रहै है. जैसे रूप घटादिकनतैं बाहरि रहै नहीं; तैसै आत्मासैं बाहरि ज्ञान बी बनै नहीं. औ कस्तुरीके सूछम भाग जितने देसमैं व्याप्त होवैं, उतने देसमैंही गंध व्याप्त होवै है. यातैं कस्तुरीका दृष्टांत बी बनै नहीं. यातैं "आत्मा अनु है" यह पछ बी बनै नहीं. औ

कहूं श्रुतिमैं आत्मा अत्यंत अनुसैं बी अनु जो कह्या है; सो दुर्विज्ञेय है यातें कह्या है. जैसे अत्यंत अनु वस्तुका मंद दृष्टि पुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं, तैसैं बहिर्मुख पुरुषकूं आत्माका बी ज्ञान होवै नहीं. यातैं अनुके समान है; यह श्रुतिका अभिप्राय है. औ "आत्मा अनु है" यह अभिप्राय नहीं. काहेतैं, बहुत स्थानमैं व्यापक रूप आपही वेदने प्रतिपादन किया है; यातैं अनु नहीं. इस रीतिसैं "व्यापक तथा मध्यम परिमान अथवा अनु आत्मा नाना है." यह कहना संभवै नहीं.

३५२ परिसेषतैं एक व्यापक आत्मा है, ताके विषे धर्म, अधर्म सुख, दुख, औ बंध मोछ, जो अंगीकार करैं; तो किसीकूं सुख, औ किसीकूं दुख, किसीकूं बंध, किसीकूं मोछ, ऐसा व्यवहार नही होवैगा. यातैं धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं. यद्यपि बुद्धि जड है, यातैं ताके विषे बी धर्म सुखादिक बनै नहीं; तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं; इस अभिप्रायतैं बुद्धिके धर्म कहिये हैं. औ "बुद्धिके धर्म हैं," याके विषे अभिप्राय नहीं. बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं अध्यस्त हैं. जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवैं सो तामैं परमार्थसैं होवै नहीं. जैसे सर्प रज्जुमैं अध्यस्त है, सो परमार्थसैं रज्जुमैं है नहीं. तैसैं बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं है नहीं. औ अध्यस्त वस्तु बी किसीका आश्रय होवै नहीं; यातैं बुद्धि बी सु-

धादिकनका आश्रय है नहीं. परंतु अज्ञान तौ सुद्ध चेतनमैं अध्यस्त है, औ अंतःकरन अज्ञान उपहितमैं अध्यस्त है, औ अंतःकरन उपहितमैं धर्म, अधर्म, सुष, दुष, बंध, मोछ, अध्यस्त हैं. इस रीतिसैं आत्मामैं धर्मादिकनके अधिष्ठानपनेका अंतःकरन उपाधि है. यातैं अंतःकरनके धर्म कहिये हैं.

३९३ जो अंतःकरन विसिष्टमैं धर्मादिक अध्यस्त कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं, विसेषन युक्तका नाम **विसिष्ट** है. धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा, ताका अंतःकरन जो विसेषन अंगीकार करैं, तौ अंतःकरन बी धर्म सुषादिकनका अधिष्ठान होवैगा. **सो वार्ता बनै नहीं.** काहेतैं, मिथ्या वस्तु अधिष्ठान होवै नहीं. यातैं आत्मामैं धर्मादिकनके अध्यासका अंतःकरन विसेषन नहीं; किंतु उपाधि है. **उपाधिका यह स्वभाव है:**— आप तटस्थ होयके जितने देसमैं आप होवै, उतने देसमैं स्थित वस्तुकूं जनावै. औ **विसेसनका यह स्वभाव है:**— जितने देसमैं आप होवै, उतने देसमैं स्थित वस्तुकूं आपने सहित जनावै. विसेषनवानकूं **विसिष्ट** कहै हैं; औ उपाधिवालेकूं **उपहित** कहै हैं. इस रीतिसैं अंतःकरन विसिष्टमैं जो धर्मादि अध्यस्त कहैं, तौ जितने देसमैं अंतःकरन हैं ता देसमैं स्थित चेतन भाग औ अंतःकरन दोनुवांकूं अधिष्ठानता होवै, सो अंतःकरन आप बी अध्यस्त है; यातैं अधिष्ठान बनै नहीं. इस अभिप्रायतैं अंतःकरन उपहितमैं धर्मादिक अध्यस्त कहे. यातैं "जितने देसमैं अंतःकरन हैं, उतने देसमैं स्थित चेतन भाग मात्रमैं अधिष्ठानता है; अंतःकरनमैं नही." यह वार्ता बनै है. तैसे.

३९४ अंतःकरन बी अज्ञान उपहितमैं अध्यस्त है; अज्ञान विसिष्टमैं नहीं. इस रीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक, तिन्हका अधि-

ष्ठान आत्मा है. अध्यासके अधिष्ठानपनेकी अंतःकरन उपाधि है. यातें बुद्धिके धर्म कहे हैं. औ अविवेकसें अंतःकरन आत्मा दोनूंवां विषे प्रतीति होवे है. यातें अंतःकरन विसिष्ठ जो प्रमाता, ताके धर्म कहे हैं. धर्मादिक अंतःकरनके धर्म होवें, अथवा अंतःकरन विसिष्ट प्रमताके धर्म होवें, अथवा रज्जु सर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्व नगर, नभ नीलताकी नांई किसीके धर्म ना होवें; सर्व प्रकारसें आत्माके धर्म नहीं. **यद्यपि** आत्मामें अध्यस्त है; **तथापि** जो वस्तु जामें अध्यस्त होवे सो ताहीमें परमार्थसें होवे नहीं. **अध्यस्त** नाम कल्पितका है. यातें राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, सुष, दुष, बंध, मोक्षसें रहित एक व्यापक आत्मा है. सो

३५५ **आत्मा सत है.** जा वस्तुका ज्ञानसें अभाव होवे, सो **असत** कहिये है. जाकी निवृत्ति किसी कालमें बी नहीं होवै सो **सत** कहिये है. सर्व पदार्थनका औ तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है. जो आत्माकी निवृत्ति होवे, तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेतें, सून्यमें निवृत्ति होवे नहीं. जो आत्मा औ ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करें, तौ ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा. इस रीतीसें अनवस्था होवैगी. और, अत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करें, ताकूं यह पूछे हैं, जो अत्माकी निवृत्ति किसीनें अनुभव करी है, अथवा नहीं? औ ऐसें कहैः—अनुभव करी है; **सो बनै नहीं.** काहेतें, जो अनुभव करने वाला है, सोई आत्माहै. औ अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपने मस्तक छेदनके अनुभव समान है. यातें अत्माकी निवृत्तिका अनुभव बने नहीं. औ ऐसे कहैः— जो अत्माकी निवृत्ति तौ होवे है, परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसिकूं नहीं. तौ यह वार्ता सिद्ध हुई जो आत्माकी निवृत्ति तौ

होवै नहीं ; काहेतैं, जो वस्तु किसीनैं अनुभव नही करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवै है. यातैं आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं याहीतैं **आत्मा सत है.** औ

३५६ **आत्मा चित है.** प्रकास रूप जो ज्ञान, सो **चित** कहिये है. जो अप्रकास रूप आत्मा अंगीकार करैं, तौ अनात्म जड वस्तुका प्रकास कदै होवै नहीं. जो अंतःकरन औ इंद्रियनसैं पदार्थनका प्रकास कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं, अंतःकरन औ इंद्रिय परिच्छिन्न हैं, यातैं कार्य हैं. जो परिच्छिन्न होवै, सो घटकी नांई कार्य होवै है. औ अंतःकरन इंद्रिय बी परिच्छिन्न हैं; यातैं, कार्य हैं. देस कालतैं जाका अंत होवै, सो **परिच्छिन्न** कहिये है. जो कार्य होवै सो जड होवै है. यातैं अंतःकरन औ इंद्रिय बी जड हैं. तिनतैं किसी वस्तुका प्रकास बनै नहीं. यातैं जो आत्मा सर्वका प्रकास करै है, सो प्रकास रूप है. और

३५७ **जो ऐसैं कहैं:**— आत्मा प्रकास रूप नहीं, किंतु आत्मा तौ जड है; औ ताके विषे ज्ञान गुन है; ता ज्ञानतैं आत्मा औ अनात्माका प्रकास होवै है. ताकूं यह पूछे हैं:— आत्माका ज्ञान गुन नित्य है, अथवा अनित्य है? जो नित्य कहैं, तौ आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेतैं, **यह नियम है:**— जो आत्मासैं भिन्न होवै, सो अनित्य होवै है. जो ज्ञानकूं आत्मासैं भिन्न अंगीकार करैं, तौ अनित्यही होवैगा. यातैं नित्य मानिके आत्मासैं भिन्न ज्ञान है, यह कहना बनै नहीं. औ अनित्य अंगीकार करैं, तौ घटादिकनकी नांई जड होवैगा. जो अनित्य वस्तु होवै, सो जड होवै है. यातैं "ज्ञान अनित्य है," यह कहना बनै नहीं. किंतु ज्ञान नित्यही है. सो नित्य ज्ञान आत्मस्वरूपही है. जो अनित्य अंगीकार करैं, तौ कदाचित आत्मामैं ज्ञान होवै, औ

कदाचित नहीं. यातें आत्मासें भिन्न बी ज्ञान होवै, औ नित्य अंगीकार कियेसें तौ भिन्न होवै नहीं. जो गुन होवै सो गुनवान विषे कदाचित रहै; औ कदाचित नहीं बी रहै. जैसें वस्त्रका नील, पीत, गुन कदाचित रहै, औ कदाचित नही रहै. यातें जो गुन होवै, सो आगमापायी होवै है. औ ज्ञानकूं नित्यता होनेतें, आगमापायी है नहीं. यातें आत्माका स्वरूपही ज्ञान है. औ

३९८ ज्ञानकूं अनित्य कहैं, तौ इंद्रिय अथवा अंतःकरनसें ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा. सो बनै नहीं. काहेतें, सुषुप्तिमैं इंद्रियादिक तौ हैं नहीं, औ सुषका ज्ञान होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. जो सुषुप्तिमैं सुषका ज्ञान अंगीकार नही करैं, तौ "जागिके मैं सुषसें सोया" यह सुषुप्तिके सुषकी स्मृति होवै है; सो नही हुई चाहिये. जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै, ताकी स्मृति होवै है. औ अज्ञात वस्तुकी स्मृति होवै नहीं. औ सुषुप्तिके सुषकी जागिके स्मृति होवै है. यातें सुषुप्तिमैं सुषका ज्ञान होवै है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमैं हैं नहीं; यातें नित्य है. ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कदै बी रहै नहीं. यातें ज्ञान आत्माका स्वरूप है. जैसे उष्नताकूं त्यागिके अग्नि कदै बी रहै नहीं. यातें उष्नता वन्हिका स्वरूप है. तैसे ज्ञान बी आत्माका स्वरूप है. जो आगमापायी होवै, सो गुन होवै है. उष्नता औ ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, यातें अग्नि औ आत्माके स्वरूप हैं. जो वस्तु कदाचित होवै, औ कदाचित न होवै, सो आगमापायी कहिये हैं.

३९९ उत्पत्ति औ विनास अंतःकरनकी वृत्तिके होवै हैं, ज्ञानके नहीं. आत्म स्वरूप जो ज्ञान है, सो विसेष व्यवहारका हेतु नहीं; किंतु ज्ञान सहित वृत्ति, अथवा वृत्तिमैं आरूढ ज्ञान, व्यवहारका

हेतु है. **यह अवछेद वादकी रीति है.** औ **आभास वादमैं** आभास सहित वृत्तिसैं व्यवहार होवै है. आभास द्वारा अथवा साछात वृत्ति द्वारा आत्म स्वरूप ज्ञानसैंही सर्व व्यवहार सिद्ध होवै है; नहीं तो होवै नहीं. इस रीतिसैं सर्वका प्रकासक ज्ञान स्वरूप आत्मा है; यातैं **चित है.** औ

२६० **आत्मा आनंद रूप है.** जो आत्मा आनंद रूप नहीं होवै, तौ विषय संबंधसैं स्वरूप आनंदका भान होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. "विषयमैं आनंद नहीं." यह वार्त्ता पूर्व कही है. जो विषयमैं आनंद होवै, तौ जा विषयतैं एक पुरुषकूं सुष होवै, तासैंही अन्यकूं दुष होवै है. जैसैं अग्निके स्पर्सतैं अग्नि कीटकूं, औ सर्प सिंहके रूप देषनेतैं सर्पनी सिंहनीकूं आनंद होवै है; औ अन्य पुरुषनकूं दुष होवै है; सो नही हुया चाहिये. औ **सिद्धांतमैं** तौ अग्निकीटकूं अग्नि स्पर्सकी इच्छा होवै, तब चंचल बुद्धिमैं स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. अग्नि संबंधतैं छनमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चल बुद्धिमैं स्वरूप आनंदका भान होवै है. अन्य पुरुषनकूं अग्निसंबंधकी इछा है नही; किंतु अन्य पदार्थनकी इच्छा है. तिन्ह पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसैं दूरि होवै नही. यातैं चंचल अंतःकरनमैं अग्निसंबंधसैं आनंद होवै नहीं. याके विषे,

२६१ **यह संका होवै है:**— जो इच्छा रूप अंतःकरनकी वृत्ति है, सो तौ विषय प्राप्तिसैं नासकूं प्राप्त होय गई, औ अन्य वृत्तिका कोई निमित्त है नहीं; यातै उत्पत्ति हुई नही. औ वृत्तिसैं विना स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं; यातै विषयमैं ही आनंद है.

सो संका बनै नही. काहेतैं, **यद्यपि** इच्छारूप तौ अंतःकरनकी वृत्तिका अभाव है, औ इच्छारूप वृत्ति होवै तौ बी ताकेविषे

आनंद प्रकास होवै नहीं. काहेतैं इच्छारूप वृत्ति राजस है, औ आनंदका प्रकास सात्विक वृत्तिमैं होवै है. तथापि वांछित पदार्थ जो मिल्या है, ताके स्वरूपकूं विषय करने वास्ते जो ज्ञानरूप अंतः-करनकी वृत्ति है, सो सात्विक है. काहेतैं, सत्व गुनसैं ज्ञान होवै है. "यह नियम है." ता सात्विक वृत्तिमैं आनंदका भान होवै है, परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है. ताके पृष्ठ भागमैं स्थित जो अंतःकरन उपहित चेतन स्वरूप आनंद, ताका तिस वृत्तिसैं ग्रहन होवै नही. यातैं विषय उपहित चेतन रूप आनंदका भान होवै है; सो विषय उपहित चेतन आत्मासैं भिन्न नहीं. यातैं आत्मानंदकाही विषयमैं भान कहिये है. ता ज्ञान रूप वृत्ति विषै विषयके साथि नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है; अथवा

ज्ञान रूप जो बहिर्मुख वृत्ति, तासैं अन्य अंतर्मुख वृत्ति होवै है. ताके विषै अंतःकरन उपहित चेतनरूप आनंदकाही भान होवै है; यह उत्तम सिद्धांत है. ता वृत्तिकी उत्पितिमै इच्छादिकनका अभावही निमित्त है. जैसे इच्छादिकनतैं रहित जो एकांतमै उदासीन पुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुख ज्ञानरूपतैं कोई वृत्ति होवै नहीं; आनंदका भान होवै है. यातैं इच्छादिकनके अभावरूप निमित्ततैं अंतर्मुख वृत्ति आनंद ग्रहन करनेवाली होवै है. तासैं वांछित वि-षयके लाभसैं इच्छादिकनका अभाव होनैतैं ज्ञानसैं अनंतर अंतर्मुख वृत्ति होवै है. तिसतैं अंतःकरन उपहित आनंदकाही ग्रहन होवै है. सो स्वरूप आनंदका ग्रहन औ विषयका ज्ञान अत्यंत अव्यवहि-त है. यातैं पुरुषकुं ऐसी भ्रांति होवै है:— "मैंने विषयमैं आनंद अनुभव किया है." प्रथम पक्षसैं यह पक्ष उत्तम है. काहेतैं, जो विषयका ज्ञानरूप वृत्ति है; तासैं अंतःकरन उपहित आनंदका तो

भान बनै नहीं. यातैं विषय उपहित आनंदका भान होवैगा. तौ मार्गमैं वृछका जो ज्ञानरूप वृत्ति है, सो बी सात्विक है. तासैं बी वृछ उपहित चेतन स्वरूप आनंदका भान हुवा चाहिये. तैसे सर्व ज्ञानसैं ज्ञेय उपहित चेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये. यातैं अनात्म वस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुष वृत्ति, तासैं ज्ञेय उपहित चेतन स्वरूप आनंदका ग्रहन होवै नहीं. इस रीतिसैं विषयके संबंधसैं आत्म स्वरूपानंदका भान होवै है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तौ विषय संबंधसैं आनंदका भान बनै नहीं. यातैं **आत्मा आनंदरूप है.** औ

३६२ आत्माका संबंधी जो वस्तु है, ताकेविषे प्रेम होवै है. तासैं सन्निहितमैं अधिक प्रेम होवै है. इस रीतिसैं बाहिर बाहिरके पदार्थनकी अपेछातैं अंतर अंतरके पदार्थनमैं अधिक प्रीति है. परंपरातैं आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र, तामैं प्रीति होवै है. पुत्रके मित्रकी अपेछातैं पुत्रमैं अधिक प्रीति है, औ पुत्रसैं बी स्थूल सूछम सरीरमैं अधिक प्रीति है. औ स्थूल सूछम सरिरमैं बी स्थूल तैं सूछममैं अधिक प्रीति है. पूर्व पूर्वसैं उत्तर उत्तर आत्माके समीप हैं. आत्माका आभास सूछम सरीरमैं है; औरमैं नहीं. यातैं आभास द्वारा आत्माका सूछम सरीरसैं संबंध है; औरसैं नहीं. स्थूल सरीरसैं सूछम सरीरका संबध है. याते, स्थूल सरीरसैं सूछम सरीर द्वारा आत्माका संबंध है. औ पुत्रसैं स्थूल सरिर द्वारा संबंध है. औ पुत्रके मित्रसैं पुत्रद्वारा संबंध है. इस रीतिसैं उत्तर उत्तर जो आत्माके समीप ताके विषे अधिक प्रीति है. जा आत्माके संबंध होनैंसैं पदार्थमैं प्रीति होवै. ता आत्मामैंही मुख्य प्रीति है; औ पदार्थमैं नहीं. जैसे पुत्रके मित्रमैं पुत्रके संबंधतैं प्रीति है, यातैं पुत्रमैंही प्रीति है; पुत्रके मित्रमैं नहीं. तैसैं आत्माके अधिक समीपमैं अधिक प्रीति

होवै है. यातें आत्माविषेही सर्वकी प्रीति है. सो

प्रीति आनंदमें औ दुषके अभावमें होवै है; औरमें नहीं. और पदार्थमें जो प्रीति होवै, सो आनंद औ दुषके आभावके निमित्त होवै है. यातें आनंद औ दुषके अभावसें औरमें प्रीति नहीं. यातें सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा, सो आनंदरूप है; औ दुषका अभावरूप है. कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है. जैसें सर्पका अभाव रज्जुरूप है. यातें कल्पित जो दुष, ताका अभाव बी आत्मारूप है. इस रीतिसें आत्मा आनंदरूप है. औ

३६३ **न्यायमतमें** आत्माका आनंद गुन है, सो समीचिन नहीं. काहेतें, जो आनंद गुनकूं नित्य अंगीकार करें, तौ आगमापायी नहीं होवै; यातें, आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवैगा. औ नित्य आनंद न्याय मतमें है बी नहीं. औ अनित्य जो कहैं, तौ अनुकूल विषय औ इंद्रियके संबंधसें आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. यातें सुषुप्तिमें आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेतें, सुषुप्तिमें विषयका औ इंद्रियका संबंध है नहीं. यातें आत्माका आनंद गुन नहीं, किंतु आत्मा आनंद स्वरूप है. **इस रीतिसें आत्मा सत चित आनंदरूप है.** सो

३६४ **सत्चित आनंद परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही है** जो आत्माके गुन होवै तौ परस्पर भिन्न बी होवै; औ आत्मस्वरूप है, यातें भिन्न नहीं; एकही आत्मा निवृत्ति रहित है. यातें **सत** कहिये है. औ जडसें विलछन प्रकासरूप है; यातें **चित** कहिये है. औ दुषसें विलछन मुख्य प्रीतिका विषय है, यातें **आनंद** कहिये है. जैसें उस्न प्रकासरूप अग्नि है, तैसें सच्चित आनंदरूप आत्मा है. औ सच्चित आनंद स्वरूपही सास्त्रमें **ब्रह्म** कह्या है, यातें ब्रह्म स्वरूप आत्मा है. औ **ब्रह्म** नाम व्याप-

कका **है.** देसतैं जाका अंत नहीं होवे, सो **व्यापक** कहिये है. तासैं आत्मा जो भिन्न होवे, तो देसतैं अंतवाला होवैगा. जाका देसतैं अंत होवै, ताका कालसैं बी अंत होवे है; **यह नियम है.** यातै अनित्य होवैगा. जाका कालसैं अंत होवै, सो **अनित्य** कहिये है. यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं. औ आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै, तौ अनात्म होवैगा. जो अनात्म घटादिक हैं, सो जड हैं; यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी जडही होवैगा. यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी नहीं; **किंतु ब्रह्म स्वरूपही आत्मा है.**

३६५ एकही चेतन सर्व प्रपंच औ मायाका अधिष्ठान है, यातैं **ब्रह्म** कहिये है. अविद्या औ व्यष्टि देहादिकनका अधिष्ठान है; यातैं **आत्मा** कहिये है. तत्पदका लक्ष्य **ब्रह्म** कहिये है; औ त्वंपदका लक्ष्य **आत्मा** कहिये है. ईस्वर साक्षी तत्पदका लक्ष्य है. औ जीव साक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. व्यष्टि संघात उपहित चेतन **जीव साक्षी** है. औ समष्टि संघात उपहित चेतन **ईस्वर साक्षी** कहिये है. **यद्यपि** जीवकी औ ईस्वरकी एकता बनै नहीं; **तथापि** जीव साक्षी औ ईस्वर साक्षीका उपाधिके भेदसें भेद है; औ स्वरूपसैं एकही है. जैसे मठमैं स्थित जो घटाकास औ मठाकास तिन्हका उपाधिके भेद बिना स्वरूपसैं भेद नहीं. तैसें आत्मा औ ब्रह्मका उपाधि भेद बिना भेद नहीं, एकही वस्तु है. सो

३६६. ब्रह्मरूप **आत्मा अजन्म** कहिये जन्म रहित **है.** जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवैगा. सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं; तिन्हकूं इष्ट नहीं. काहेतैं, जो आत्मा उत्पत्ति नासवान होवै, तौ प्रथम जन्म विषै पूर्व कर्म विनाही सुष दुषका भोग; औ किये कर्मका भोगसैं विना नास होवैगा. यातैं कर्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं, तौ बी जन्म

नास रहितही अंगीकार करना होवैगा. औ आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं, तो हेतुसैं विना तो किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं. यातैं, किसी हेतुसैंही जन्म कहना होवैगा. **सो बनै नहीं.** काहेतैं, जो आत्माका हेतु है, सो आत्मासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो आत्मासैं भिन्न संपूर्न आत्मामैं कल्पित है. यातैं आत्माका हेतु बनै नहीं. जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प रज्जुका हेतु नहीं, तैसैं आत्मामैं कल्पित वस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं.

३६७. जैसैं एक रज्जुविषै नाना पुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथिवी, रेषा, जलधाराकी भ्रांति होवै है. ता भ्रांतिमैं दो अंस हैं. एक तौ सामान्य इदं अंस है, औ एक सर्पादिक **विसेष अंस है.** सो सामान्य इदं अंस सर्पादिक विसेष अंसनमैं सारे व्यापक है. "यह सर्प है, यह दंड है, यह पृथिवीकी रेषा है, यह जलकी रेषा है." इस रीतिसैं सर्पादिक विसेष अंसमैं इदं अंस सारे व्यापक है. सो व्यापक सामान्य इदं अंस रज्जु स्वरूप है. ता **सामान्य इदं अंसके** ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु रज्जुका **सामान्य ज्ञान** कहे हैं. सो सामान्य इदं अंस सत्य है. काहेतैं रज्जुका ज्ञान हुयेसैं अनंतर बी ता इदं अंसकी प्रतीति होवै है. जैसैं भ्रांति कालमैं "यह सर्प है." या रीतिसैं सर्पादिकनसैं मिलिके इदं अंसकी प्रतीति होवै है. तैसैं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर बी "यह रज्जु है." या रीतिसैं रज्जुके साथि मिलिके इदं अंसकी प्रतीति होवै है. जो इदं अंस बी मिथ्या होवै तौ सर्पादिकनकी नाईं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर ताकी बी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं सर्पादिक भ्रांतिमैं व्यापक **जो इदं अंस सो सत्य है.** औ अधिष्ठान रज्जु रूप है. औ परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित हैं.

३६८ तैसैं सर्व पदार्थनमैं **पांच अंस हैं;** एक नाम, औ

रूप, औ अस्ति, तथा भाति, औ प्रिय. घट यह दो अच्छर नाम, औ गोलरूप घट है यह **अस्ति**, औ घट प्रतीति होवै है यह भाति; औ घट प्रिय है यह **आनंद.** सर्पादिक बी सर्पनी आदिकनकूं प्रिय हैं. इस रीतिसें सर्व पदार्थनमैं पांच अंस हैं. तिन्ह विषे अस्ति भाति प्रियरूप तीनि अंस सर्व पदार्थनमैं व्यापक हैं. औ नाम रूप व्यभिचारी हैं. जो वस्तु कहूं होवै औ कहूं नही होवै, सो **व्यभिचारी** कहिये हैं. घट नाम औ गोलरूप घटविषे नहीं हैं. पट नाम औ ताका रूप घटविषे नहीं है. इस रीतिसें सर्व पदार्थनविषे नाम रूप अंस व्यभिचारी हैं. औ अस्ति भाती प्रियरूप सर्वविषे अनुगत है. जैसैं, सर्प दंडादिकनमैं अनुगत इदं अंस सत्य औ अधिष्ठान है; तैसे **सर्व पदार्थनमैं अनुगत अस्ति भाति प्रियरूप सत्य है; औ अधिष्ठानरूप** है. औ सर्प दंडादिकनकी नांई व्यभिचारी नाम रूप कल्पित हैं. औ अस्ति भाति प्रिय सच्चित आनंदरूप है; यातैं आत्मस्वरूप है. इस रीतिसैं सच्चित आनंद रूप आत्मा विषे संपूर्न नाम रूप प्रपंच कल्पित है. सो कल्पित पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं; यातैं **आत्मा अजन्म** है. जा वस्तुका जन्म होवै, ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिनाम, अपच्छय, बिनास, रूप पांच विकार और होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं; यातैं उत्तर पांच विकार बी होवै नहीं. इस रीतिसैं **अजन्म** कहिये, जन्मादिक **षट विकारसैं** रहित आत्मा है. **सत्ता** नाम प्रगटताका है; औ **अपच्छय** नाम घटनेका है. सो

३६९ **आत्मा असंग** है. **संग** नाम संबंधका है. सो सजातीय विजातीय स्वगत पदार्थसैं होवै है. जैसैं घटका घटसैं जो संबंध है, सो **सजातीयसैं संबंध** है. औ घटका पटसैं जो संबंध सो **विजातियसैं संबंध** है. **स्वगत** नाम अवयवका है. यातै पट-

का तंतुसैं जो संबंध सो **स्वगतसैं संबंध है.** आत्मा दो अथवा अनंत होवैं, तौ सजातीयसैं आत्माका संबंध होवै, सो आत्मा एक है; यातैं सजातीय आत्मासैं आत्माका संबंध नहीं. औ आत्मासैं विजातीय अनात्मा है, सो मृग तृस्नाके जलकी नांई आत्मामैं कल्पित है. तां कल्पितसैं आत्माका संबंध बनै नहीं. जैसैं मृग तृस्नाके जलसैं पृथिवीका संबंध होवै नहीं; जो संबंध होवै तौ ऊषर भूमि वा जलसैं गिली हुई चाहिये. जैसी मृग तृस्नाके जलसैं ऊषर भूमिका संबंध नहीं; तैसै आत्मामैं कल्पित जो विजातीय अनात्मा, तासैं आत्माका संबंध नहीं. जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगतसै संबंध होवै. आत्मा नित्य है, यातैं निरवयव है. ताका स्वगतसैं संबंध बनै नहीं. इस रीतिसैं **सजातीय विजातिय स्वगत संबंध आत्माविषै नहीं,** यातै असंग है, इस रीतिसैं हे सिष्य ! सच्चित् आनंद, ब्रह्मरूप, जन्मादिक विकार, रहित, असंग आत्मा है, सो तूं है. यह **प्रथम प्रस्नका अर्द्ध दोहेसैं आचार्यनै उत्तर कह्या.**

३७० "जगतका कर्त्ता कौन है?" या **द्वितीय प्रस्नका उत्तर** अर्द्ध दोहेसैं कहै हैं.

दोहा.

विभु चेतन माया करै, जगको उत्पत्ति भंग;

टीका.—**विभु** कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रित औ ताकूं विषय करनै वाली **माया** कहिये सत असतसैं विलच्छन अद्भुत सच्चिद्रूप अज्ञान, तासैं जगतकी उत्पत्ति भंग होवै है. उत्पत्ति औ भंग कहनेतैं स्थितिका ग्रहन अर्थतैं होवै है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा. माया युक्त जो चेतन सो **ईस्वर** कहिये है. सो ईस्वर

जगतकी उत्पत्ति पालन नासका हेतु है. या कहनेतैं " जगतका कोई कर्त्ता है, अथवा आपसैं होवै है"? याका उत्तर कह्या. औ "जगतका कर्त्ता कोई जीव है, अथवा ईस्वर है"? याका बी उत्तर कह्या.

३७१ **जगतका कर्त्ता ईस्वर है.** आपसैं होवै नहीं. जो कर्त्तासैं विना जगत होवै, तौ कुलाल विना घट हुवा चाहिये. यातैं जगतका कोई कर्त्ता है. सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेतैं, जो कार्यका कर्त्ता होवै, सो ता कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानिके करै है. यातैं जगतका कर्त्ता बी जगतकूं, औ जगतके उपादानकूं जानि. के करै है. इस रीतिसैं. जगतका कर्त्ता जगतकूं, औ जगतके उपादानकूं जानै है; यातैं **सर्वज्ञ** है. औ सर्व सक्तिवान है. काहेतैं, जो अल्प सक्ति वाले जीव हैं, तिन्हसैं या जगतकी रचना मनसैं बी चिंतन होवै नहीं, यातैं अद्भुत जगतका कर्त्ता अद्भुत सक्तिवाला है. इस रीतिसैं जगतका कर्त्ता **सर्व सक्तिवान** है. **औ स्वतंत्र** है. काहेतैं, जो न्यून सक्तिवाला होवै, सो पराधीन होवै है. औ सर्व सक्तिवाला पराधीन होवै नहीं ; यातै **स्वतंत्र** है. इस रीतिसैं जगतका कर्त्ता सर्वज्ञ सर्व सक्तिमान स्वतंत्र है. ताहीकूं **ईस्वर** कहै हैं. औ

३७२ अल्पज्ञ अल्प सक्तिमान पराधीनकूं **जीव** कहै हैं. **यद्यपि** अल्पज्ञतादिक जीवमै बी परमार्थसैं नही, **तथापि** अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमैं प्रतीति होवै हैं, यातै जीवमैं काहिये हैं. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति, सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईस्वरमैं है नहीं. किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईस्वरमै है. यह वार्ता विस्तारसैं आगै प्रतिपादन करैंगे. इस रितिसैं जगतका कर्त्ता जीव नहीं, ईस्वर है.

३७३ सो ईस्वर एक देसमैं स्थित नहीं, किंतु सर्वत्र व्यापक है. जो एक देसमैं अंगीकार करैं, तौ जा वस्तुका देसतैं अंत होवै, ताका कालसैं वी अंत होवै है; यातैं अनित्य होवैगा. जो अनित्य होवै सो कर्त्तासैं जन्य होवै है. यातैं ईस्वरका वी कर्त्ता अंगिआर करना होवैगा. सो ईस्वरका कर्ता बनै नहीं; काहेतैं, आप तौ अपना कर्त्ता बनै नहीं. जो अपना कर्त्ता आपही अंगिकार करैं, तौ **आत्माश्रय दोस** होवैगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, औ आपही क्रियाका कर्म होवै ; तहां आत्माश्रय होवै है. जैसैं कुलाल क्रियाका कर्त्ता है, औ घट कर्म है. तैसे क्रियाका कर्त्ता औ कर्म भिन्न होवै हैं ; एक बनै नहीं; यातैं आत्माश्रय दोस है. कर्म नाम कार्यका है. औ कार्यके विरोधीका नाम दोस है. आत्माश्रय कार्यका विरोधी है. यातैं दोस है; यातैं ईस्वरका कर्त्ता अन्य अंगिकार करना होवैगा. सो अन्य वी प्रथम कर्त्ताकी नाईं कर्त्ता जन्यही कहना होवैगा. सो ताका कर्ता वी प्रथमकी नाईं तासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो प्रथम जो ईस्वर है, ताकूं द्वितीय कर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं, तौ **अन्योन्याश्रय दोस** होवैगा. यातैं तृतीय कर्त्ता और अंगिकार करना होवैगा. ता तृतीयका कर्त्ता जो द्वितीय मानै, तब तौ अन्योन्याश्रय दोस होवै. औ प्रथम मानैं, तब **चाक्रिका दोस** होवैगा. जैसैं चक्रका भ्रमन होवै है, तैसैं प्रथम कर्त्ता द्वितीय जन्य, औ द्वितीय कर्त्ता तृतीय जन्य, औ तृतीय प्रथम जन्य, सो प्रथम फेरि द्वितीय जन्य; इस रीतिसैं कार्य कारनभावका भ्रमन होवैगा. चक्रिका स्थानमैं कोई वी सिद्ध होवै नहीं; सर्वकी परस्पर अपेछा है. अन्योन्याश्रयमैं दोकी परस्पर अपेछा है. एककी सिद्धि हुये बिना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं. यातैं, जैसै कुलालका कर्त्ता आप नहीं, किंतु ताका पिता है. तैसैं प्रथम ईस्वर

कर्त्ताका अन्य कर्त्ता है. औ कुलालका पिता आपनै पुत्रसैं उत्पन्न होवै नहीं; किंतु अन्य पितासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं द्वितीय कर्त्ता प्रथम कर्तासैं उत्पन्न होवै नहीं; किंतु अन्य कर्त्तासैंही कहना होवैगा. औ कुलालका पितामह कुलाल औ ताके पितासैं उत्पन्न होवै नहीं. किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं तृतीय कर्त्ता बी प्रथम औ द्वितीय कर्त्तासै उत्पन्न होवै नहीं. यातैं चतुर्थ कर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवैगा. यातै **अनवस्था दोस** होवैगा. धाराका नाम **अनवस्था है.** जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं, तौ कौनसा कर्त्ता जगत करै है ? यह निर्नय नहीं होवैगा. किसी-एककूं जगतका कर्त्ता माननैमैं कोई जुक्ति नहीं. ता जुक्तिके अभावका नामही **विन गमन विरह** कहै हैं. औ धाराकी कहूं विश्रांत अंगिकार करैं, तौ जा कर्त्तामैं धाराका अंत अंगिकार किया, सोई कर्त्ता जगतका मानने योग्य है. पूर्व सारे निष्फल होवैंगे. याका नाम ही **प्रागलोप** कहै हैं. पिछलेके अभावका नाम **प्रागलोप** है. इस रीतिसैं ईस्वरका देसतै अंत अंगिकार करैं, तौ उत्पत्ति अंगिकार करनी होवैगी. औ उत्पत्ति अंगिकार करैं तौ आत्माश्रयादि **षट्दोस** होवैंगे. यातैं ईस्वरका देसतैं अंत नहीं, किंतु व्यापक है; याहीतैं नित्य है.

३७४ ता व्यापक ईश्वरका औ जीवका **स्वरूपसैं** भेद नहीं; किंतु उपाधिसैं भेद है. काहेतैं, **अवछेद** वादमैं माया विशिष्ट चेतन **ईस्वर** कहै हैं; औ अविद्या विशिष्ट चेतन जीव कहै हैं. आभास वादमैं माया औ आभास विशिष्ट चेतन **ईश्वर** कहै हैं; औ आभास सहित अविद्या विशिष्ट चेतनकुं **जीव** कहै हैं. आभास वादमैं आभास सहित अविद्या औ मायाका भेद है; चेतनका नहीं. तै

सैं अवच्छेद वादमैं बी अविद्या औ मायाका भेद है; स्वरूपसैं चेतनका भेद नहीं. औ अज्ञानमैं चेतनका प्रतिबिंब जीव है; औ बिंब ईश्वर है. या पक्षमैं बी चेतनका स्वरूपसैं भेद नहीं; किंतु एकही चेतनमैं जीवपना औ ईश्वरपना आरोपित है. यह वार्ता आगे कहैंगे. इस रीतिसैं जगतका कर्ता सर्वज्ञ सर्व सक्तिमान स्वतंत्र ईश्वर है. सो ईश्वर व्यापक है. ताका औ जीवका विसेषन मात्रसैं भेद है; औ स्वरूपसैं अभेद है. यह द्वितीय प्रस्नका उत्तर कह्या.

३७५ "मोक्षका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है? अथवा उपासना है, अथवा दो हैं?" याका उत्तर कहै हैं:—

दोहा.

हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहि ध्यान;
रज्जु सर्प तबही नसैं, होय रज्जुको ज्ञान. १०

टीका:— मुक्तिका हेतु कर्म औ ध्यान कहिये उपासना नहीं; किंतु ज्ञानही हेतु है. काहेतैं, जो आत्मामैं बंध सत्य होवै, तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसैं होवै नहीं; किंतु कर्म अथवा उपासनातैं होवै. सो बंध आत्मामैं सत्य है नहीं; किंतु रज्जु सर्पकी नांई मिथ्या है. ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानसैंही बनै हैं; कर्म अथवा उपासनासैं नहीं. जैसा रज्जुका सर्प किसी क्रियातैं दूरि होवै नहीं; केवल रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै. तैसै आत्माके अज्ञानसैं प्रतीत जो होवै है बंध, ता बंधकी प्रतीति औ अज्ञान आत्माके ज्ञानसैंही दूरि होवै है.

३७६ जो कर्मका फल मोक्ष होवै, तौ मोक्ष अनित्य होवैगा काहेतैं, यह नियम है:—जो क्रिषि आदि कर्मका फल अन्नादिक हैं, सो अनित्य है. औ यज्ञादि कर्मका फल स्वर्गादिक बी अनित्य है.

जो मोछ बी कर्मका फल अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवैगा. यातैं कर्मका फल मोछ नहीं. तैसै उपासनाका फल जो अंगिकार करैं, तौ बी मोछ अनित्य होवैगा. काहेतैं, उपासना बी मानस कर्म ही है; औ कर्मका फल अनित्य होवै है; यातै उपासनारूप कर्मका फल बी मोछ नहीं. औ

३७७ कर्म कर्ताकूं कर्मसैं पांच प्रकारका उपयोग होवै है. पदार्थकी उत्पत्ति, तथा नास, अथवा पदार्थकी प्राप्ति, वा पदार्थका विकार, तैसै संस्कार. अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम **विकार** है. **संस्कार दो प्रकारका** होवै है:– मलकी निवृत्ति, औ गुनकी उत्पत्ति. यह पांच प्रकारका कर्मसैं उपयोग होवै है. सो मुमुछुकूं कोई बी बनै नहीं; यातैं मुमुछु ज्ञानके साधन श्रवनादिक विषैही प्रवृत्त होवै, औ कर्ममैं नहीं. जैसैं कुलालके कर्मतैं कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसैं मुमुछुकूं कर्मतें मोछकी उत्पति उपयोग बनै नहीं. काहेतैं, जो अनर्थकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्तिरूप **मोछ** है. सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामैं नित्य सिद्ध है. जैसैं रज्जुमैं सर्पकी निवृत्ति नित्य सिद्ध है; औ आत्मा परम आनंद स्वरूप है. यातै परमानंदकी प्राप्ति बी नित्य सिद्ध है. इस रीतिसैं स्वभाव सिद्ध मोछकी कर्मसैं उत्पत्ति बनै नहीं. जो वस्तु आगै सिद्ध नही होवै, ताकी कर्मसैं उत्पत्ति होवै है; औ सिद्ध वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं. औ

३७८ वेदांत श्रवन बी मोछकी उत्पत्तिके निमित्त नही **कह्या.** किंतु, आत्मा नित्य मुक्त है, किंचित् मात्र बी कर्तव्य नहीं; इस वार्त्ताके जाननै वास्ते श्रवन हैं. यह जानिके कर्तव्य भ्रांति दूरि होवै है. औ वेदांत श्रवनसैं अनंतर बी जिनकूं कर्तव्य प्रतीति होवै है, तिन्हनैं तत्व जान्या नहीं. इसी कारनतैं नित्य निवृत्ति जो अन-

र्थ, ताकी निवृत्ति, औ नित्य प्राप्त आनंदकी प्राप्ति, वेदांत श्रवन का फल देवगुरूने **नैषकर्म सिद्धिमें** कह्या है. यातें मोछकी उत्पत्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुछुकूं बनै नहीं.

१७९ जैसें दंडकाप्रहार रूप कर्मका, घटका नास रूप उपयोग होवै है; तैसें मुमुछुकूं कर्मतें किसी पदार्थका नासरूप उपयोग बी बनै नहीं. काहेतें, अन्य पदार्थका नास तो मुमुछुकूं वांछित है नहीं. बंधका नासही कर्मसें उपयोग कहना होवैगा. सो बंध आत्मामें है नहीं. मिथ्या प्रतीत होवै है. ता मिथ्या प्रतीतिका नास कर्मतें बनै नहीं. औ आत्माके यथार्थ ज्ञानसें तौ मिथ्या प्रतीतिका नास बनै है. यातें मुमुछुकूं पदार्थका नासरूप उपयोग बी कर्मसें बनै नहीं. जैसें गमनरूप कर्मतें ग्रामकी प्राप्ति होवै है, तैसें मोछकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसें बनै नहीं; काहेतें, जो आत्मा नित्य मुक्त है, ताकूं मोछकी प्राप्ति कहना बनै नहीं; जाकूं बंध होवै, ताकूं मोछकी प्राप्ति कहना बनै है; औ आत्मामें बंध है नहीं, यातें मोछकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुछुकूं बनै नहीं.

जैसें पाकरूप कर्मसें अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवै है, तैसें मुमुछुकूं कर्मसें **विकाररूप उपयोग** बी बनै नहीं. काहेतें, और तो कोई विकार बनै नहीं; जो आत्मामें प्रथम बंध अंगिकार करैं, औ मोछ दसामें चतुर्भुजादिक विलछनरूपकी प्राप्ति अंगिकार करैं; तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुछूकूं बनै. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामें अंगिकार नहीं. यातें कर्मसें विकाररूप उपयोग बी मुमुछूकूं बनै नहीं.

जैसें वस्त्रके छालनरूप कर्मका, मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है; तैसें मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुछूकूं कर्मसें उपयोग

नहीं. काहेतें, अन्यके मलकी निवृत्ति तौ मुमुक्षूकूं वांछित है नहीं, आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगी. सो आत्मा नित्य सुद्ध है. ताके विषे मल है नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं. औ अंतःकरन विषे पापरूप जो मल हैं, ताकी निवृत्ति जो कर्मसैं उपयोग कहैं, तो यह वार्ता सत्य है, परंतु सुद्ध अंतःकरनवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करै हैं. ताकै अंतःकरनमें बी पाप है नहीं यातैं पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षूकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं. औ अज्ञानकूं जो मल कहैं, तौ अज्ञान आत्मामैं है बी, परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसैं होवै नही. काहेतैं, अज्ञानका विरोधी ज्ञान है; कर्म नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नही. जैसे वस्त्रका कुसुंभमैं मज्जनरूप कर्मका रक्त गुनकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है, तैसे गुनकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसें उपयोग बनै नही. काहेतें, अन्य विषे वा गुनकी उत्पति कहना बनै नहि, आत्मा विषेही कहना होवैगा. सो आत्मा निर्गुन है; ताकेविषे गुनकी उत्पति बनै नही. यातें गुनकी उत्पत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षूकूं कर्मका उपयोग बनै नही. या प्रकरनमैं **उपयोग** नाम फलका है. कर्मका पांचही प्रकारका फल होवै है, और नहीं. सो पांच प्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं. यातैं कर्मकूं त्यागिकै ज्ञानके साधन श्रवन विषैही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै. उपासना बी मानस कर्मही है; यातैं ताके खंडनमैं पृथक युक्ति नही कही. इस रीतिसैं केवल कर्म अथवा उपासनां **मोक्षका हेतु** नही; किंतु केवल ज्ञान है. औ

२८० कोई कर्म उपासना सहित ज्ञानकूं मोक्षका हेतु अंगीकार करै हैं. औ ताकेविषे युक्ति दृष्टांत बी कहै हैं. जैसे आकासमैं पक्षीका एक पक्षसैं गमन होवै नहीं; किंतु दो पक्षसैं गमन होवै

है. तैसैं मोछलोककूं बी एक ज्ञानरूप पछसैं गमन होवै नहीं ; किंतु एक पछ तौ उपासना सहित कर्म है ; औ द्वितीय पछ ज्ञान है. उपासना बी मानस कर्महीं है, यातैं एकही पछ है.

अन्य दृष्टांत.

३८१ जैसैं सेतुके दर्सनसैं पापका नास होवै है. सो सेतुका दर्सन बी प्रत्यछरूप ज्ञान है ; औ श्रद्धा भक्ति सहित गमनादि नियमकी अपेछा करै है. जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवै, ताकूं सेतु दर्सनसैं फल होवै नहीं; जैसैं सेतुका प्रत्यछ ज्ञान श्रद्धा नियमादिकनकी, फलकी उत्पत्तिमैं अपेछा करैं है. तैसैं ब्रह्मज्ञान बी मोछरूप फलकी उत्पत्तिमैं कर्म उपासनाकी अपेछा करै है. औ.

केवल ज्ञानसैं जो मोछ अंगीकार करै हैं, सो बी ज्ञानका हेतु तौ कर्म उपासना मानै है. सुद्ध औ निश्चल अंतःकरनमैं ज्ञान होवै है. सो अंतःकरन सुभ कर्मसैं सुद्ध होवै है. औ उपासनासैं निश्चल होवै है. इस रीतिसैं अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलता द्वारा कर्म उपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं.

३८२ जैसैं ज्ञानके हेतु कर्म उपासना अंगीकार किये, तैसैं ज्ञानके फल मोछके हेतु बी अंगिकार करनै योग्य है.

दृष्टांत.

जैसैं जलका सेचन वृछकी उत्पत्तिका हेतु है ; औ वृछके फलकी उत्पत्तिका बी हेतु है. जो बनके वृछनके जल सेचन विना फल होवै है, सो बी वृछके मूलमैं नीचे जलका संबंध है; यातैं फल होवै है; औ जलके संबंध विना वृछही सूक जावै; फल होवै नहीं.

तैसै कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं; औ ज्ञानका फल जो मोछ ताके बी हेतु हैं. इसरीतिसैं **कर्म उपासना ज्ञान**

तिनू मोछके हेतु हैं. यातें ज्ञानवान बी कर्म करे. अथवा.

३८३ कर्म उपासना ज्ञानकी रछाके हेतु हैं. काहेतें, जो कर्म उपासनाका ज्ञानवान त्याग करे, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान बी जलसैं बिना वृछकी नांई नष्ट होय जावैगा. काहेतें, सुद्ध अंत:करनमैं ज्ञान होवै है; औ सुभकर्म नही करै तौ ज्ञानवानकूं पाप होवैगा. औ उपासनाके त्यागसैं अंत:करन फेरि चंचल होय जावैगा. ता मलिन औ चंचल अंत:करनमैं ज्ञान रहै नहीं. जैसैं सूकी भूमिमैं उत्पन्न हुवा वृछ बी रहै नहीं.

अन्य दृष्टांत.

जैसैं संस्कारसैं सुद्धि कीये स्थानमैं वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है. औ सुद्ध कीया स्थान बी किसी निमित्तसैं फेरि मलिन होय जावै, तौ ता स्थानकूं त्यागी देवै है. तैसै कर्मके त्यागसैं मलिन, औ उपासनाके त्यागसैं चंचल हुवा जो अंत:करन, ताकेविषे ज्ञान रहै नही; यातैं कर्म औ उपासना ज्ञानकी रछाके हेतु हैं. इस रीतिसैं कर्म उपासना ज्ञान, तिनूं मोछके हेतु अंगीकार करैं, तथा ज्ञानकी रछाके हेतु कर्म उपासना अंगीकार करैं, औ केवल ज्ञान मोछका हेतु अंगीकार करैं, दोनूं प्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्म उपासना कर्तव्य हैं. याकूं **समुच्चयवाद** कहै है. सो समीचीन नहीं. काहेतें,

३८४ देहसैं भिन्न जो आत्मा नहीं जानैं तासैं कर्म होवै नहीं. काहेतें, जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करै हैं; औ देहका अग्निविषे दाह होवै है; तासैं जन्मांतरका भोग बनै नहीं. यातैं सरीरतैं भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतुहै. सो सरीरसैं भिन्न बी आत्माका कर्ता भोक्तारूप करिके ज्ञान कर्मका हेतु है. "मैं पुन्य पापका कर्ताहूं. औ पुन्य पापका फल मेरेकूं होवैगा." ऐसा जाकूं ज्ञानहै, सो कर्म करै है. औ ज्ञानवानकूं ऐसा आत्माका ज्ञान है

नहीं; किंतु **पुन्य पाप औ सुष दुषसैं रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा है.** ऐसा वेदांत वाक्यसैं ज्ञान होवै है. सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं, उलटा विरोधी है. यातैं ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं. औ कर्त्ता कर्म फलका भेद ज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्ता कर्म फलकी ज्ञानवानकूं आत्मासैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं ; संपूर्न आत्मस्वरूपही प्रतीत होवै है ; यातैं बी ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं. औ भाष्यकारनैं बहुत प्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है. कर्मका औ ज्ञानका फलसैं विरोध है. यातैं बी ज्ञान कर्मका समुच्चय बनै नहीं. कर्मका फल अनित्य संसार है; औ ज्ञानका फल नित्य मोछ है. औ.

३८९ आत्मामैं जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है. काहेतैं, जाति आश्रम अवस्थाके योग्य भिन्न भिन्न कर्म कहै हैं. यातैं जाति आदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है. **यद्यपि** जाति आश्रम अवस्था देहके धर्म हैं, औ कर्मीकूं देहमैं आत्मा बुद्धि है नहीं; किंतु देहसैं भिन्न कर्ता आत्मा कर्मी जानै है. यह वार्ता पूर्व कही. यातैं जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मामैं कर्मीकूं बी बनै नहीं. **तथापि** देहसैं भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोछ ज्ञान नहीं, किंतु सास्त्रसैं परोछ ज्ञान है. औ देहमैं आत्मज्ञान अपरोछ है. जो देहसैं भिन्न आत्माका अपरोछ ज्ञान होवै, तौ देहमैं अपरोछ आत्मज्ञानका विरोधी होवै. औ परोछ ज्ञानका अपरोछ ज्ञानसें विरोध है नहीं, यातैं देहसैं भिन्न कर्ता आत्माका ज्ञान, औ देहमैं आत्मबुद्धि दोनू एककूं बनै हैं. **दृष्टांत:**— मूर्तिमैं ईश्वरज्ञान सास्त्रसैं परोछ है, औ पाषान बुद्धि अपरोछ है; तिन्हका विरोध नहीं. दोनू एककूं होवै हैं. औ रज्जुमैं जाकूं सर्पसैं अपरोछ भेद ज्ञान है, ताकूं अपरोछ सर्प भ्रांति दूरि होवै है. यातैं **यह नियम सिद्ध**

हुवा:— अपरोक्ष भ्रांतिका अपरोक्ष ज्ञानसैं विरोध है, परोक्षसैं नहीं. यातै देहसैं भिन्न आत्माका परोक्ष ज्ञान, औ देहमैं अपरोक्ष ज्ञान बनै है. सो दोनू कर्मके हेतु हैं. देहसें भिन्न बी कर्तारूप करिके, आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु हैं. सो कर्तारूप करिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. औ भ्रांति विद्वानकूं है नहीं, यातै कर्मका अधिकार नहीं. औ.

देहमैं अपरोक्ष आत्मबुद्धि होवै, तब देहके धर्म जाति आश्रम अवस्था प्रतीत होवै; सो देहमैं आत्मबुद्धि बी विद्वानकूं है नहीं, किंतु ब्रह्मरूप करिके आत्माका अपरोक्ष ज्ञान है. यातैं जाति आश्रम अवस्थाकी भ्रांतिके अभावतैं बी विद्वानकूं कर्मका अधिकार नहीं. औ उपासना बी मैं उपासकहूं, देव उपास्य है, या बुद्धिसैं होवै है. सो विद्वानकूं उपास्य उपासक भाव प्रतीत होवै नहीं. देहादिक संघात तौ मेरा औ देवका स्वप्नकी नांई कल्पित है- औ चेतन एक है, **यह विद्वानका निश्चय है**. यातैं **ज्ञानका उपासनासैं विरोध है**. औ

३८६ पक्षीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं. काहेतैं, पक्षीके तौ दो पक्ष एक कालमैं रहे हैं; तिनका परस्पर विरोध नहीं. औ ज्ञानका तौ कर्म उपासनासैं विरोध है. एक कालमैं बनै नहीं. औ

३८७ सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बी बनै नहीं. काहेतैं, सेतुका दर्सन दृष्ट फलका हेतु नहीं; किंतु अदृष्ट फलका हेतु है. प्रत्यक्ष जो फल प्रतीत होवै सो **दृष्टफल** कहिये हैं. जैसैं भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्ष है; यातैं भोजन दृष्टफलका हेतु हैं. तैसैं सेतुके दर्सनसैं प्रत्यक्ष फल प्रतीत होवै नहीं; किंतु पापका नासरूप फल सास्त्रसैं जान्या जावै है. जो सास्त्रसैं फल जानिये, औ प्रत्यक्ष प्रतीत होवै नहीं; सो **अदृष्टफल** कहिये है. यातै जैसैं यज्ञादिक कर्म स्वर्गा-

दिक अदृष्ट फलके हेतु हैं, तैसें सेतुका दर्सन बी पापका नास रूप अदृष्ट फलका हेतु है. जो अदृष्ट फलका हेतु होवै हैं, सो तौ जितना फलकी उत्पत्तिमैं सास्त्रनें सहाय बोधन किया है, ता सहित फलका हेतु होवै हैं, केवल नहीं. यातैं **श्रद्धा नियमादिक सहित सेतुका दर्सन पाप नासरूप फलका हेतु है;** श्रद्धा नियमादिक रहित हेतु नहीं. काहेतैं, सेतुके दर्सनसैं प्रत्यछ तौ कोई फल प्रतीत होवै नहीं, केवल सास्त्रसैं जान्या जावै है. सो सास्त्र श्रद्धादिक सहित सेतुके दर्सनसैं फल बोधन करै है. केवल दर्सनसैं फलकी उत्पत्तिमैं कोई प्रमान नहीं. यातैं सेतुका दर्सन फलकी उत्पतिमैं श्रद्धा नियम भक्तिकी अपेछा करै है. औ.

३८८ ब्रह्मविद्या अपनें फलकी उत्पत्तिमैं कर्म उपासनाकी अपेछा करै नहीं. काहेतैं, जो ब्रह्मविद्याका फल बी स्वर्गकी नांई लोक विसेष अदृष्ट होवै, सो लोक विसेष बी केवल ब्रह्मविद्यासैं सास्त्रनें बोधन नही किया होवै; किंतु कर्म उपासना सहितसैं बोधन किया होवै; तौ ब्रह्मविद्या बी सेतुके दर्सनकी नांईफलकी उत्पत्तिमैं कर्म उपासनाकी अपेछा करै. सो ब्रह्मविद्याका फल मोछ स्वर्गकी नांई लोक विसेष रूप अदृष्ट तौ है नहीं; किंतु मोछ नित्य प्राप्तहै. औ भ्रांतिसैं बंध प्रतीत होवै है. ता भ्रांतिकी निवृत्तिही **ब्रह्मविद्याका फल** है. सो **भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासैं हमारेकूं प्रत्यछ है.** औ रज्जु ज्ञानसैं सर्प भ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यछ है. यातैं अधिष्ठान ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है. दृष्ट फलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसैं प्रत्यछ प्रतीत होवै हैं, सो सामग्री **दृष्ट फलकी हेतु** कहियेहै. जैसें तुरी तंतु वेमसैं पटकी उत्पत्ति प्रत्यछ है. यातैं तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. औ केवल भोजनसैं तृप्तिरूप फल प्रत्यछ प्रतीत होवै है. यातैं केवल भोजन तृप्तिका हेतु है. तैसें केवल अधि

ष्ठान ज्ञानतैं भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है; यातैं **केवल अधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु** है. जैसे रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं, तैसैं बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्य मुक्त आत्मा, ताका ज्ञान बी बंध भ्रांतिकी निवृत्तिमैं कर्म उपासनाकी अपेक्षा करै नहीं. औ

३८९ ज्ञानको फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी नांई लोक विसेष अदृष्ट अंगीकार करै है; सो वेद वाक्यसैं विरूद्ध है. काहेतैं, ज्ञानवानके प्रान किसी लोककूं गमन नहीं करते,**यह वेदमैं कह्या है**. औ लोकविसेष अंगीकार करनैतैं, स्वर्गकी नांई मोक्ष अनित्य होवैगा. यातैं लोक विसेषरूप मोक्ष नहीं. औ लोक विसेष जो मोक्ष अंगीकार करैं, ताकूं बी केवल ज्ञानसैं हीं मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है. काहेतैं ; जो सास्त्रनैं प्रतिपादन किया अर्थ होवै, सो सास्त्रके अनुसारही अंगीकार करिये हैं. सो **सास्त्र केवल ज्ञानसैं मोक्ष कहै** है. यातैं केवल ज्ञान मोक्षका हेतु है ; कर्म उपासना ज्ञान तीनूं नहीं. औ

३९० वृक्षका दृष्टांत बी बनै नहीं. काहेतैं, यद्यपि जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्ति औ रक्षामैं हेतु है, तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमैं नहीं. वृद्ध जो वृक्ष है, ताकेविषे जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है ; फलके निमित्त नहीं. जलसैं पुष्ट जो वृक्ष, सोई फलका हेतु है ; जलसेचन नहीं. तैसैं कर्म उपासनाका बी ज्ञानकी उत्पत्तिमैं उपयोग है, मोक्षमैं नहीं. यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही अंतःकरनकी सुद्धि, औ निश्चलताके निमित्त कर्म उपासना करै, ज्ञानसैं अनंतर मोक्षके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्व बी जितने अंतःकरनमैं मल औ विक्षेप होवै तबपर्यंतही करै. सुद्ध औ निश्चल अंतःकरन जाका होवैं,

सो जिज्ञासु श्रवनके विरोधी कर्म उपासनाका त्याग करै. **मल** नाम पापका है, सो असुभ वासनाका हेतु है. जबपर्यंत मल होवै, तबपर्यंत असुभवासना होवै है. जब असुभ वासना होवै नहीं. तब मलका अभाव निश्चय करै. अंत:करनकी चंचलता औ एकाग्रता अनुभवसिद्ध है. यातैं उत्तम जिज्ञासु औ विद्वानकूं कर्म उपासना निष्फल है- औ

३९१ पूर्व जो कह्या "ज्ञानकी रछाके निमित्त कर्म उपासना करै. जैसैं जलसैं उत्पन्न हुवा जो वृछ, ताकी जलसैं रछा होवै है. जो जलका संबंध नहीं होवै, तो वृद्ध वृछ बी सूक जावै है. तैसैं कर्म उपासनासैं उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी कर्म उपासनासैं रछा होवै है. जो ज्ञानी कर्म उपासना नहीं करै, तौ अंत:करन मलिन औ चंचल फेरि होय जावैगा. ता मलिन औ चंचल अंत:करनमैं सूकि भूमिमैं वृछकी नांई उत्पन्न हुवा ज्ञान बी नष्ट होय जावैगा. यातैं ज्ञानवान बी कर्म उपासना करै."

सो बनै नहीं. काहेतैं, आभास सहित अथवा चेतन सहित जो अंत:करनकी "मैं असंग ब्रह्महूं" यह वृत्ति; सो **वेदांतका फलरूप ज्ञान** है. ताका कर्म उपासनासैं बिना नास होवैगा. अथवा चेतन स्वरूप ज्ञानका नास होवैगा. **जो ऐसैं कहै,** स्वरूप ज्ञान तौ नित्य है; यातैं ताका तौ नास औ रछा बनै नहीं. परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्या रूप ज्ञान है, ताकी कर्म उपासनासैं उत्पत्ति होवै है. औ कर्म उपासनाके त्यागसैं उत्पन्न हुई विद्या बी नष्ट होय जावैगी. यातैं ताकी रछाके निमित्त कर्म उपासना करै **सो बनै नहीं.** काहेतैं, एकवार उत्पन्न हुई जो अंत:करनकी ब्रह्माकार वृत्ति, तासैं अज्ञान औ भ्रांतिका नास रूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है. अज्ञान औ भ्रांतिके नासतैं अनंतर फेरी वृत्तिकी

रछाका उपयोग नहीं. औ अंत:करनकी वृत्तिकी कर्म उपासनासें रछा बनै बी नहीं. काहेतैं, जब कर्म उपासनाका अनुष्ठान करैगा, तब कर्म उपासनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा. ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं. और वृत्ति हुयेतैं प्रथम वृत्ति रहै नहीं. यातैं कर्म उपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ परंपरातैं हेतु हैं. औ उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. यातैं कर्म उपासनातैं ज्ञानकी रछा होवै नहीं. औ.

३९२ पूर्व जो कह्या "ज्ञानवानकूं कर्मके त्यागेसैं पाप होवै है." **सो वार्ता बनै नहीं**. काहेतें, जो सुभ कर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं. किंतु, निसिद्ध कर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है. यह वार्ता भाष्यकारनै बहुत प्रकारसें प्रतिपादन करी है. यातैं कर्मके त्यागेसैं पाप होवै नहीं, औ ज्ञानवानकूं तौ सर्व प्रकारसैं पापका असंभव है. काहेतैं, पुन्य पाप औ तिनका आश्रय अंत:करन परमार्थसैं है नहीं; अविद्यासैं मिथ्या प्रतीति होवै है. सो अविद्या औ मिथ्या प्रतीति ज्ञानवानके हैं नहीं. यातें ज्ञानवानकूं सुभकर्मके त्यागसैं अथवा असुभके अनुष्ठानसैं पाप बनै नहीं.

३९३ या स्थानमैं **यह सिद्धांत है**. मंद औ दृढ दो प्रकारका ज्ञान है. संसयादिक सहित जो ज्ञान, सो **मंदज्ञान** कहियै है. औ संसयादिक रहित **ज्ञान दृढ** कहियै है. जाकूं दृढ ज्ञान होवै, ताकूं किंचित मात्र बी कर्तव्य नहीं. एक वार उत्पन्न हुवा जो संसयादिक रहित अंत:करनकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नास करि देवै है. सो ज्ञान आप बी दूरि होय जावै. तौ बी भले प्रकारसैं जाने आत्मामैं फेरि भ्रांति होवै नहीं. काहेतैं; जो भ्रांतिका कारन अविद्या है. सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुये ज्ञानसैं नष्ट होय गई. यातैं भ्रांति औ अविद्याके अभावतैं, वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कछु उपयोग

नहीं. औ जीवन्मुक्तिके आनंद वास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेछित होवै, तौ वारंवार वेदांतके अर्थका चितनही करै. वेदांतके अर्थ चिंतनसैंही वारंवार ब्रह्माकार वृत्ति होवै है. औ कर्म उपासनासैं नहीं. काहेतैं, कर्म औ उपासनाका अंत:करनकी सुद्धि औ निश्चलता द्वाराही ज्ञानमैं उपयोग है; और रीतिसैं नहीं. औ विद्वानके अंत:करनमैं पाप औ चंचलता हैं नहीं. राग द्वेष द्वारा पाप औ चंचलताका हेतु अविद्या है. ता अविद्याका ज्ञानसैं नास होवै है. यातैं विद्वानके पाप औ चंचलताके अभावसैं कर्म उपासनाका उपयोग नहीं. और

३९४ **जो कदाचित ऐसैं कहै:-** रागद्वेषादिक अंत:करनके सहज धर्म हैं. जितने अंत:करन हैं, उतने रागद्वेषका सर्वथा नास ज्ञानवानके बी होवै नहीं. तिन्ह रागद्वेषसैं ज्ञानवानका बी अंत:करन चंचल होवै है. यातैं चंचलता दूरि करने वास्ते ज्ञानवान बी उपासना करै.

यद्यपि ज्ञानवानकूं अंत:करनकी चंचलतासैं विदेह मोक्षमैं हानि नहीं, **तथापि** चंचल अंत:करनमैं स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. यातैं चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है. यातैं जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करनै वासते उपासना करै सो **बनै नही.** काहेतैं, **यद्यपि** दृढ बोध जाके अंतकरनमैं हुवा है, ताके समाधि औ विक्षेप समान हैं. यातै अंत:करनकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वानकूं बनै नहीं.

तथापि विद्वानकी प्रवृत्ति औ निवृत्ति प्रारब्धके आधीन है. प्रारब्ध कर्म सर्वका विलक्षन है. किसी विद्वानका जनकादिकनकी नाईं भोगका हेतु प्रारब्ध है. औ किसीका सुकदेव वामदेवादिकनकी नाईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है. जाकै भोगका हेतु प्रारब्ध है.

ताकूं तो प्रारब्धसें भोगकी इच्छा, औ भोगके साधनका यत्न होवे है. औ जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवे है. औ भोगमें ग्लानि होवे है. जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै, सो ब्रह्माकार वृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांत अर्थका चिंतनही करै; उपासना नहीं. काहेतें, अंतःकरनकी निश्चलता मात्रसें ब्रह्मानंदका विसेध रूपसें भान होवे नहीं. किंतु ब्रह्माकार वृत्तिसेंही होवै है. सो ब्रह्माकार वृत्ति वेदांत चिंतनसेंही होवै है; उपासनासें नहीं. औ अंतःकरनकी चंचलता बी विद्वानकूं वेदांतके चिंतनसेंही दूरि होय जावै है. यातें अंतःकरनकी निश्चलताके निमित्त बी उपासनामें प्रवृत्ति होवै नहीं. इस रीतिसें दृढ बोध जाके हुवा है. ताकी कर्म उपासनामें प्रवृत्ति होवै नहीं. औ

३९९ जाके मंद बोध है, सो बी मनन औ निदिध्यासनहीं करै, कर्म उपासना नहीं. काहेतें, मंद बोध जाकूं हुवा है, सो **उत्तम जिज्ञासु** है. ता उत्तम जिज्ञासुकूं मनन निदिध्यासनसें विना अन्य कर्तव्य नहीं. यह वार्ता सारीरकमें **सूत्रकार** औ **भाष्यकारनै** प्रतिपादन करी है. औ विद्वानकूं मनन निदिध्यासन बी कर्तव्य नहीं. जो जीवन मुक्तिके आनंद वास्ते विद्वान मनन निदिध्यासनमे प्रवृत्ति होवै है, सो बी अपनी इच्छासे प्रवृत्त होवै है औ "मैं वेदकी आज्ञा नही करूंगा, तौ मेरेकूं जन्म मरन संसार होवैगा." इस बुद्धिसें जो किया करै सो **कर्त्तव्य** कहिये है. सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वानके होवै नहीं. यातें अपनी इच्छातें जो विद्वान मनन निदिध्यासन करै, सो कर्तव्य नहीं. इस रीतिसें मंद बोध अथवा दृढ बोध जाके हुवा है. तिसकूं कर्म उपासना कर्तव्य नहीं. औ.

३९६ जाकूं बोध नहीं हुवा है, किंतु आत्माके जाननेकी तीव्र इछा है, भोगकी नहीं; ताका अंतःकरन सुद्ध है; यातें सो बी **उत्तमही जिज्ञासु** है. ताकूं बी बोधके वास्ते श्रवनादिकही कर्तव्य हैं, कर्म उपासना नहीं. काहतें, जो कर्म उपासनाका फल है, सो ताके सिद्ध है. औ ज्ञानकी सामान्य इछातें जो श्रवनमें प्रवृत्त हुवा है, औ अंतःकरन भोगनमें आसक्त है, सो **मंद जिज्ञासु** है. सो बी श्रवनकूं त्यागके फेरी कर्म उपासनामें प्रवृत्त होवै नहीं. जो कर्म उपासनाका फल अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलता है, सो ताकूं श्रवनसेंही होय जावैगा. श्रवनकी आवृत्तितें अंतःकरनका दोष दूरि होयके इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ज्ञान होवै है. **आवृत्ति** नाम वारंवारका है. औ **श्रवनकूं** त्यागिके जो कर्म उपासनामें प्रवृत्त होवै है, सो **आरूढ पतित** कहिये है. इस रीतीसें ज्ञानवान औ उत्तम जिज्ञासुका कर्म उपासनाविषे अधिकार नहीं. औ मंद जिज्ञासु बी जो वेदांत श्रवनमें प्रवृत्त हुवा है, ताका अधिकार नहीं. औ
ज्ञानकी जाकूं इछा तो है, परंतु भोगमें बुद्धि आसक्त है; यातें श्रवनमें प्रवत्त नहीं हुवा ऐसा जो **मंद जिज्ञासु**, ताका निष्काम कर्म औ उपासनामें अधिकार है. औ
जाकी भोगविषेही आसक्ति है, ज्ञानकी इछा नहीं; ऐसा जो **बहिर्मुख** है, ताका सकाम कर्म विषे बी अधिकार है. यातें ज्ञानवानकूं कर्म उपासनाका अधिकार नहीं. कर्म उपासनाका ज्ञान विरोधी है. औ.

३९७ कर्म उपासना बी अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलता द्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ हेतु हैं; परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसें अनंतर जो कर्म उपासना करै, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होय जावैगा,

यातैं ज्ञानके विरोधी हैं, इच्छाके हेतु नहीं. काहेतैं "मैं कर्ताहूं औ यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल हैं." या भेद बुद्धिसैं कर्म होवै है. औ "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है;" या **भेद बुद्धिसैं** उपासना होवे है.सो दोनू प्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूरि करिकै होवै है. यातैं **कर्म उपासना ज्ञानके विरोधी हैं. यद्यपि** ज्ञानवान आत्माकूं असंग जानै है, तौ बी देहका भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकनकी नाई अधिक राज्य पालनादिक व्यवहार करै है. ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं; औ व्यवहार ज्ञानका बी विरोधी नहीं.काहेतैं जो आत्मस्वरूप ज्ञानसैं असंग जान्या है. ता आत्माविषै जो व्यवहार प्रतीत होवै, तौ व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार होवै, सो विद्वानकूं आत्मा विषै व्यवहार प्रतीत होवै नहीं. किंतु संपूर्न व्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं. औ आत्माविषै व्यवहार सहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसैं संपूर्न व्यवहार करै है. इसी कारनतैं विद्वानकी प्रवृत्ति बी निवृत्तिही कही हैं. जैसें.

३९८ अन्य व्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं. तैसें कर्म उपासना बी अन्य बहिर्मुख पुरूषनकै करावनै वास्ते आत्माकूं असंग जानिकै, औ देह वाक अंतःकरनकै आश्रित क्रिया जानिकै जो कर्म उपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधी नहीं. काहेतैं जो आत्मा विद्वाननैं असंग जान्या है, ताकूं कर्ता जानिकै जो कर्म उपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधी होवैं. सो आत्माका असंगरूप दृढ निश्चय कर्म उपासनासैं विद्वानका दूरि होवै नहीं. यातै आभासरूप कर्म औ उपासना दृढ ज्ञानके विरोधी नहीं. इसी कारनतैं जनकादिकननैं आभासरूप कर्म करे हैं. जो आत्माकूं असंग जानिकै और व्यवहारकी नाई देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान सुभ क्रिया करै सो

आभासरूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञानसैं विरोध नहीं. औ भाष्य कारनै कर्म उपासनाका जो ज्ञानसैं विरोध कह्या है, सो आत्मामैं कर्त्ता बुद्धिसैं जो कर्म उपासना करै हैं, ताका विरोध कह्या है; औ आभासरूपसैं नहीं. **तथापि**

३९९ मंद बोधके आभासरूप कर्म, औ आभासरूप उपासना बी विरोधी हैं. काहितैं, जो संसयादिक सहित बोध है, सो **मंद-बोध** कहिये है. जाके अंतःकरनमैं "आत्मा असंग है, अथवा नहीं है" ऐसा कदाचित संसय होवै, सो पुरुष जो वारंवार "आत्मा असंग है. मेरेकूं किंचित मात्र बी कर्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करै, तब तो संसय दूरि होयकै दृढबोध होय जावै. औ कर्म उपासना करैगा, तो मंद बोध जो उत्पन्न हुवाहै, सो दूरि होयकै "मैं कर्ता भोक्ताहूं," यह विपरीत निश्चै होय जावैगा. यातैं मंद बोधकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्म उपासना करै; औ अनंतर नहीं. जो मंद बोधवाला कर्म उपासना करैगा, तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावैगा. **दृष्टांतः**—जैसैं पंछी अपनै अंडेकूं पच्छकी उत्पत्तिसैं पूर्व सेवन करै है; औ पच्छकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो पच्छकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी अंडेकूं सेवन करै; तो बालक पच्छीके ता अंडेके जलसैं पच्छ गली जावै. तैसैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्म उपासनाका सेवन करै; औ ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी कर्म उपासनाका सेवन करै; तो बालक पच्छीकी नाई मंद ज्ञानका नास होय जावै. औ वृद्ध पच्छीकी जैसे अंडेके संबंधसैं हानि होवै नहीं, तैसैं दृढबोधकी तौ हानि होवै नहीं. औ वृद्ध पच्छीकी नाई दृढबोधकूं कर्म उपासनासैं उपयोग बी नहीं. इसरीतिसैं ज्ञानवानकूं मोछके निमित्त किंचितमात्र बी कर्तव्य नहीं. यह तृतीय प्रश्नका उत्तर कह्या.

४०० जो सिष्यकूं आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, यातें यथार्थ है; यह वार्ता कहै है.

दोहा.

सिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार;
लहै ताहि अनयासही,संसृति नसैं अपार. ११

टीका:—हे सिष्य, जो मैं तेरेकूं कह्या सो सर्व वेदका सार है. यातैं याविषै विस्वास कर. औ याके जाननेतैं **अनयास** कहिये. षेद विना अपार जो **संसृत** कहिये, जन्म मरन रूप संसार, ताका नास होवै है.

४०१ **यद्यपि** षेदका नाम आयास है; ताके अभावका नाम अनायास है; **तथापि** छंदके वास्तै अनयास पढ्या है. भाषामैं छंदके वास्ते गुरुके स्थानमैं लघु औ लघुके स्थानमैं गुरु पढनैका दोष नहीं. औ मोक्षके स्थानमैं मोछही भाषामैं पाठ होवै है. काहे तैं, यह **भाषाकी संप्रदाय** है.

दोहा.

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्ति हेत उच्चार;
रू व्है अरुकी ठौरमैं, अवकी ठौर वकार. १,
संयोगी क्ष न क पर खन, नही ट वर्ग णकार;
भाषामैं ऋ ऌ हू नहीं, अरु तालव्य शकार. २.

टीका.—इतने अछर भाषामैं नहीं; कोइ लिषै तौ कवि असुद्ध कहै. क्षके स्थानमैं छ, खके स्थानमैं ष, णकारके स्थानमैं नकार, ऋ ऌके स्थानमें रि लि है,शकारके स्थान सकार भाषामें लिषने योग्य है.

४०२ "जगतका कर्ता ईस्वर है, सो तेरेसैं भिन्न नहीं. औ सत चित आनंदरूप ब्रह्म तूं है." यह आचार्यनैं कह्या; सोई कृपातैं फेरि कहै हैं.

कवित्व.

दीनताकूं त्यागि नर अपनौ स्वरूप देषि,
तूं तौ सुद्ध ब्रह्म अज दृस्यको प्रकासी है;
आपनै अज्ञानतैं जगत सब तूंही रचै,
सर्वको संहार करै आप अविनासी हैं;
मिथ्या परपंच देषि दुष जिन आनि जिय,
देवनको देव तूं तौ सब सुष रासी हैं;
जीव जग ईस होय मायासैं प्रभासै तूंहि,
जैसैं रज्जु साप सीप रूप ह्वै प्रभासी है. १२

अर्थस्पष्ट.

४०३ कवित्व

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
वार वार मृगवारि पारवार पेषिये;
ज्ञान भान आनि तम तम तारि भाग त्याग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेषिये;
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दास पास आस ईसकी न देषिये;

निश्चल तूं चल न अचल, चल दल छल,
नभ नील तल मल तासूं न विसेषिये. १३

टीका.– ज्ञानके साधन कहे हैं:– हे सिष्य **राग** जो पदार्थनमैं दृढ आसक्ति है; ताकूं जारिकै लोभकूं **हारि** कहिये नास करि; द्वेषकूं मारि **मार** कहिये कामकूं वारि दूरि कर. राग लोभ द्वेष कामके ग्रहनतैं, सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहन है. यातैं सर्व राजसी तामसी वृत्तिका नास कर, यह अर्थ सिद्ध हुवा. राजसी वृत्ति, औ तामसी वृति, ज्ञानकी विरोधी है. तिन्हके नास विना ज्ञान होवै नहीं. यातैं तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासूकूं अपेछित है. विवेक, वैराग्य, समादि षट संपति, मुमुछता, ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं, तिन्हमैं विवेक प्रधान है. काहेतैं, विवेकसैं वैराग्यादिक उत्पन्न होवै हैं. यातैं विवेकका उपदेस आचार्य करै है:— हे सिष्य **पारवार** जो संसार है, ताकूं वारंवार **मृगवारि** कहिये मृगतृष्णाके जल समान मिथ्या जान. **पारवार** नाम संसारका है; औ **अपारवार** नाम आत्माका है. पारवार मिथ्या है; या कहनैतैं अपारवार मिथ्या नहीं; किंतु सत्य है. यह वार्त्ता अर्थसैं कही. जैसैं बाजीगरके तमासे देषत पुत्रकूं पिता कहै, हे पुत्र, यह आम्रवृछसैं आदि लेके जो बाजीगरनैं बनाये हैं, सो मिथ्या हैं. या कहनैतैं बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है; किंतु सत्य जानै है. तैसैं जगतकूं मिथ्या कहनैतैं आत्माकूं सत्य जानि लेवेगा. या अभिप्रायतैं आचार्यनें पारवार मिथ्या कह्या. इस रीतिसैं जगत मिथ्या है, औ आत्मा सत्य है; या विवेकका उपदेस कऱ्या. ता विवेकसैं अन्य साधन आपही उत्पन्न होवै हैं. यातैं विवेकके उपदेसतैं सर्व साधनकू

उपदेस अर्थतैं कह्या. ज्ञानके बहिरंग साधन कहे. अंतरंग साधन श्रवन कहै हैं:—हे सिष्य ज्ञानरूपी जो भानु है, ताकूं **आनि** कहिये श्रवनसैं संपादन करिकै **तम** कहिये अज्ञानरूपी जो **तम** अंधेरा है, ताकूं तारि कहिये नास कर. **तम** नाम अंधेरे औ अज्ञानका है. अंधेरा **उपमान** है. औ अज्ञान **उपमेय** है. प्रथम जो तम सब्द है, सो उपमेयका वाचक है. औ दूसरा उपमानका वाचक है.

दोहा.

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय वषानि,
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि. ३

४०४ ज्ञानका स्वरूप अन्य सास्त्रनमैं नाना प्रकारका अंगीकार कीया है. यातैं **महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप** कहै हैं. हे सिष्य जीव औ ईस्वर विषै अविद्या औ माया भागकूं त्यागिकै तिन्हका जो भेद प्रतीत होवै हैं; ताकूं **छेद** कहिये दूरि करि. औ जीव ईस्वरमैं जो **वेदन** कहिये चेतन भाग है, ताकूं भेद रहित जान. या कहनैंतैं यह वार्त्ता कही:—महा वाक्यनमैं भाग त्याग लछनातैं जीव ईस्वरकी एकता जान. सिवके स्थानमैं सीव पढ्या है. तृतीय पादका अर्थ स्पष्ट है.

पूर्व कहे अर्थकूं संछेपतैं चतुर्थ पादसैं कहै हैं. हे सिष्य **चल** कहिये विनासी जो देहादिक संघात, सो तूं नहीं; किंतु **अचल** कहिये अविनासी जो ब्रह्म सो तूं है. औ **चलदल** कहिये वृछरूप जो संसार, सो **छल** कहिये मिथ्या है. जैसें नभविषै नीलता, औ **तलमल** कहिये कटाहरूपता है नहीं; किंतु मिथ्या प्रतीत होवै है. वैसैं संसार बी आत्माविषै है नहीं, मिथ्या प्रतीत होवै है.

वृक्षरूप करिकै संसार, श्रुति स्मृतिमैं कह्या है; यातैं वृक्षके वाचक-चलदल सब्दका संसारमैं प्रयोग कर्‍या है. १३

४०५ मोक्षका साधन ज्ञान है, या अर्थकूं अन्य प्रकारसैं कहै हैं.

कवित्व.

बंध मोछ गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ धजा फररात है;
विषै विषै सत्य भ्रम भ्रम मति वात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है;
साछच साछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी है,
देषि रागी त्यागी ललचात जन जात हैं;
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लषि रूप निज,
दुष कूप आनंद स्वरूपमैं समात है. १४

टीका.—हे सिष्य **देहवान** कहिये देह अभिमानी अज्ञानी, औ ज्ञानवान; बंध औ मोछके **गेह** कहिये धाम हैं. अज्ञानी तौ बंधका धाम है, औ ज्ञानी मोछका धाम है. राग औ विराग तिनकी धजा है. जैसैं धजा राजाकै नगरका चिन्ह होवै हैं, तैसैं राग औ विराग तिन्हके चिन्ह हैं. अज्ञानीका राग चिन्ह है, औ ज्ञानीका विराग चिन्ह है. अज्ञानी विषै बी विराग होवै है; यातै ज्ञानीका अज्ञानीसैं विलछन विराग कहै हैं:—हे तात! विषय जो सब्दादिक हैं, तिन्ह विषे **सत्यभ्रम** कहिये, सत्यपनेकी भ्रांति, औ **भ्रममति** कहिये रज्जु सर्पकी नांई विषय भ्रमरूप हैं; यह जो मति निश्चय सो वातकी नांइ राग औ विरागकूं हलावै है. जैसैं वायु ध-

जाकी चंचलता करे है, तैसें विषयमें सत्यबुद्धि औ भ्रमबुद्धि राग औ विरागकूं चंचल करै है; सिथिल होने देवै नहीं. विषयमें सत्य बुद्धिसे रागकी सिथिलता दूरि होवै है. औ विषयमें भ्रम बुद्धिसें विरागकी सिथिलता दूरि होवै है.

४०६ विषय असत्य हैं, यातें तिन्हमें सत्य बुद्धि भ्रांतिरूप है. इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमें **सत्यभ्रम** कह्या; सत्य बुद्धि नहीं कहीं. भ्रांतिज्ञान, औ भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्या वस्तु, सो-दोनू **भ्रम** कहिये है. या कहनेतें अज्ञानीके विरागतें ज्ञानीके विराग का भेद कह्या. काहेतें, जो अज्ञानीका विराग है, सो विषयमें मिथ्या बुद्धिसें उत्पन्न नहीं हुवा; यातें मंद है. विषय मिथ्या हैं यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. **यद्यपि** सास्त्र युक्तिसें अज्ञानी बी मिथ्या जानै हैं, **तथापि** विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्ष मति ज्ञानवानकूंही होवै है; अज्ञानीकुं नहीं. यातें अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्या बुद्धि, तासें अपरोक्ष सत्य भ्रांति दूरि होवै नहीं. इस रीतिसें अज्ञानीकूं विषयमें जब विराग होवै है, ता कालमें परोक्ष मिथ्या बुद्धि है बी, परंतु परोक्ष मिथ्या बुद्धिसें प्रबल अपरोक्ष सत्य बुद्धि है; यातें अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्या बुद्धि विरागकी हेतु नहीं. किंतु प्रबल जो सत्य बुद्धि, तासें विषयमें रागही होवै है औ जो विराग होवै, तौ बी मिथ्या बुद्धिसें नहीं, किंतु विषयमें दोष दृष्टिसें होवै है. औ **ज्ञानवान सर्व प्रपंचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानै है.** ता अपरोक्ष मिथ्या बुद्धिसें, अपरोक्ष सत्य बुद्धि दूरी होवै है. यातें रागकी हेतु विषयमें सत्य बुद्धि, तो ज्ञानीकूं है नहीं; विरागकी हेतु विषयमें मिथ्या बुद्धि, ज्ञानवानकूं है. जो ज्ञानीकूं विषयमें सत्य बुद्धि फेरि होवै, तौ राग बी फेरि होवै, औ विराग दूरि होवै. सो अपरोक्षरूपतें मिथ्या जानै

पदार्थमें फेरि सत्य बुद्धि होवै नहीं. जैसें अपरोछरूपतें मिथ्या जान्या जो रज्जुमें सर्प, ताके विषे सत्य बुद्धि फेरि होवै नहीं. तैसें ज्ञानीकूं फेरि सत्य बुद्धि होवै नहीं. इस रीतिसें रागकी उत्पत्ति औ विरागकी निवृत्ति, ज्ञानीके होवै नहीं. यातें ज्ञानीका विराग दृढ है. औ दोष दृष्टिसें जो अज्ञानीकूं विराग होवै है, सो तो दूरि होय जावै है. काहेतें, जा पदार्थमें दोष दृष्टि होवै है, ता पदार्थमेंही अन्य कालमें सम्यक् बुद्धि बी होय जावै है. जैसें सर्व पुरुषनकूं पसुधर्मके अंतमें स्त्रीविषे दोष दृष्टि होवै है; औ कालांतरमें फेरि सम्यक् बुद्धि होवै है. इस रीतिसें दोष दृष्टि जब दूरि होवै, तब अज्ञानीका विराग बी दूरि होय जावै है. यातें अज्ञानकूं दृढ विराग होवै नहीं. इस रीतिसें राग औ विराग अज्ञानीके औ ज्ञानीके चिन्ह कहे.

और बी चिन्ह कहै हैं:—हे सिष्य जैसे धामके ऊपरि पूतरि काहिये हस्ती आदिकनकी मुर्त्ति होवै है. तैसे बंध मोछका धाम जो अज्ञानी, औ ज्ञानीका अंतःकरन है; ताके विषे साछय साछी पूतरी है. अज्ञानी अंतःकरन विषे तौ साछयरूपी पूतरी है. औ ज्ञानी अंतःकरनमें साछी रूपी पूतरी है. साछीका विषय जो प्रपंच है, ताकूं साछय कहै हैं. साछयरूपी पूतरी अनूजरि कहिये मलिन है. औ साछीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये सुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है. चंचल भ्रम निजरूप लषि, औ अचल ब्रह्म निजरूप लषि; या क्रमतें अन्वय है.

४०७ भाग त्याग लछनाका जो कवित्वमें विसेष करिके ग्रहन किया है, ता विषे हेतु कहनेकूं लछनाका भेद कहै हैं.

दोहा.

त्रिविधि लछना कहत हैं, कोविद बुद्धि निधान;

जहती अरु अजहती पुनि, भाग त्याग निज जान. १५
आदि दोइ नहिं संभवै, महा वाक्यमैं तात;
भाग त्यागतैं रूप निज, ब्रह्मरूप दरसात. १६

अर्थ १९८.

४०८ **सिष्यउवाच.**

अर्द्ध संकरछंद

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय;
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहुं दरसाय. १७

टीका.— सामान्य ज्ञानसैं अनंतर विसेषका ज्ञान होवै है. जैसैं सामान्य ब्राह्मनका ज्ञान हुयेसैं, अनंतर सारस्वत आदिक विसेषका ज्ञान होवै है. तैसै लच्छना सामान्यका ज्ञान होवै, तौ जहती आदिक विसेष रूपनका ज्ञान होवै. लच्छनाका सामान्यरूप जाने बिना, जहती आदिक विसेष रूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं सिष्य कहे है:— हे प्रभो, लच्छना काकूं कहत हैं? यह मैं नहीं जानूंहूं. यातैं लच्छनाका सामान्य रूप दिषायके तिसतै अनंतर जो जहती आदिक लच्छनाके तीनि भेद कहिये विसेष हैं; तिन्हके जुदे जुदे लच्छन दिषावौ. छंद वास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या, औ भाषाकी संप्रदायतैं लक्षणाके स्थान लच्छना पढ्या; लक्षणके स्थान लच्छन पढ्या.

४०९ **गुरुवाक्य.**

संकर छंद.

श्रुति चित्त निज एकाग्र करि, अब सिष्य सुनि मम बानि,
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि;
सुनि वृत्ति है द्वै भांति पदकी, सक्ति तामैं एक,
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक. १८

टीका.—पदका जो अर्थसें संबंध, सो वृत्ति कहिये है. सो वृत्ति दो प्रकारकी है. ता दो प्रकारमें एक सक्तिवृत्ति है, औ दूजी लच्छनावृत्ति है. तिनकूं सविवेक कहिये विवेक सहित याका अर्थ लच्छन सहित सुनि.

४१० अथ सक्ति लच्छन.

दोहा.

जा पदतैं जा अर्थकी, व्हैं सुनतेहि प्रतीति;
ऐसी इच्छा ईसकी, सक्ति न्यायकी रीति. १९

टीका.— जा पदतैं कहिये घटपदतैं जा अर्थकी कहिये कलस अर्थकी सुनतैंही प्रतीति कहिये ज्ञान सब पुरुषनकूं होवै; ऐसी जो ईस्वरकी इच्छा, ताकूं न्याय सास्त्रमैं सक्ति कहै हैं.

४११ अथ स्वरीति सक्ति लच्छन.

अर्द्ध संकर छंद.

सामर्थ्य पदकी सक्ति जानहु, वेद मत अनुसार;
सो वन्हिमैं जिम दाहकी, है सक्ति त्यूं निरधार. २०

टीका.— घट पदके श्रोताकूं कलसरूप अर्थके ज्ञान करनेकी

जो घट पदविषै सामर्थ्य; सोई घट पदमैं सक्ति है. तैसैं पट पदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेकी जो पट पदविषै सामर्थ्य, सोई पट पदमैं सक्तिवृत्ति है. ऐसै सर्व पदनमैं जानि लेनि. **दृष्टांत.** जैसै वन्हिमैं अपनैसैं मिलतेही, वस्तुके दाह करनेकी सामर्थ्यरूप सक्ति है, तैसैं श्रोताके कर्नसैं मिलतेही वस्तुके ज्ञान करनेकी जो पदविषै सामर्थ्य, सो **सक्ति** कहिये है. **सामर्थ्य** नाम समर्थपनेका है, जाकूं **समर्थाई** कहै है; औ **बल** बी कहै है, **जोर** बी कहै हैं. जैसैं अग्निमें दाहकी सक्ति है, तैसैं जल विषे गीला करनेकी, तृषा दूरि करनेकी, पिंड बांधनेकी, जो समर्थाई है; सो सक्ति है. इस प्रकारसैं सर्व पदार्थनविषे अपना अपना कार्य करनेकी, सामर्थ्य है, सोई सक्ति है. **यह वेदका सिद्धांत है.** ताहीकूं **निर्धार** कहिये निश्चय कर. औ न्यायकी रीति त्यागनेके योग्य है.

४१२ सिष्य उवाच

संकर छंद.

ननु वन्हिमैं नहि सक्ति भासैं, वन्हि विन कछु और,
है हेतुता जो दाहकी, सो वन्हिमैं तिहि ठौर;
इम पदनहूंमैं वर्न विन कछु, सक्ति भासत नाहिं,
या हेतुतैं जो ईस इच्छा, सक्ति सो मति माहिं. २१

टीका:–ननु, सब्द संदेहका वाचक है. वन्हिमैं ताके स्वरूपसैं जुदी सक्ति **भासै** कहिये प्रतीत होवै नहीं. औ पूर्व कह्या दाह

का हेतु जो वन्हिमैं सामर्थ्य,सोई वन्हिमैं सक्ति है, सो बनै नहीं. काहेतैं, दाहकी **हेतुता** कहिये जनकता कारनपना केवल वन्हिमैंही है. अप्रसिद्ध सामर्थ्य वन्हिमैं मानिकै ताके विषे हेतुता माननैका, औ प्रसिद्ध वन्हिमैं हेतुता त्यागनेका कुछ प्रयोजन नहीं. जैसैं दृष्टांतमैं सक्ति नहीं संभवै **इम** कहिये इस रीतिसैं पदनकै विषे बी वर्नका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासैं जुदी सक्ति भासै नहीं. औ ताका प्रयोजन बी नहीं. या हेतुतैं ईस्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसैं सक्ति, सोई मेरी मति मांहि भासै है.

४१३

गुरुरुवाच.

संकर छंद.

प्रतिबंध होतै वन्हितैं नहि, दाह उपजै अंग,
उत्तेजक रु जब धरै तब, फिरि दहै वन्हि स्वसंग;
व्है वन्हिमैं जो हेतुता, तो दाह व्है सब काल;
जो नसै उपजै वन्हि होते, हेतु सक्ति सु वाल. २२

टीका:—हे अंग प्रिय प्रतिबंधकै होतै अग्निसैं दाह होवै नहीं. औ उत्तेजक समीप धरै तब **स्वसंग** कहीये, अग्निसैं मिल्या जो पदार्थ ताका दाह प्रतिबंध होते बी होवै है. जो सक्तिसैं विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवै तो **सर्वकाल** कहिये, उत्तेजक सहित प्रतिबंध काल औ प्रतिबंध रहित कालकी नांई उत्तेजक रहित प्रतिबंध कालमैं बी दाह हुवा चाहिये. काहेतैं दाहका हेतु केवल अग्नि ताकालमैं बी है. औ स्वमतमैं तो यह दोष नहीं. काहेते स्वमतमैं अग्निकी सक्ति, अथवा सक्ति सहित अग्नि दाहका हेतु है; केवल अग्नि नहीं.

जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसैं अग्निका तौ नास वा तिरोधान नहीं बी होता; तथापि अग्निकी सक्तिका नास वा तिरोधान होवै है. यातैं दाहका हेतु सक्ति अथवा सक्ति सहित अग्निका अभाव होनैतैं दाह होवै नहीं. औ जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है; तहां प्रतिबंधनै तौ अग्निकी सक्तिका नास वा तिरोधान करि दीया. परंतु उत्तेजकनै फेरि सक्तिकी उत्पत्ति वा **प्रादुर्भाव** किया है. यातैं प्रतिबंधके होते बी उत्तेजकके महात्मतैं दाहका हेतु सक्ति वा सक्ति सहित अग्निके होनैतै दाह होवै है. चतुर्थ पादका अछरार्थ यह है:—हे बाल! अज्ञात तत्व, जो **नसैं** कहिये नासकूं प्राप्ति होवै प्रतिबंधतै, औ उपजै उत्तेजकतैं, **सु** कहिये सो सक्ति दाहका हेतु हैं. कारजका जो विरोधी सो **प्रतिबंध** औ **प्रतिबंधक** कहिये है. औ प्रतिबंधकके होते कारजका साधक **उत्तेजक** कहिये है.

अग्निके स्थान प्रतिबंध औ उत्तेजक मनि मंत्र औषध है. जा मनि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसैं दाह होवै नहीं सो **प्रतिबंधक**, औ जा मनि मंत्र औषधके सन्निधानतैं प्रतिबंधक होते बी दाह होवै सो **उत्तेजक** है.

४१४

गुरु वाक्य.

अर्द्ध संकर छंद.

सिष रीति यह सब वस्तुमैं तूं, सक्ति लेहु पिछानि;
बिन सक्ति नहि कछु काज होवै, यहै निश्चै मानि. २३

टीकाः— हे सिष्य, वन्हिकी नांई जल आदिक सर्व पदार्थन विषै तूं सक्ति पिछान. सक्तिसैं विना किसी हेतुसैं कोई कार्य होवै

नहीं. सार्द्ध संकरसें सक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो सिष्यनें प्रश्न कियाथा" सक्ति बन्हिसें भिन्न प्रतीत होवै नहीं." ताका समाधान कहनेकूं अर्द्ध संकरसें सक्तिका अनुभव दिषावै है.

मूल अर्द्ध संकर छंद.

अब सक्ति यामैं है नही वह, सक्ति उपजी और,
यह सक्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर? २४

अर्थ स्पष्ट. सिद्धांतकी रीतिसें सक्तिका स्वरूप औ सक्तिमें प्रमान निरूपन किया.

४१५ अन्य मतकी सक्ति षंडन करै हैं.

अर्द्ध संकर छंद.

जो सक्ति इच्छा इसकी सो, पदनके न नजीक,
मत न्यायको अन्याय या विधि, सक्ति जानि अलीक २५

टीका. जो ईस्वरकी इछारूप पदसक्ति कही सो बनै नहीं. काहेतें ईस्वरकी इछा ईस्वरका धर्म है; यातें ईस्वरमे रहै. जो इछा सो पदकी सक्ति है; यह कहना बनै नहीं. जो पदका धर्म सक्ति हावै तौ पदकी सक्ति है; यह कहना बनै. यातें पदकी सामर्थ्य रूपही पदकी सक्ति है. ईसकी इछा पदके नजीक बी नहीं. सो पदकी सक्ति है; यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूठका है.

४१६ अथ वैय्याकरन रिति सक्ति लछन.

अर्द्ध संकर छंद.

योग्यता जो अर्थकी पद मांहि सक्ति सु देषि;
यूं कहत वैय्याकरन भूषन, कारिका हरि लेषि. २६

टीका. पदके विषै जो **अर्थकी योग्यता** कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमैं सक्ति है. जैसैं घट पद विषै कलसरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है सोई सक्ति है. इस रीतिसैं वैय्याकरन भूषन ग्रंथमैं हरिकी कारिका प्रमान-लिषिकै **सक्ति** कही है. अथवा वैय्याकरनके जो **भूषन** कहिये उत्तम वैय्याकरनतैं **हरिकी कारिका** कहिये श्लोककूं देषिकै कहत है.

४१७ गुरु वाक्य.

सार्ध संकर छंद.

सुनि सिष्य वैय्याकरन मतमैं प्रबल दूषन एक;
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह, पूछि ताहि विवेक;
भाषै जु है तौ सक्ति मानहु, ताहि लोक प्रसिद्ध;
कहि नाहि जो असमर्थ पदसो, योग्य न्है यह सिद्ध. २७
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध.
जो और दूषन देषनो तौ ग्रंथ दर्पन सोध. २८

टीका. प्रथम पाद स्पष्ट. हे सिष्य, अर्थ ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो सक्ति मानै है; ताकूं यह विवेक पूछि:— तेरे मतमैं पदविषै सामर्थ्य है अथवा नहीं है? प्रथम पक्ष कहै तौ हमारे

मतकी सक्ति बलसें सिद्ध होवै है. यह तृतीय पादसें कहै है. भाषै जु है तो इति याका अन्वय जु कहिये जो भाषै है, तौ लोक प्रसिद्ध सक्ति ताहि मानहू. अर्थ जो वैय्याकरनी कहै पद मैं सामर्थ्य है, तौ लोकमैं प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप सक्ति है,ताहि पदमैं बी मानहू. पदमैं अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं सक्ति मति मान.

अभिप्राय यह है:–जो पदमैं सामर्थ्य अंगीकार करै ताकूं सामर्थ्य सैं भिन्नरूप सक्तिका मानना योग्य नहीं. किंतु सामर्थ्य रूपही सक्ति है. यह मानना योग्य है. काहेतैं सामर्थ्य बल जोर सक्ति ये च्यारि नाम एक वस्तुके लोकमैं प्रसिद्ध है. जोरहीनकूं लोक कहै है, यह सामर्थ्यहीन है, बलहीन है, सक्तिहीन है. और भर्जित अन्नकूं कहै है. याके विषै अंकूर उत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, बल नहिं है, सक्ति नहीं है, जोर नहीं है. इस रीतिसैं सामर्थ्य औ सक्तिकी एकता लोकमैं प्रसिद्ध है. औ वन्हिमैं बी सामर्थ्यरूपही सक्ति निर्नीत है. यातैं पदमैं सामर्थ्यरूपही सक्ति माननी योग्य है. ओ पदमैं सामर्थ्य मानिकै तासैं भिन्न योग्यताकूं सक्ति कहनैंका लोक प्रसिद्धिकै विरोध विना और फल नहीं. केवल लोक प्रसिद्धिका विरोधही फल है. औ

४१८ जो ऐसैं कहै, सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहै है, तो हमाराही मत सिद्ध होवै है. औ ऐसै कहै, हम सामर्थ्य अंगीकार करै तौ सामर्थ्यरूप सक्ति पदमैं संभवै; सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते. यातैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमैं सक्ति है. ताकूं यह पुछ्या चाहिये:–

सामर्थ्यका अभाव केवल पदमैंही अंगीकार करै है, अथवा वन्हि आदिक सर्व पदार्थनमैं सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करै है?

जो अंत्य पछ कहै, तो वन्हि आदिक पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप सक्ति-कै प्रतिपादनमैं उक्त जो जुक्ति तिन्हतैं षंडित है. औ प्रथम पछ कहैं तौ ताकै विषै अंत्य पछ उक्त दोष तो यद्यपि नही है; काहेतैं जो वन्हि आदिक सर्व पदार्थनैंमैं सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं मानै, तौ प्रतिबंधकतैं दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्य पछमैं दोष है; सो दोष प्रथम पछमैं नहीं. काहेतैं वन्हि आदिक सर्व पदार्थनमैं तौ सामर्थ्यरूप सक्ति है; यातैं प्रतिबंधकतैं दाहके अ-भावका असंभव नहीं. परंतु पदके विषै अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासैं भिन्न सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं. किंतु पदमैं अर्थकी योग्य-ताही सक्ति है; यह प्रथम पछ है. ताकै विषै प्रतिबंधकतैं दा-हका असंभवरूप दोष तो नहीं, तथापि,

पद विषै बी वन्हिकी नांई सामर्थ्यका अंगीकार अवस्य किया चाहिये; यह प्रतिपादन करै हैं, संकरके दो पादनतैं:—**नाहि जो असमर्थं** इत्यादि **सविरोध** पर्यंत. अर्थ **नाहि** कहिये पदमैं सामर्थ्य-का अंगीकार नहीं तो जो असमर्थ पद सो **योग्य** कहिये, अर्थज्ञान-का जनक है; **यह सिद्ध** कहिये मतका निश्चे है सो असंगत है. काहेतैं, पद असमर्थ है, औ **अर्थ योग्य** कहिये, अर्थज्ञानका जन-क है; यह वाक्य नपुंसकका अमोघ वीर्य है; इस वाक्यकी नांई कहतेही सविरोध है; विरोध सहित है. सामर्थ सहितका नाम **समर्थ** है. औ सामर्थ्य रहितका नाम **असमर्थ** है. असमर्थसैं कोई कार्य होवै नाहिं, यह लोकमैं प्रसिद्ध है. यातैं असमर्थ पदसैं बी अ-र्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. यातैं पदमैं सामर्थ्य मानना योग्य है. जब सामर्थ्य पदमैं अंगीकार किया तब सक्ति बी पदमैं सामर्थ्यरूप ही माननी योग्य है. इस रीतिसैं अर्थ ज्ञानकी जनकतारूप योग्य-ता पदमैं सक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही सक्ति है. जो नैया-

करन मतमैं और दूषन देषना होवै, तो सक्तिके निरूपनमैं दर्पन ग्रंथकूं सोध कहिये देष. दूषन क्लिष्ट है, यातै दर्पन उक्त दूषन लिष्या नहीं.

४१९ अथ भट्ट रीति सक्ति लछन.

अर्द्ध संकर छंद.

संबंध पदको अर्थसैं तादात्म्य सक्ति सु वेद;
इम भट्टके अनुसारि भाषत, ताहि भेदाभेद. २९

टीका:— पदका अर्थसैं जो तादात्म्य संबध, ताकूं भट्टके अनुसारी **सक्ति** कहै हैं. सो वेद कहिये तूं जान. **ताहि** कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेद रूप कहै हैं. यह तिन्हका अभिप्राय है:—अग्नि पदका अंगार अर्थसैं अत्यंत भेद नहीं. जो अत्यंत भेद होवै तौ जैसैं अग्निपदसैं अत्यंत भिन्न जल आदिक हैं; तिन्हकी अग्नि पदसैं प्रतीति होवै नहीं. तैसैं अग्निपदसैं अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नही होवैगी पदसैं अत्यंत भिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं पदका अपने अर्थसैं अत्यंत भेद नही; तैसै अत्यंत अभेद बी नहीं. जो अत्यंत अभेद वाच्य वाचकका होवै; तौ जैसैं अग्निपदकै वाच्य अंगारसैं मुषका दाह होवै है, तैसैं अंगारका वाचक अग्नि पदकै उच्चारन कियेतैं बी मुषका दाह हुवा चाहिये. औ पदकै उच्चारनतैं दाह होवै नहीं, यातैं अत्यंत अभेद बी नहीं. किंतु अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं, भेद सहित अभेद है. भेद है यातैं दाह होवै नहीं; औ अभेद है यातैं अग्नि पदतैं जल आदिकनकी नांई अंगारकी प्रतीतिका असंभव बी नहीं. जैसै अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं भेद सहित अभेद है; तैसैं उदक, वन, जल, दक, जीवन पदनका

पानीरूप अर्थसैं भेद सहित अभेद है; जो अत्यंत भेद होवै तौ जैसे उदक आदिक पदनतैं अत्यंत भिन्न अग्निआदिक हैं; तिन्हकी उदक आदिक पदनतैं प्रतीति होवै नहीं. तैसे पानीरूप अर्थकी बी उदक आदिक पदनतैं प्रतीति नही होवैगी; यातैं अत्यंत भेद नहीं; औ अत्यंत अभेद बी नहीं. जो अत्यंत अभेद होवै, तौ जैसे पानीतैं मुषमैं सीतलता होवै है; तैसैं उदक आदिक पदनकै उच्चारनतैं बी मुषमैं सीतलता हुई चाहिये; औ पदनतैं सीतलता होवै नहीं. यातैं अत्यंत अभेद नहीं. किंतु भेद सहित अभेद होनैतैं दोउ दोष नहीं. इस रीतिसैं सर्वत्रही अपने अपने वाच्यतैं; वाचक पदनका भेद सहित अभेद है. ता भेद सहित अभेदकूंही, भट्टके अनुसारी तादात्म्य संबंध कहै हैं; औ भेदाभेद कहै हैं. सो भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंधही, सर्व पदनमै अपनैं अपनैं अर्थकी सक्ति है. दातात्म्य संबंधसैं जुदी सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं. भेदाभेदमैं जुक्ति कही.

४२० अब प्रमान कहे हैं.

अर्ध संकर छंद.

यह ॐ अछर ब्रह्म है यूं, कहत वेद अभेद;
पुनि बानिमैं पद अर्थ बाहरि, देषियत यह भेद. ३.

टीकाः—मांडुक्य आदिक वेद वाक्यनमैं "ॐ अछर ब्रह्म है." यह कह्या है. तहां व्याकरनकी रीतिसैं प्रकासरूप सर्वकी रछाकरता ॐ अछरका अर्थ है. ऐसा ब्रह्म है. यातैं ॐ अछर ब्रह्मका वाचक है; औ ब्रह्म वाच्य है. जो वाच्य वाचकका आपसमैं अत्यंत भेद होवै, तौ वाचक ॐ अछरका औ वाच्य ब्रह्मका, मांडुक्य आदिकनमैं अभेद नहीं कहते. औ "ॐ अछर ब्रह्म है," इस रीतिसैं अभेद कह्या है. यातैं वाच्य वाचककै अभेदमैं वेद वचन

प्रमान है. औ सर्व लोककी प्रतीतिसैं वाच्य वाचकका भेद सिद्ध है. काहेतैं अग्नि आदिक पद बानीमैं हैं, औ अंगार आदिक तिनका अर्थ बानितैं बाहरि, चुल्हि आदिकनमैं हैं. तैसैं ॐ अछररूप पद बानीमैं है. औ ताका अर्थ ब्रह्म बानीमैं नहीं है; किंतु बानीतैं बाहरि कहिये अपनै महीमामैं हैं. यद्यपि ब्रह्म व्यापक है; यातैं बानीमैं ब्रह्मका अभाव नहीं. तथापि ब्रह्ममैं बानी है; औ बानीमैं ब्रह्म नहीं. इस रीतिसैं सर्व लोकनकूं पद बानीमैं; औ अर्थ बानीतै बाहरि प्रतीत होवै है. यातैं पदका औ अर्थका भेद लोकमैं प्रसिद्ध है. इस रीतिसैं वाच्य वाचकके भेदमैं सर्व लोकका अनुभव प्रमान है. औ तिन्हके अभेदमैं वेद वचन प्रमान हैं. यातैं पदका अर्थसैं भेदाभेद रूप तादात्म्य संबंध अप्रमान नहीं; किंतु प्रमान सिद्ध है.

४२१ प्रसंगतैं अन्य स्थानमैं बी भेदाभेद तादात्म्य संबंध दिषावै है.

अर्द्ध संकर छंद.

जो गुन गुनी औ जाति व्यक्ती, क्रिया अरु तद्वान;
संबंध लषि तादात्म्य इनको, कार्य कारन सान. ३१

टीका. रूप रस गंध आदिक गुन हैं. तिन्हका आश्रय गुनी कहिये है. जैसैं रूप आदिकनका आश्रय भूमि गुनी है. अनेकनकैंमाहि रहै जो एक धर्म सो जाति कहिये है. जैसैं सर्व ब्राह्मन सरिरनके मांहि एक ब्राह्मनत्व है. औ सर्व सुद्रमांहि सूद्रत्व है. औ सर्व जीवन मांहि जीवत्व है. पुरुषनमैं पुरुषत्व है. सर्व घटनमांहि घटत्व है. जाकूं लोकमांहि ब्राह्मनपना, सूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मन आदिक सरीरनमांहि, ब्राह्मनत्व आदिक जाति हैं. जातिका आश्रय जो

ब्राह्मन आदिक सो **व्यक्ति** कहिये है. गमन आगमन आदिक **क्रिया** कहिये है. औ **तद्वान** कहिये तिसवाला, अर्थ यह, क्रियाका आश्रय इतने पदार्थनका तादात्म्य संबंध है. यह **लषि** कहिये जानि, औ कारन कार्यकूं **सान** कहिये गुनगुनी आदिक विषै मिलाव. अभिप्राय यह है:—कारन कार्जका बी गुनगुनीकी नांई तादात्म्य संबंध है. गुनका औ गुनीका आपसमैं तादात्म्य संबंध है. जातिका औ व्यक्तिका आपसमें तादात्म्य संबंध है. तैसैं क्रिया औ क्रियावानका तादात्म्य संबंध है. कारनका औ कार्यका बी तादात्म्य संबंध है. **तादात्म्य** नाम भेद सहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्त कारनका औ कार्यका तो भेदाभेद रूप तादात्म्य नहीं है; किंतु अत्यंत भेद है; **तथापि** उपादान कारनका औ कार्यका, भेदाभेद रूप तादात्म्यही संबंध है. जैसें घटके निमित्त कारन, कुलाल दंड आदिक हैं; तिनका घट रूप कार्जसें अत्यंत भेद बी है, परंतु उपादान कारन मृत्तिका पिंड औ घट कार्यका भेद सहित अभेद है. जो मृत्तिका पिंडसें घट अत्यंत भिन्न होवै, तौ जैसें मृत्तिका पिंडसें अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं; तैसें घटकी बी उत्पत्ति नहीं होवैगी. औ उपादान कारनका कार्यतें अत्यंत अभेद होवै; तौ बी मृत्पिंडसें घटकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतै, अपनै स्वरूपसें अपनी उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं उपादान कारनका कार्यतैं भेद सहित अभेद है; यातैं अत्यंत भेद पक्षका दोष नहीं. औ भेद है, यातैं अभेद पक्षका दोस नहीं. इस रीतिसें उपादान कारनका कार्यतैं भेदाभेद युक्ति सिद्ध है. औ प्रतीतिसैं बी उपादानतैं कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है. यह मृत्पिंड है, यह घट है, इसप्रीतिकी भिन्न प्रतीतिसैं भेद सिद्ध होवै है. औ विचारतैं देखैं तौ घटके

बाहिर भीतर मृत्तिकासैं भिन्न कुछ वस्तु प्रतीति होवै नहीं .किंतु मृत्तिकाही प्रतीत होवै है; यातैं अभेद सिद्ध होवै है. इस रीतिसैं उपादान कारनका, कार्यतैं भेदाभेद रूप तादात्म्य संबंध है. तैसैं गुन औ गुनीका बी भेदाभेद है. जो घटके रूपका घटसैं अत्यंत भेद होवै तौ जैसैं घटतैं पटका अत्यंत भेद है; सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है. तैसैं घटका रूप बी घटके आश्रित नहीं होवैगा. औ गुन गुनीका अत्यंत अभेद होवै तौ बी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं. काहेतैं, अपना आश्रय आप होवै नहीं. यातै गुन गुनीका भेदाभेद रूप तादात्म्य संबंध है. यह जुक्ति जाति औ व्यक्ति, तथा क्रिया औ क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंधमैं जाननी. औ षंडन करना जो मत ताके विषे बहुत जुक्ति कहनेका प्रयोजन नहीं; यातैं और जुक्ति नहीं लिषी.

४२२ अथ भट्ट मत षंडन.

दोहा.

एक वस्तुको एकमैं, भेद अभेद विरुद्ध;
जुक्ति जुक्त यातै कहत, यह मत सकल असुद्ध. ३२

टीका.—अछर अर्थ स्पष्ट. अभिप्राय यह है:—यद्यपि एक घटमैं अपना अभेद है; औ परका भेद है; तथापि जाका अभेद है, ताका भेद नहीं, औ जाका भेद है ताका अभेद नहीं; इस अभिप्रायतैं एक वस्तुका भेद अभेद विरुद्ध कह्या है. तथा एक वस्तुका कहिये, घटकाही अपनेमैं अभेद औ परमैं भेद है. परंतु जामैं अभेद है तामै भेद नहीं. औ जामैं भेद है तामै अभेद नहीं. इस अभिप्रायतैं एक वस्तका भेद अभेद एकमैं बिरुद्ध कह्या है. भेद अभेद आपसमैं

विरोधी हैं. एक वस्तुमैं जाका भेद होवै ताका अभेद, औ जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्ध है. यातैं वाच्य वाचक, गुन गुनी, जाति व्यक्ति, क्रिया क्रियावान, उपादान कारन कार्यका, जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया सो असुद्ध है.

४२३ पूर्व वाच्य वाचकके भेदाभेदमैं प्रमान जो कह्या:—"बानीमैं वाचक औ बाहरि वाच्य यातैं भेद, औ श्रुतिमैं ॐ अछर ब्रह्म कह्या है; यातै अभेद. ताका समाधान.

दोहा.

प्रनव वर्न अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद;
तामैं अन्य रहस्य कछु, लष्यौ न भट्ट सु भेद. ३३

टीका:— **प्रनव वर्न** कहिये ॐ अछर अरु ब्रह्मका जो वेदमैं अभेद कह्या है, ता वेद वचनका वाच्य वाचककै अभेदमैं तात्पर्य नहीं. किंतु तामैं अन्यही **रहस्य** कहिये गोप्य अभिप्राय है. सो **भेद** कहिये अभिप्राय भट्टनै लिष्या नहीं. जहां ॐ अछर ब्रह्म कह्या है, तिस वाक्यका ॐ अछर औ ब्रह्मकै अभेदमैं तात्पर्य नहीं है. किंतु ॐ अछरकूं ब्रह्मरूप करिकै उपासना करै; इस अर्थमैं तात्पर्य है. उपासना जाकी विधान करी है; ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं है:—जैसी उपासना विधान करी है, तैसाही उपास्यका स्वरूप होवै है. किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है ताकूं त्यागिकै; अन्य स्वरूपकी बी ताकै विषै उपासना करिये है. जैसैं सालिग्राम औ नर्बदेस्वरकी, विष्णुरूप औ सिवरूप करिकै उपासना कही है. तहां संष चक्र आदिक सहित चतुर्भुज मूर्ति सालिग्रामकी नही है. औ गंगा भूषित जटाजूट डमरू चर्म कपालिका सहित, भद्रामुद्रासैं सरनागतनकूं, त्रिगुन रहित आत्माका उपदेस देनेवा-

ली मूर्ति नर्बदेस्वरकी नहीं है; किंतु दोनूं सिलारूप हैं. औ सास्त्रकी आज्ञातें तिन सिलारूपकी दृष्टि त्यागीकै, दोनूं बिषे क्रमतें बिस्नुरूप औ सिवरूपकी उपासना करिये हैं. यातें उपास्यके स्वरूपके आधीन उपासना नहीं होवै है; किंतु बिधिके आधीन है. जैसै सास्त्रका वचन बिधान करै, तैसी उपासना करै. जैसै छांदोग्य उपनिषदमैं पंचाग्नि विद्या प्रकरनमैं, स्वर्गलोक, मेध, भूमि, पुरुष, स्त्री, इन पांच पदार्थनकी **अग्निरूप करिकै; उपासना कही है**. औ श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य, इन पांच पदार्थनकी **पंच अग्निकी आहुतीरूप उपासना कही है**. तहां स्वर्ग आदिका अग्नि नहीं है; औ श्रद्धा सोम आदिक आहुति नहीं है. **तथापि** वेदकी आज्ञातैं स्वर्गलोकादिनकी अग्निरूपतैं; औ श्रद्धा आदिकनकी आहुतिरूपतैं उपासना करिये है. इस रीतिसैं ॐ अछरकी ब्रह्मरूप करिकै उपासना कही हैं. तहां ॐ अछर ब्रह्मरूप नहीं है; तौ बी ब्रह्मरूप करिकै उपासना बनै है.

उपासना वाक्यमैं वस्तुके अभेदकी अपेछा नहीं. किंतु भिन्न वस्तुकी बी अभिन्नरूपतैं उपासना होवै है. औ विचारतैं देखिये तौ ब्रह्मका वाचक जो ॐ अछर है, ताका तौ अपनै वाच्य ब्रह्मतैं अभेद बनै बी है. घट आदिक अन्य पदनका अपनै अपनै जडरूप अर्थसैं अभेद बनै नहीं. काहेतैं, **सर्व नामरूप ब्रह्ममें कल्पित है**. ब्रह्मअधिष्ठान है. ॐ अछर बी ब्रह्मका नाम है; यातैं ब्रह्ममैं कल्पित है. कल्पित वस्तु अधिष्ठानसैं भिन्न होवै नहीं; किंतु अधिष्टानरूपही होवै है, यातैं ॐ अछर ब्रह्मरूप है. औ घट आदिक पदनका जो जडरूप अपना अर्थ, सो अधिष्ठान नहीं. किंतु वाच्य सहित घट आदिक पद ब्रह्ममैं कल्पित है; औ ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है. यातैं ब्रह्मसैं तौ सर्वका अभेद बनै बी है;

परंतु घट आदिक पदनका अपने जडरूप वाच्यअर्थसें, अभेद किसी रीतिसें बने नहीं. यातें भट्ट मतमें वाच्य बाचकका अभेद असंगत है. औ

४२४ केवल भेद जो वाच्य वाचकका अंगीकार करै हैं; तिन्हके मतमें यह दोष भट्टने कह्या है:— जो घट पदका वाच्य घट पदसे अत्यंत भिन्न होवे, तौ जैसें घट पदसे अत्यंत भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं; तैसें घट पदसें अत्यंत भिन्न कलसरूप अर्थकी, प्रतीति बी नही होवैगी. औ घट पदसें वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घट पदसें प्रतीति मानोगे, तो जैसें घट पदतें अत्यंत भिन्न कलसरूप अर्थकी प्रतीति होवे है; तैसें अत्यंत भिन्न वस्त्रकी बी घटपदसें प्रतीति हुइ चाहिये. यह दोष बी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप सक्ति नहीं मानै, तिन्हके मतमै है. जो सक्ति अंगीकार करै, तिनके मतमें दोष नहीं. काहेतें, जो घटपदका वाच्य कलस, औ ताका अवाच्य वस्त्रादिक, सो दोनो घटपदसें भिन्न है. परंतु घटपदमें कलसरूप अर्थके ज्ञान करनेकी सक्ति है; औ अन्य अर्थके ज्ञान करनेकी सक्ति नहीं. यातें घटपदतें कलसरूप अर्थतें भिन्न अर्थकी प्रतीति होवे नहीं. इस रीतिसें जा पदमें जिस अर्थकी सक्ति है; ताहि अर्थकी विस पदसें प्रतीति होवे है; अन्य अर्थकी नहीं. यातें वाच्य बाचकके अत्यंत भेदमें दोष नहीं. तिनका भेद सहित अभेदरूप तादात्म्य संबंध बने नहीं.

४२५ भेद औ अभेद आपसमें विरोधी है. तैसें उपादान कारनका कार्यतें, भेद सहित अभेद नहीं, केवल भेद है. औ केवल भेदमें जो दोष कह्या है, सो नैयायिक औ सक्तिवादीके मतमै नहीं. काहेतें कारन कार्यके अत्यंत भेदमें यह दोष है. जो मृत्पिंडसें अत्यंत भिन्न घटकी उत्पत्ति होवे, तौ अत्यंत भिन्न तैलकी बी

मृत्पिंडसैं उत्पत्ति हुई चाहिये. औ अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवैगी; तौ अत्यंत भिन्न घटकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

४२६ यह दोष नैयायिक मतमैं नहीं. काहेतैं, सर्व वस्तुकी उत्पत्तिमै नैयायिक प्रागभावकूं कारन माने हैं. जैसें घटकी उत्पत्तिमैं दंड, चक्र, कुलाल, कारन है; तैसें घटका प्रागभाव बी घटका कारन है. तैसें सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमैं कारन है. सो घटका प्रागभाव घटके उपादान कारन मृत्पिंडमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. ऐसें सर्व कार्यनका **प्रागभाव** अपने अपने उपादान कारनमै रहै हैं. जिस पदार्थनमैं जाका प्रागभाव होवै तिस पदार्थसैं ताकी उत्पत्ति होवै है; अन्यकी नहीं. जैसें मृत्पिंडमैं घटका प्रागभाव है; यातैं मृत्पिंडसैं घटकीही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. औ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है; यातैं तिलनतै तैलकीही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. ऐसैं सर्व कार्यमैं प्रागभाव कारन है. यातैं कारन कार्यका अत्यंत भेद माननेतैं नैयायिक मतमै दोष नहीं. औ

४२७ **सामर्थ्यरूप सक्तिवादीके मतमै** दोष नहीं. काहेतैं मृत्पिंडमै घटकी सामर्थ्यरूप सक्ति है, तैलकी नहीं. औ तिलनमैं तैलकी सामर्थ्य हैं; घटकी नहीं. याते मृत्पिंडतैं घटकीही उत्पत्ति होवै है, औ तैलकी नहीं. तैसें तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवै है; घटकी नहीं. इस रीतिसैं उपादान कारनका और कार्यका अत्यंत भेद माननेमै दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है. औ भेदमै तथा अभेदमैं जो दोष भट्टने कहे हैं; सो दोनूं पक्षके दोष भट्टके मतमैं अवश्य रहै हैं. काहेतैं, भट्टनैं भेद सहित अभेद अंगीकार किया है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा:—कारन कार्यका भेद बी है, औ

अभेद बी है. भेद है यातैं भेद पक्ष उक्त दोष होवैंगे; औ अभेद है यातैं अभेद पक्ष उक्त दोष होवैंगे. जैसैं चोरीका दोष औ द्यूतका दोष जो एक एक करनै वालेकूं कहे हैं; सो दोउ व्यसन जाकै होवै, ताके चोरी द्यूत दोनूंके दोष होवै है. तैसैं गुन गुनी आदिकनके भेदाभेद माननेतैं बी, भेद पक्ष औ अभेद पक्षके दोनूं दोष होवैंगे. औ सक्तिवादीके मतमैं केवल भेद अंगीकार कियेतैं दोष नहीं. काहेतैं गुनीमै गुनके धारनैकी सक्ति है; अन्यकी नहीं. यातैं भेद पक्षमैं जो दोष कह्या था:—घटके रूपादिक जैसै घटसैं भिन्न है, तैसैं पट आदिक बी घटसै भिन्न है. रूपादिकनकी नांई पट आदिक बी घटमैं रहे चाहिये. अथवा पट आदिकनकी नांई रूपादिक बी नहीं रहे चाहिये.सो दोष सक्ति नहीं अंगीकार करे, ताके मतमैं है. सक्तिवादीके मतमैं केवल भेद माननैंतैं बी दोष नहीं. उलटा भट्ट मतमैं भेद अभेद दोनो माननेतैं, दोनु पक्षके दोष, उक्त दृष्टांतसै है. औ भेद अभेद विरोधी धर्मका असंभव दोष है. तैसैं जाति व्यक्तिका औ क्रिया क्रियावानका बी केवल भेद है. तथापि व्यक्तिमैं जातिके धारनैकी सक्ति है; औ क्रियावानमै क्रिया धारनैकी सक्ति है; अन्य धारनैकी सक्ति नहीं. इस रीतिसैं उपादान औ कार्यका तथा गुन गुनी आदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंध असंगत है. सर्वका आपसमैं भेद माननैमैं भट्ट उक्त दोषनकूं सक्ति ग्रसे है. यद्यपि वेदांत सिद्धांतमैं बी, कार्य गुन जाति क्रियाका, उपादान गुनी व्यक्ति क्रियावानतैं अत्यंत भेद नहीं. किंतु तादात्म्य संबंधही अंगीकार किया है. तथापि वेदांत मतमैं भेदाभेद रूप तादात्म्य नहीं. किंतु भेद औ अभेदसैं विलक्षन अनिर्वचनीयरूप तादात्म्य संबंध है. भेदसैं विलक्षन है, यातैं अभेद पक्षके

दोष नहीं. औ अभेदसैं विलछन है; यातैं अभेद पछके दोष नहीं. इस रीतिसैं भेदाभेदसै विलछन अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध है. परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है. यातैं "वाचक वाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंधही सक्ति है." यह भट्ट अनुसारीका पछ समीचीन नहीं. किंतु पदके सुनतैही अर्थके ज्ञान करनेकी जो पदमैं सामर्थ्य, सोई पदमैं सक्ति है. इति सक्ति निरूपन.

४२८ लछनाके ज्ञानमैं सक्यका ज्ञान उपयोगी है. काहेतैं सक्य संबंध लछनाका स्वरूप है. सक्य जाने बिना सक्य संबंधरूप लछनाका ज्ञान होवे नहीं. यातैं सक्यका लछन कहै है:—

दोहा.

व्है पदमैं जा अर्थकी, सक्ति सक्य सो जानि;
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहि, वाचक पदहि पिछानि. ३४

टीका. जा पदमै जा अर्थकी सक्ति होई, ता पदका सो अर्थ सक्य जानि. औ **सक्य अर्थकूंही वाच्य अर्थ** बी कहै है. जैसैं अग्नि पदमैं अंगाररूप अर्थकी सक्ति है; यातै अग्निपदका अंगार **सक्यअर्थ** औ **वाच्यअर्थ** कहिये है. औ वाच्यअर्थका बोधकापद **वाचक** कहिये है.

४२९ अथ लछना औ जहती आदिक भेद लछन.

कवित्व.

सक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लछनको,

लछना सो भान जाको लछना सु पिछानिये;
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहां,
होई प्रतीति तहां जहती बषानिये;
वाच्य जुत वाच्यके संबंधका जु ज्ञान होय,
ताहि ठौर लछना अजहतिहि मानिये;
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये. ३५

टीका. **सक्य** कहिये वाच्यअर्थका जो **संबंध** कहिये मिलाप, सो **लछनाका स्वरूप** कहिये, लछन जानि. औ जा अर्थको पदकी सक्तिसैं ज्ञान न होवै, किंतु लछनासैं **भान** कहिये ज्ञान होवै, सो पदका **लछ्यअर्थ** कहिये है. एक पादसैं लछनाका **स्वरूप** कह्या. अब,

४३० लछनको जहति आदिक तिनी भेदनके लछन एक एक पादसैं कहै हैं:—"वाच्य" इत्यादिसैं. जहां वाच्य अर्थ संपूर्न त्यागिकै वाच्यअर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै, तहां **जहति लछना** कहिये है. जैसे किसीने कह्या, गंगामै ग्राम है. या स्थानमैं गंगा पदकी तीरमैं जहति लछना है- काहेतैं, गंगा पदका वाच्यअर्थ देव नदीका प्रवाह है. ताकै विषै ग्रामकी स्थितीका असंभव है. यातैं सारे वाच्यअर्थकूं त्यागीकै, तीर विषै गंगा पदकी जहति लछना है. वाच्यकै संबंधका नाम **लछना** है. या स्थानमैं गंगा पदका वाच्य जो प्रवाह, ताका तीरसैं **संयोग संबंध** है. यातैं गंगा पदकै वाच्यका जो तीरसैं संबंध सो **लछना.** औ वाच्यका सारैका त्याग यातै **जहति लछना.**

४३१ वाच्यजूत इत्यादि, तृतीय पादसें अजहति लछना दिषावै है:– **वाच्यजूत** कहिये वाच्यअर्थ सहित, वाच्यके संबंधीका जा पदसें ज्ञान होय, ता पदमें अजहति लछना मानिये. जैसै किसीनै कह्या, सोन धावन करै है. तहां सोन पदकी लाल रंगवाले अस्व विषै अजहति लछना. काहेतें **सोन** नाम लाल रंगका है. यातें सोन पदका वाच्य लाल रंग है. ता केवलमें धावनका असंभव है. इस कारनतें सोनपदका वाच्य जो लाल रंग, ता सहित अस्वमें सोन पदकी अजहति लछना है. (भाषामें शोनकूं सोन पढै है.) गुनका औ गुनीका तादात्म्य संबंध कहै है; औ लाल बिरूप का भेद होनेंतें गुन है. यातें सोन पदका वाच्य जो लालगुन, ताका गुनी अस्वके साथी जो तादात्म्य संबंध, सो लछना. औ वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहन, यातें अजहति लछना.

४३२ "एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थ पादसें भाग त्याग लछना बतावै है:– जहां पदनके वाच्यअर्थ मध्य एक भागका त्याग होवै, एक भागका ग्रहन होवै, तहां **भाग त्याग लछना** कहिये है. ता भाग त्यागकूंही **जहति अजहति लछना** बी कहै है, जैसें प्रथम देषे पदार्थकूं अन्य देसमें देषिके किसीनै कह्या "सो यह है." तहां भाग त्याग लछना है. काहेतें अतीत कालमै औ अन्य देसमें स्थित वस्तूकूं **सो** कहै है. यातें अतीत काल सहित औ अन्यदेस सहित वस्तु, **सो पदका वाच्यअर्थ** है. औ वर्तमान काल समीप देसमें स्थित वस्तुकूं **यह** कहै है. यातें वर्तमान काल सहित औ समीप देस सहित वस्तु, यह पदका वाच्यअर्थ है. औ अतीत काल सहित अन्य देस सहित जो वस्तु, सोई वर्तमान काल औ समीप देस सहित है. यह समुदायका वाच्यअर्थ है. सो संभवै नहीं. काहेतें अतीत काल औ वर्तमान कालका विरोध

है. तथा अन्य देसका औ समीप देसका विरोध है. यातें दोनूं पदनमैं देस काल जो वाच्य भाग ताकूं त्यागिकै, वस्तु मात्रमैं दोनूं पदनकी भाग त्याग लछना.

४३३ तत्वमसी महा वाक्यमैं लछना दिषावनैकूं तत्पद औ त्वंपदका वाच्यअर्थ दिषावै है;

दोहा.

सर्व सक्ति सर्वज्ञ विभु, ईस स्वतंत्र परोछ;
मायी तत्पद वाच्य सो, जामैं बंधन मोछ. ३६

टीका:— **सर्व सक्ति** कहिये, जामैं सर्व सामर्थ्य. **सर्वज्ञ** कहिये सर्व वस्तुकै जाननैवाला. **विभु** कहिये व्यापक. **ईस** कहिये सर्वका प्रेरक. औ **स्वतंत्र** कहिये कर्मके आधिन नहीं. औ **परोछ** कहिये जीवकै प्रत्यछका विषय नहीं. **मायी** कहिये माया जाके अधीन औ बंध मोछ रहित. जामैं बंध होवै ताका मोछ होवै है. ईस्वर बंध रहित है, यातैं ईस्वरमैं मोछ बी नहीं. इतने धर्मवाला ईश्वर चेतन तत्पदका वाच्यअर्थ है.

४३४ अथ त्वंपद वाच्य निरूपन.

दोहा.

कहे धर्म जो ईसकै, सब तिनतैं विपरीत;
है जिहि चेतन जीव तिहि, त्वंपद वाच्य प्रतीत. ३७

टीका:—जो ईसके धर्म कहे तिनतैं विपरीत धर्म जामैं होवैं, सो जीव चेतन त्वंपदका वाच्य **प्रतीति** कहिये जान.याका भाव यह है:- अल्पसक्ति, अल्पज्ञ, परिछिन्न, अनीस, कर्मके अधीन, अविद्या मो-

हित, औ बंधमोछवाला, औ प्रत्यछ. काहेतैं, अपना स्वरूप किसी-कूं परोछ नहीं; प्रत्यछही होवै है. यद्यपि ईस्वरकूं बी अपना स्वरूप प्रत्यछ है; तथापि ईस्वरका स्वरूप जीवनकूं प्रत्यछ नहीं. यातैं परोछ कहिये है. औ जीवके स्वरूपकूं जीव ईस्वर दोनो जानै है; यातैं प्रत्यछ कहिये है. इतने धर्मवाला जीव चेतन त्वंपदका वाच्य कहिये है.

४३५

दोहा.

महावाक्यमैं एकता, व्है दोनोकी भान ;
सो न बनै यातैं सुमति, लछच लछनहि जान.३८

टीका:–सामवेदके छांदोग्य उपनिषदमैं उद्दालक मुनिनै, अपने पुत्र स्वेतकेतुकूं जगतकी उत्पत्ति करनेवाला ईस्वर बतायके कह्या:–"तत्वमसी" ताका यह वाच्यअर्थ है:–तत् कहिये सो जगतकी उत्पत्ति करनेवाला; सर्वसाक्ति सर्वज्ञता आदिक धर्म सहित ईस्वर. त्वं कहिये तूं अल्पसाक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव असि कहिये है. इहां "सो तूं है." इस कहनेतैं, ईस्वर जीवकी एकता वाच्यअर्थसें भान होवै है. सो बनै नहीं. काहेतैं, सर्वसाक्ति औ अल्पसक्ति, सर्वज्ञ औ अल्पज्ञ, विभु औ परिछिन्न, स्वतंत्र औ कर्म अधीन, परोछ औ प्रत्यछ, माया जाके अधिन, औ अविद्या मोहित एक है. यह कहना अग्नि सीतल है; इस कहनेके समान है. यातैं हे सुमती लछन ही कहिये लछनातैं लछय अर्थ जान. वाच्यअर्थमैं विरोध है.

दोहा.

आदि दोय नहि संभवै, महा वाक्यमै तात;

भाग त्याग यातैं लषहु, व्है जातैं कुसलात. ३९

टीका:— हे तात महावाक्यमैं **आदि दोय** कहिये, जहति अजहति नहीं संभवै. यातैं भाग त्याग लछना महावाक्यमैं **लषहु** कहिये जानो. जातैं **कुसलात** कहिये विरोधका परिहार होवै.

४३६ अथ जहति असंभव प्रतिपादन.

दोहा.

ज्ञेय जु साछी ब्रह्म चित, वाच्य मांहि सो लीन;
माने जहती लछना, व्है कछु ज्ञेय नवीन. ४०

टीका:— संपूर्न **वेदांतका ज्ञेय,** साछी चेतन औ **ब्रह्मचित्त** कहिये ब्रह्म चेतन है. सो **साछी चेतन औ ब्रह्म चेतन** त्वंपद औ तत्पदके वाच्यमैं **लीन** कहिये प्रविष्ट हैं. औ जहति लछना जहां होवै, तहां वाच्य संपूर्नका त्याग करिकै, वाच्यका संबंधी अन्य ज्ञेय होवै है. यातैं महावाक्यमैं जहति लछना मानैं तौ, वाच्यमैं आया जो चेतन तासैं **नवीन** कहिये, अन्य कछु ज्ञेय होवैगा. चेतनसैं **भिन्न असत जड दुःखरूप है.** ताके जाननैतैं पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं. यातैं महावाक्यमैं जहति लछना नहीं.

४३७ अथ जहति लछना असंभव प्रतिपादन.

दोहा.

वाच्यहु सारो रहत है, जहां अजहती मीत;
वाच्य अर्थ सविरोध यूं, तजहु अजहती रीत. ४१

टीका:- हे. मीत प्रिय, जहां अजहती लछना होवै, तहां वाच्यअर्थ सारे रहै है; औ वाच्यसैं अधिकका ग्रहन होवै है. महावाक्यनमैं अजहती लछना अंगीकार करैं, तौ वाच्यअर्थ सारा रहैगा. औ वाच्यअर्थ महावाक्यनमैं सविरोध कहिये विरोध सहित है. विरोध दूरि करनैकूं लछना अंगीकार करी है. अजहती माननैतैं महावाक्यनमैं विरोध दूरि होवै नहीं. यातैं अजहतीकी रीति महावाक्यनमैं तजहू.

४३८ अथ भाग त्याग लछना प्रकार.

दोहा.

त्यागि विरोधी धर्म सब, चेतन सुद्ध असंग;
लषहु लछनातें सुमति, भाग त्याग यह अंग. ४२

टीका.- हे अंग, हे प्रिय, तत्पदका वाच्य ईस्वर, औ त्वंपदका वाच्य जीव, तिन्हके आपसमैं विरोधी धर्म त्यागिके, सुद्ध असंग चेतन लछनातैं लषहू. यह भागत्याग लछना है. या स्थानमैं यह सिद्धांत है:- ईस्वर जीवका स्वरूप अनेक प्रकारका अद्वैत ग्रंथनमैं कह्या है. विवरन ग्रंथमैं अज्ञानमैं प्रतिबिंब जिव औ बिंब ईस्वर कह्या है. औ विद्यारन्यके मतमें सुद्धसत्वगुन सहित मायामैं आभास ईस्वर, औ मलिन सत्वगुन सहित, जो अंतःकरनका उपादान कारन अविद्याका अंस, तामैं आभास जीव कह्या है.

४३९ यद्यपि पंचदसी ग्रंथमैं विद्यारन्य स्वामीनैं, अंतःकरनमै आभास जीव कह्या है; तथापि अंतःकरनके आभासकूं जीव मानैं तौ सुषुप्तिमैं अंतःकरन रहै नहीं; यातैं जीवका बी अभाव हुवा चाहिये. औ प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमैं रहै है; यातैं विद्यारन्य स्वा-

मीका यह अभिप्राय है:- अंतःकरनरूप परिनामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंस, तामैं आभास **जीव** है. सो अविद्याका अंस सुषुप्तिमैं बी रहै है; यातै प्राज्ञका अभाव नहीं. औ केवल आभासही जीव ईस्वर नहीं है; किंतु मायाका अधिष्ठान चेतन, औ माया सहित आभास **ईस्वर** है. औ अविद्या अंसका अधिष्ठान चेतन, औ अविद्याके अंस सहित आभास **जीव** है. ईस्वरकी उपाधिमैं सुद्ध सत्वगुन है, यातैं ईस्वरमैं सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म हैं. औ जीवकी उपाधिमै, मलिन सत्वगुन है; यातैं जीवमैं अल्प सक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं. याकूं **आभासवाद** कहै हैं. औ

४४० विवरनके मतमैं **यद्यपि** जीव ईस्वर दोनूंकी उपाधि एकही अज्ञान है; यातैं दोनूं अल्पज्ञ हुये चाहिये. **तथापि** जा उपाधिमैं प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै है:- प्रतिबिंबमैं अपनै दोष करै है; बिंबमै नहीं. जैसे दर्पनरूप उपाधिमैं मुषका प्रतिबिंब होवै है. ग्रीवामैं स्थित मुष बिंब है; तहां दर्पनरूप उपाधिके स्याम, पीत लघुतादिक, अनेक दोष प्रतिबिंबमैं भान होवै हैं. औ ग्रीवामैं स्थित जो बिंब है, तामैं भान होवै नहीं. तैसे दर्पन स्थानी जो अज्ञान तिस विषै प्रतिबिंबरूप जीवमैं,अज्ञान कृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं; औ बिंबरूप ईस्वरमैं नहीं. यातै ईस्वरमैं सर्वज्ञतादिक है; औ जीवमैं अल्पज्ञतादिक हैं.

४४१ **आभास औ प्रतिबिंबका इतना भेद है:**-आभास पक्षमैं तौ आभास मिथ्या है. औ प्रतिबिंबवादमें प्रतिबिंब मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है. काहेतैं, **प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत है:**- दर्पनमैं जो मुषका प्रतिबिंब है सो मुषकी छाया नहीं. काहेतैं, **छायाका यह स्वभाव है:**- जिस दिसामैं छायावानके मुष औ पृष्ठ होवैं, उस दिसामैं छायाके मुष औ पृष्ठ होवै हैं. औ दर्पनकै

प्रतिबिंबके मुष पीठि बिंबसैं विपरीत होवै है. यातैं दर्पनमैं छाया-रूप प्रतिबिंब नहीं. किंतु दर्पनकूं विषय करनैं वास्तै, नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरनकी वृत्ति; सो दर्पनकूं विषय करिके, तत्काल ही दर्पनसैं निवृत्त होयकै, ग्रीवामैं स्थित मुषकूं विषय करै है. जैसे भ्रमनके वेगसैं अलातका चक्र भान होवै है; औ चक्र नहीं है. तैसे दर्पन औ मुषके विषय करनैमैं, वृत्तिके वेगतैं मुष दर्पनमैं स्थित भान होवै है. औ मुष ग्रीवा विषैही स्थित है, दर्पनमैं नहीं; औ छाया बी नहीं. वृत्तिके वेगसैं जो दर्पनमैं मुषकी प्रतीति सोई **प्रतिबिंब** है. इस रीतिसैं दर्पनरूप उपाधिके संबंधसैं, ग्रीवामैं स्थित मुषही बिंबरूप औ प्रतिबिंबरूप भान होवै है. औ विचारसैं बिंब प्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसैं अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसैं, असंग चेतनमैं बिंब स्थानी ईश्वरभाव; औ प्रतिबिंब स्थानी जीव भाव प्रतीत होवै हैं. औ विचार दृष्टिसैं ईश्वरता जीवता है नहीं. अज्ञानतैं जो चेतनमैं जीव भावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमैं **प्रतिबिंब** कहिये है. यातै बिंबपना औ प्रतिबिंबपना तौ मिथ्या है; औ स्वरूपसैं बिंब प्रतिबिंब सत्य है. काहेतैं, बिंब प्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांत विषै तौ मुष है; औ दृष्टांत विषै चेतन है. सो मुष औ चेतन सत्य है. इस रीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वरूपतैं सत्य होनैतैं सत्य कहै हैं. औ आभासका स्वरूप छाया मानै हैं यातै मिथ्या है. यह आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है. औ.

४४२ कितने ग्रंथनमैं सुद्ध सत्वगुन सहित माया विसिष्ट चेतन, **ईश्वर** कहिये है. औ मलिन सत्वगुन सहित अंतःकरनका उपादान, अविद्याके अंस विसिष्ट चेतन **जीव** कहिये है. याकूं **अवच्छेद वाद** कहैं है. सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैत आत्माके जनावनेकूं है. यातैं **जौनसी प्रक्रियानैं जिज्ञासुकूं बोध होवै सोई ताकूं**

समीचीन है. तथापि वाक्यवृत्ति औ उपदेस **सहस्री**में, भाष्यकारने आभासवादही लिख्या है. यातैं आभासवादही मुख्य **है.** ताकी रीतिसैं माया औ मायामैं आभास, औ मायाका अधिष्ठान जो चेतन, सो सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म सहित **ईस्वर** है; सोई **तत्पदका वाच्य** है. औ व्यष्टि अविद्या, तामैं आभास, औ ताका अधिष्ठान चेतन, अल्पसक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म सहित **जीव** है; सो **त्वंपदका वाच्य** है. तिन्ह दोनूंकी तत्वमसि वाक्यने एकता बोधन करी; औ बनै नहीं. यातैं आभास सहित माया औ मायाकृत सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म; इतने वाच्य भागकूं त्यागिके, चेतन भागविषै तत्पदकी भागत्याग लछना. तैसै आभास सहित अविद्या अंस, औ अविद्याकृत अल्पसक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म, जो **त्वंपदका वाच्य** भाग, ताकूं त्यागिके चेतन भागमैं त्वंपदकी भागत्याग लछना. इसरीतिसैं.

४४३ भागत्याग लछनातैं, ईस्वर औ जीवके **स्वरूपमैं** लछ्य जो चेतन भाग; तिनकी एकता **तत्वमसि महावाक्य** बोधन करै है. तैसै **"अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्यमैं आत्मापदका जीव वाच्य** है. औ **ब्रह्मपदका ईस्वर वाच्य है.** ब्रह्मपदका सुद्ध वाच्य नहीं. ईस्वरही वाच्य है; यह चतुर्थ तरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं. पूर्वकी नांई दोनूं पदनकी लछना है. लछ्यअर्थ परोछ नहीं; इस अर्थकूं जनावनेकूं अयं पद है. **अयं** कहिये सबकै अपरोछ आत्मा ब्रह्म है; यह वाक्यका अर्थ है.**"अहं ब्रह्मास्मि" इस महा वाक्यमें, अहं पदका जीव वाच्य** है. औ **ब्रह्मपदका ईस वाच्य** है. दोनो पदनकी चेतन भागमैं लछना. **मै ब्रह्महूं**, यह वाक्यका अर्थ है. **"प्रज्ञानमानंद ब्रह्म," इस महावाक्यमैं, प्रज्ञान पदका जीव वाच्य** है. **ब्रह्मपदका ईस** है; पूर्वकी नांई लछना. लछ्य सो ब्रह्मात्म

सो आनंद गुनवाला नहीं; किंतु आनंदरूप है; इस अर्थके जनावनेकूं **आनंद** पद है. **आत्मासैं अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है**; यह वाक्यका अर्थ है. जैसे महावाक्यनमैं भाग त्याग लछना है; तैसें अन्य वाक्यनमैं सत्य, ज्ञान, आनंद पद बी, सुद्ध ब्रह्मकूं भाग त्याग लछनासैंही बोधन करै है; सक्तिसैं नहीं. काहेतैं सुद्ध ब्रह्म किसी पदका वाच्य नहीं; **यह सिद्धांत है.** यातैं सारे पद विसिष्टके वाचक हैं, औ सुद्धके लछक हैं. मायाकी आपेछिक सत्यता, औ चेतनकी निरपेछिक सत्यता मिली हुई **सत्य पदका वाच्य** है. निरपेछिक **सत्य लछ** है. बुद्धिवृत्ति रूप ज्ञान औ स्वयंप्रकास ज्ञान, दोनूं मिले तौ **ज्ञान पदका वाच्य**; औ स्वयंप्रकास भाग लछ. विषय संबंध जन्य सुषाकार सात्विक अंतःकरनकी वृत्ति, औ परम प्रेमका आस्पद स्वरूप सुष; दोनूं मिले **आनंद पदका वाच्य.** औ वृत्ति भागकूं त्यागिके स्वरूप भाग लछ. इस रीतिसैं सर्व पदनकी सुद्धमैं लछना; संछेप सारीरकमैं प्रतिपादन करी है.

४४४ **अथ उक्त अर्थ संग्रह.**

कवित्व.

गंगामैं ग्राम जहति लछना या ठौर लषि,
सोन धावै लछना अजहति जनाईये;
सोई यह वस्तु इहां लछना है भाग त्याग,
दूजो नाम जहति अजहति सुनाईये;
तत्वमसि आदि महावाक्यनमैं भाग त्याग,
लछना न जहति अजहति बताईये;
ब्रह्म काहु पदको न वाच्य यूं बषाने वेद,

यातें सर्व पदनमें रीति यूं लषाईये. ४३
मायामांहि सत्यता जु और भांति भाषियत,
ब्रह्ममांहि सत्यता सु और भांति भाषिये;
दोउ मिली सत्य पद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्म मांहि सत्यता सु लछ्य भाग राषिये;
बुद्धि वृत्ति संवित है मिले ज्ञान पद वाच्य,
संवित स्वरूप लछ्य बुद्धि वृत्ति नाषिये;
आत्म औ विषैको सुष वाच्य पद आनंदको,
विषै सुष त्यागि आत्म सुष लछ आषिये. ४४

४४९ माहावाक्यनमें विरोध दूरि करनेकूं, दोनूं पद-नमें लछना अंगीकार करी. तहां कोई कहै हैः- एक पदमें लछना अंगीकार कियेसेंही विरोध दूरि होवे है; दोय पदमें लछना माननेका प्रयोजन नहीं.

दोहा.

एकहि पदमें लछना, मानैं नहीं विरोध;
दोय पदनमें लछना, निष्फल कहत सुबोध. ४५

टीका.—सुबोध कहिये सुज्ञ, दोय पदनमें लछना निष्फल कहत हैं. काहेतें एकही पदमें लछना मानेतें, विरोध दूरि होय जावै है. याका भाव यह हैः- यद्यपि सर्वज्ञतादि विसिष्टकी अल्पज्ञतादि विसिष्टके साथि, एकता नाहि बनै है; तथापि एक पदका लछ्य जो सुद्ध, ताकी विसिष्टके साथि एकता बनै है. दृष्टांत

जैसे "सूद्र मनुष्य ब्राह्मन है." इस रीतिसें सूद्रत्व धर्म विसिष्ट मनुष्यकी, ब्राह्मनत्व धर्म विसिष्टके साथि, एकता कहना विरुद्ध है. औ "मनुष्य ब्राह्मन है." इस रीतिसें सूद्रत्व धर्म रहित सुद्ध मनुष्यकूं ब्राह्मनत्व विसिष्टता कहनेमैं विरोध नहीं. तैसे अल्पज्ञतादि धर्म विसिष्ट चेतनकी, औ सर्वज्ञतादि धर्म विसिष्टकी एकता विरुद्ध बी है; परंतु जीव वाचक पद औ ईस वाचक पदकी, चेतनमैं लछना करिके चेतन मात्रकी, सर्वज्ञतादि धर्म विसिष्टके साथि; वा अल्पज्ञतादि विसिष्टके साथि; एकता कहनेमैं विरोध नहीं. यातैं दो पदमैं लछना माननेमैं कोई जुक्ति नहीं.

४४६ समाधान.

कवित्व.

लछना जो कहै एक पद मांहि ताकूं यह,
पूछि दोय पदनमैं कौनसेमैं लछना;
प्रथम वा द्वितीयमैं कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यनको होयगो विरोध मूढ लछना;
तीनि वाक्य मध्य जीव वाचक प्रथम पद,
तत्वमसि यामैं आदि पद ईस लछना;
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै यातैं,
भाषत द्वै पदनमैं लछना सुलछना. ४६

टीका— जो एक पदमैं लछना अंगीकार करै, ताकूं यह पूछि:— दोनूं पदनमैंसे कौनसे पदमैं लछना है? जो ऐसै कहै, सर्व महावाक्यनके प्रथम पदमैं लछना है, द्वितीयमैं नहीं. यद्वा, द्वितीय पदमैं लछना सर्व वाक्यनमैं है; प्रथममैं नहीं. ताकूं है

सिष्य यह भाषिः— हे मूढ लछन, प्रथम वा द्वितीय पदमैं, जो नेमतें लछना सर्व वाक्यनमैं मानैं; तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. काहेतैं, **तीन वाक्य मध्य** कहिये, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानमानंद ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म; इन तीन वाक्यनमैं जीव वाचक पद **प्रथम** कहिये पूर्व है. औ तत्वमसि, या वाक्यमैं **आदि पद** कहिये, प्रथम पद **ईस लछन** कहिये, ईस्वरका बोधक है. जो पूर्व पदमैं लछना सारै मानैं तौ, तीनि वाक्यनका तौ यह अर्थ होवैगाः— चेतन सर्वज्ञतादि विसिष्ट असं सारी ईस्वररूप है; औ तत्वमसि वाक्य-का यह अर्थ होवैगाः— चेतन अल्पज्ञतादि विसिष्ट संसारी जीव रूप है. काहेतैं, तीनि वाक्यनमैं पूर्व जीव वाचक पद है, ताका चेतन भागमें लछना, औ द्वितीय जो ईस्वर वाचक पद; ताके वाच्यका ग्रहन. औ तत्वमसिमैं आदि ईस वाचक पद, ताकी चेतन भागमें लछना. औ द्वितिय जीव वाचक पद, ताके वाच्य-का ग्रहन. इस रीतिसें लछनाका नेम करै, तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. तैसें सर्व वाक्यनके **द्वितीय पद** कहिये, आगिले पदमै लछना मानैं; तौ तीनी वाक्यनमैं पूर्व जो जीव पद ताके वाच्यका ग्रहन; औ उत्तर ईस पदकी चेतन भागमैं लछना. यातैं अल्पज्ञतादि धर्म विशिष्ट चेतन है; यह तीनि वाक्यनका अर्थ होवैगा. औ तत्वमसिमैं आदि ईस पद ताके वाच्यका ग्रहन; औ द्वितीय जीव पदकी चेतन भागमैं लछना. यातैं सर्वज्ञतादि धर्म विसिष्ट चेतन है; यह तत्वमसिका अर्थ होनैतें, परस्पर विरोधही होवैगा. इस रीतिसे प्रथम वा द्वितीय पदमैं, लछना का नेम बनै नहीं. यातैं **सुलछना** कहिये, सुंदरि है लछन जिन-के, ते आचार्य द्वै पदनमैं लछना भाषत है. और

४४७ **जो ऐसें कहै,** प्रथम पद वा द्वितीय पदमैं **लछना है.**

यह नियम नहीं करै है; किंतु सर्व वाक्यनमैं जो ईस्वर वाचक पद, तामैं लछना है, यह नियम करै है. सो ईस्वर वाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै; यातैं वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं. ताका

समाधान.

दोहा.

ईस पदहि लछक कहै, सब अनर्थकी षानि;
ज्ञेय होय श्रुति वाक्यमैं, व्है पुरुषारथ हानि. ४७

टीका. जो ईस्वर वाचक पदकूंही लछक कहै, तौ सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्म मरनसैं आदिलेके, जो दुषके साधन तिनकी **षानि** जो **संसारी जीव**; सो श्रुति वाक्यनमैं ज्ञेय होवै. यातैं **पुरुषारथ** कहिये मोछकी हानि होवैगी. याका भाव यह है:– जो ईस्वर वाचक पदमैंही लछना मानै, तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:– तत्पदका लछ्य जो अद्वय असंग माया मल रहित चेतन, सो काम कर्म अविद्याके आधीन, अल्पज्ञ, अल्पसक्ति, परिछिन्न, पुन्य पाप, सुष दुष, जन्म मरन, गमन आगमन, आदिक अनंत अनर्थका पात्र है. जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै, तौ जिज्ञासुकूं, इसी अर्थविषै बुद्धिकी स्थिति करनी होवैगी. औ जामैं बुद्धिकी स्थिति होवै है; प्रान वियोगसैं अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवै है. यातैं वेद वाक्यनकै विचारसैं, मुमुछुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी; आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी. यातै "ईश्वर वाचक पदमैं लछना है, जीव वाचकमैं नहीं." यह नियम असंगत है. और

४४८ जो ऐसी कहै:– सर्व महावाक्यनमैं जो जीव वाचक प

द है, तिन्हमै लछना है; ईस वाचकमैं नही. यातै पुरुषार्थ की हानि नहीं. काहेतैं जीव वाचक पदमैं लछना मानै, तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:— जो त्वंपदका लछ्य चेतन भाग, सो सर्वसक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, जन्मादिक बंध रहित, ईश्वर रूप है. इस अर्थमै बुद्धिकी स्थितिसैं जिज्ञासूकूं अति उत्तम ईश्वर भावकीही प्राप्ति होवैगी. यातैं जीव वाचक पदमैं लछनाका नियम करै है. ताका.

समाधान.

दोहा.

साछी त्वंपद लछ्य कहुं, कैसै ईस स्वरूप?
यातैं दो पद लछना, भाषत जति वर भूप. ४८

टीका. त्वंपदका लछ्य जो साछी सो ईस स्वरूप कैसै? यह कहू. अर्थ यह, त्वंपदके लछ्यकूं ईस्वररूप कहना बनै नहीं. यातैं जती जो संन्यासी तिनमैं वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनूं पदमैं लछना भाषत हैं. याका भाव यह है:- जो जीव वाचक पदमैं लछना मानैं, औ ईस वाचकमैं नहीं; ताकूं यह पूछे हैं:- त्वंपदकी लछना व्यापक चेतनमैं है, अथवा जितने देसमैं जीवकी उपाधि है; उतने देसमैं स्थित जो साछी चेतन, तामैं त्वंपदकी लछना है? जो व्यापक चेतनमैं त्वंपदकी लछना कहै, तौ बनै नहीं. काहेतैं, **वाच्यअर्थमैं जाका प्रवेस होवै; तामैं भागत्याग लछना होवे है.** औ वाच्यमैं प्रवेस व्यापक चेतनका नहीं; किंतु जीवपनेकी उपाधि देसमैं स्थित, जो साछी चेतन, ताका वाच्यमैं प्रवेस है. यातैं साछी चेतनमैंही त्वंपदकी लछना है; व्यापक चेतनमैं नहीं. ता साछी चेतनमैं सर्वके हृदयका प्रेरन औ

सर्व प्रपंचमैं व्यापकतादिक ईस्वरके धर्मनका असंभव है. औ साक्षी सदा अपरोक्ष है. ताकैं विषै परोक्षता ईश्वर धर्मका अत्यंत असंभव है. औ माया रहितकूं माया विसिष्ट कहना असंभव है. जैसैं दंड रहितकूं दंडी कहना; औ संस्कार रहित द्विज बालककूं संस्कार विसिष्ट कहना असंभव है. यातैं साक्षी चेतनका ईस्वरसैं अभेद कहैं; तौ महावाक्य असंभव अर्थके प्रतिपादक होवैंगे. औ.

४४९ दोनूं पदमैं लक्षना मानैं, तो दोष नहीं; काहेतैं, जो एकताके विरोधी धर्म हैं; तिन्ह सबकूं त्यागिके दोनूं पदनमैं, प्रकास रूप चेतन जो वाच्य भाग, ता सर्व धर्म रहित चेतनमैं दोनूं पदनकी लक्षना. उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनतैं चेतनका भेद है; स्वरूपसैं नहीं. उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनका त्याग कियेतैं, दोनूं पदनके लक्ष्य चेतनकी एकता संभवै है. जैसैं घटाकासमैं घट दृष्टि त्यागिके मठ विसिष्ट आकासतैं एकता बनै नहीं. औ मठ दृष्टि त्याग कीएतैं एकता बनै है.

दोहा.

तत् त्वं त्वं तत् रीति यह, सब वाक्यनमैं जानि;
जातैं होय परोछता, परिछिन्नता हानि. ४९

टीका. सर्व वाक्यनमैं तत् त्वं त्वं तत्, इस रीतिसैं **ओतप्रोत भावकी** रीति जानि. जा ओतप्रोतभाव कियेतैं वाक्यके अर्थमैं, परोक्ष औ परिछिन्नता भ्रांतिकी हानी होवै है.

तत्त्वं, या कहनेतैं, तत्पदके अर्थका त्वंपद अर्थसैं अभेद कह्या. सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है; यातैं परोक्षता भ्रांतिकी हानि. औ **त्वंतत्,** या कहनेतैं त्वंपदके अर्थका, त-

त्पदके अर्थसैं अभेद कह्या. सो तत्पदका अर्थ व्यापक है; यातैं परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि. तैसे अहं ब्रह्म, प्रज्ञान ब्रह्म, आत्मा ब्रह्म; यातैं परिच्छिन्नता हानि. औ ब्रह्म अहं, ब्रह्म प्रज्ञान, ब्रह्म आत्मा, यातैं परोक्षता हानि.

दोहा.

जीव ब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन;
सिष्य तहां पहिचानिये, भागत्यागकी सैन. ५०

टीका. हे सिष्य, जो वेद बैन औ स्मृति बैन, जीव ब्रह्मकी एकता कहै; तहां सारे भागत्यागकी सैन पहिचानिये.

४५०

दोहा.

अस सिष गुरु उपदेस सुनि, भौ ततकाल निहाल;
भलै विचारै याहि जो, ताके नसत जंजाल. ५१

सोरठा.

मिथ्या गुरु सुर बानि, कियो ग्रंथ उपदेस यह;
सुनत करत तम हानि, यह ताकी भाषा करी. ५२

दोहा.

अग्रध देवकूं स्वप्नमैं, यह किय गुरु उपदेस;
नस्यो न तहु दुष मूल वह, मिथ्या बनको वेस. ५३

वेश कहिये स्वरूप. अन्य अर्थ स्पष्ट.

४५१

अग्रध उवाच.

चौपाई.

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो,
अर्थ सहित सो मो हिय आयो;
बन दुष मूल तऊ मुहि भासै,
कहु उपाय जातै यह नासै. ५४

४५२ बोले गुरु सुनि सिषकी बानि,
सुनि सिष कहैं जातैं बन हानी;
अस उपाय को और नहीं है,
बनका नासक हेतु यही है. ५५

महावाक्यको अर्थ विचारहु,
मैं अग्रध यूं टेरि पुकारहू;
सुनि पुनि वाक्य विचारि चेला,
अहं अग्रध यह दीनो हेला. ५६

निद्रा गई नैन परकासे,
बन गुरु ग्रंथ सबै वह नासै;
भयो सुषी बन दुष विसरायो,
हुतो अग्रध निज रूप सु पायो. ५७

४५३

दोहा.

अग्रध देवमैं नींदतैं, भौ बन दुष जिहि रीति;

आतममैं अज्ञानतैं, त्यूं जग दुष परतीति. ५८
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार;
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार. ५९
लछ्य अर्थ लषि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल;
निरावर्न सो आप है; दादू दीन दयाल. ६०

इतिश्री गुरु वेदादि साधन मिथ्या वर्नन नाम षष्ठस्तरंगः

समाप्तः ६

श्रीगणेशायनमः

अथ श्री विचार सागरे

सप्तमस्तरंगः प्रारंभः

अथ जीवनमुक्ति विदेहमुक्ति वर्ननं

४५४ दोहा.

उत्तम मध्य कनिष्ट तिहु, सुनि अस गुरु उपदेस;
ब्रह्म आत्म उत्तम लष्यो, रह्यो न संसै लेस. १

टीका. यद्यपि गुरुनैं उपदेस तीनूंकूं साथिही किया, तथापि गुरु उपदेसतैं साछात्कार उत्तम तत्वदृष्टिकूं हुवा.

दोहा.

भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं, सूको पीपर पात;
सेष कर्म प्रारब्धतैं, क्रिया करत दरसात. २
कबहुक चढि रथ बाजि गज, बाग बगीचे देषि;
नग्न पाद पुनि एकले, फिर आवत तिंहि लेषि. ३
विविध वेष सज्या सयन, उत्तम भोजन भोग;
कबहुक अनसन गिरिगुहा, रजनि सिला संयोग ४
कारि प्रनाम पूजन करत, कहु जन लाष हजार;
उभै लोकतैं भ्रष्ट लषि, कहत कामि धिक्कार. ५

जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत;
दोष दृष्टि तिहि जो लषै, ताहि पाप फल देत. ६
ऐसे ताके देहको, विना नियम व्यवहार;
कबहु न भ्रम संदेह व्है, लह्यो तत्व निर्धार. ७
नहि ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेद भ्रम नास;
उपज्यो वेद प्रमानतैं, अद्वय ब्रह्म प्रकास. ८

४५५ ज्ञानीके व्यवहारमें, कोऊ कहत है नेम,
त्रिपुटि तजै दुष हेतु लषि, लहै समाधि सप्रेम. ९
व्है किंचित व्यवहार जो, भिछासन जल पान;
भूलै नांहि समाधि सुष, व्है त्रिपुटीतैं ग्लान. १०
लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इह हेत;
जो समाधि सुष तजि भ्रमत, नर कूकर षर प्रेत. ११
गौडपाद मुनि कारिका, लिष्यो समाधि प्रकार;
ज्ञानी तजी विछेप यूं, लहै सकल सुप सार. १२
अष्ट अंग बिन होत नाहि, सो समाधि सुष मूल;
अष्ट अंग ते अब सुनो, जे समाधि अनुकूल. १३
पांच पांच यम नियम लषि, आसन बहुत प्रकार;
प्रानायाम अनेक विध, प्रत्याहार विचार. १४
छठो धारना ध्यान पुनि, अरु सविकल्प समाधि;
अष्ट अंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि. १५

सुनि समाधि कर्तव्यता, तत्वदृष्टि हसि देत;
उत्तर कछु भाषत नहीं, ऌषि तिहि बकत सप्रेत. १६

टीका. जैसैं **सप्रेत** कहिये प्रेत सहित भूतके आवेसवाला बकै, तैसैं अन्यथा कहता सुनिके तत्वदृष्टि हसैं है. अन्य दोहाका अछर अर्थ स्पष्ट है, भाव यह है:—**ज्ञानवानके सरीर व्यवहारका नियम नहीं.** काहेतैं, ज्ञानीके व्यवहारमैं, अज्ञान औ ताका कार्य भेद भ्रांति; तथा भेद भ्रमके कार्य, राग द्वेष तौ हैं नहीं; किंतु ज्ञानवानके बी प्रारब्ध कर्म सेष रहै हैं; सोई ताके व्यवहारमैं निमित्त है. सो प्रारब्ध कर्म पुरुष भेदसैं नाना प्रकारका होवै है. यातैं ज्ञानीके प्रारब्धकर्म जन्य व्यवहारका नियम नहीं, **यह सिद्धांत पछ है.**

कोई ऐसैं कहै है:— ज्ञानीके व्यवहारमैं और किसी कर्मका तो नियम नहीं है; परंतु ज्ञानवानकै निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तौ देह स्थितके हेतु, भिछा असन कौपिन आछादन मात्र, ग्रहनमैं प्रवृति होवै है; अन्य प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानकी उत्पत्तिसैं प्रथम जिज्ञासा कालमैं, विषयनमैं दोष दृष्टिसैं वैराग्य होवै है. सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी, दोष दृष्टितैं तथा विषयनमैं मिथ्या बुद्धिसैं होवै है. अपरोछ रूपतैं मिथ्या जाने पदार्थनमें सत्यबुद्धि होवै नहीं. दोष दृष्टितैं राग होवै नहीं. औ प्रवृत्ति रागतैं होवै है. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

सरीर निर्वाहक भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति तौ, रागतैं बिना प्रारब्ध कर्मतैं संभवै है. **कर्म तीनि प्रकारके हैं.** संचित, आगामी, औ प्रारब्ध. तिनमें भूत सरीरनमैं किये कर्म, फलारंभ रहित **संचित** कहिये है. भविष्यत कर्म **आगामी** कहिये है. भूत सरीरन

मैं किया वर्तमान सरीरका हेतु कर्म, **प्रारब्ध** कहिये है. तिनमैं संचित कर्मका ज्ञानतैं नास होवै है. ज्ञानवानकूं आत्मामैं कर्तृत्व भ्रांति नहीं; यातैं ताकूं आगामी कर्मका संभव नहीं. औ जिस प्रारब्ध कर्मनैं ज्ञानीके सरीरका आरंभ किया है; सोई प्रारब्ध कर्म सरीर स्थितिके हेतु भिक्षादिकनमैं प्रवृति करवावै है. प्रारब्ध कर्मका भोग बिना नास होवै नहीं. और

कहूं ऐसा लिख्या है:– संचित आगामी कर्मकी नांई, ज्ञानीके प्रारब्धकर्म बी रहै नहीं. यातैं भोजनादिक प्रवृत्ति बी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. ताका यह अभिप्राय है:– ज्ञानीकी दृष्टितैं आत्मामैं कर्म औ ताके फलका संबंध नहीं. यातैं आत्मामैं सर्व कर्मका निषेध अभिप्रायतैं; प्रारब्धका निषेध किया है. औ ज्ञानतैं पूर्व कीये प्रारब्धका, ज्ञानीके सरीरकूं भोग होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध नहीं; काहेतैं, **सूत्रकारनैं यह लिख्या है:–** ज्ञानीके संचित कर्मका ज्ञानतैं नास होवै है; आगामीका संबंध होवै नहीं, प्रारब्धका भोगतैं नास होवै है. यातैं प्रारब्धके बलतैं सरीर निर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवै है; अधिक नहीं. परंतु

४९६ कर्म नाना प्रकारके हैं. जहां एक कर्म नाना सरीरका आरंभक होवै; ऐसैं कर्मतैं रचित प्रथम सरीरमैं जाकूं ज्ञान होवै; तहां ज्ञानवानकूं अन्य सरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. काहेतैं फलका जानैं आरंभ किया है, सो **प्रारब्ध** कहिये है; ताका भोग विना नास होवै नहीं. अनेक सरीरका हेतु कर्म एक है, तानै प्रथम सरीर जो उपजाया तामैं ज्ञान हुवा, ता कर्मके फल ज्ञानतैं अनंतर और सरीर सेष रहै हैं; यातैं ज्ञानवानकूं बी अन्य सरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. और

४९७ जो ऐसैं कहै:– प्रारब्ध कर्मका फल जितने सरीर होवैं,

उतने सरीर ज्ञानीकूं बी होवैं है. प्रारब्धके भोगतैं अधिक होवे नहीं. यातैं ज्ञान बी सफल होवे है. **सो बनैं नहीं.** काहेतैं, **यह वेदका ढंढोरा है.** "ज्ञानवानके प्रान अन्य लोकमैं, वा इस लोकके अन्य सरीरमैं, गमन नहीं करते." किंतु, तिसी स्थानमैं अंत:करन इंद्रिय सहित लीन होवे है. औ प्रान गमन बिना अन्य सरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं. यातैं "ज्ञानवानकूं प्रारब्ध सेषतैं, और सरीर होवे है" यह कहनां तो संभवै नहीं. किंतु.

यह समाधान है:— जहां अनेक सरीरका आरंभक एक कर्म होवै; तहां अंत सरीरमैंही ज्ञान होवे है; पूर्व सरीरमैं ज्ञान होवे नहीं. काहेतैं, अनेक सरीरका आरंभक, प्रारब्धही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसैं विषयनमैं आसक्ति, बुद्धि मंदता, भेदवादि वचनमैं विस्वास, **ज्ञानके प्रतिबंधक है.** तैसैं विलछन प्रारब्ध बी ज्ञानका प्रतिबंधक है. औ ज्ञानके प्रतिबंधक होते, जहां ज्ञान साधन श्रवनादिक होवैं; वहां प्रतिबंधक दूरि हुयेतैं, प्रथम जन्म विषै किये जो श्रवनादिक हैं; तिनतैंही अन्य सरीरमैं ज्ञान होवे है. जैसैं **वामदेवनैं** पूर्व जन्म विषे श्रवनादिक किये, तब प्रारब्धका फल एक सरीर सेष होते ज्ञान नहीं हुवा. किंतु श्रवनादिक करते वर्तमान सरीरका पात होयके, अन्य सरीरकी प्राप्ति हुयेतैं, पूर्व जन्ममैं किये श्रवनादिकनतै गर्भविषै ज्ञान हुवा है. यातैं ज्ञानसैं अनंतर अन्य सरीरका संबंध होवे नहीं. औ वर्तमान सरीरको चेष्टा प्रारब्धसैं होवै है. तहां जितनी चेष्टा सरीरकी निर्वाहक है सोई होवै; रागजन्य अधिक चेष्टा होवै नहीं. यातैं सर्व प्रवृत्ति रहित ज्ञानी होवै है.

४६८ इस रीतिसैं निवृत्ति प्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है. याके विषै **ऐसी संका है.** मनका स्वभाव अति चंचल है. निरालंब

मनकी स्थिति होवै नहीं; किसी आलंबतैं मनकी स्थिति होवै है. यातैं मनके किसी आलंबकी प्राप्ति निमित्त बी, ज्ञानवानकी प्रवृत्ति होवै है. ताका

यह समाधान है. यद्यपि समाधिहीन पुरुषका मन चंचल होवै है; तथापि समाधितैं मनका विजय होवै है. औ ज्ञानवान समाधि विषे स्थित होवै है. यातैं ज्ञानवानकी प्रवृत्ति होवै नहीं. सो.

४५९ **समाधि इन अष्ट अंगनतैं होवै है:**— यम१, नियम २, आसन३, प्रानायाम४, प्रत्याहार५, धारना६, ध्यान७, सविकल्प समाधि ८, इन अष्ट अंगनतैं समाधि होवै है.

४६० अहिंसा१, सत्य२, अस्तेय३, ब्रह्मचर्य४, अपरिग्रह५, ये **पांच यम** कहे हैं.

४६१ सोच१, संतोष२, तप३, स्वाध्याय४, ईस्वर प्रानिधान ५ ये **पांच नियम** कहिये हैं. औ ज्ञान समुद्र ग्रंथमैं दस प्रकारके यम; औ दस प्रकारके नियम कहे हैं; सो पुरानकी रीतिसैं कहे हैं. वेदांत संप्रदायमैं यम नियमके पांच पांचही भेद हैं. और.

४६२ आसनके भेद अनंत हैं. तिनमैं स्वास्तिक १, गोमुष २, वीर ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुकुट ६, उत्तान ७, कुमैक ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चमतान ११, मयूर १२, सव १३, सिंह १४, भद्र १५, सिद्ध १६, इत्यादिक **चौऱ्यासी आसन** योग ग्रंथनमैं लिषे हैं; तिनके लछन बी तहां लिषे हैं. ग्रंथके विस्तार भयतैं, तथा वेदांतमैं अत्यंत उपयोगी नहीं, यातैं लछन लिषे नहीं. तिनमैं बी सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, ये चारि आसन प्रधान हैं. तिन चारिमैं बी,

सिद्ध आसन अत्यंत प्रधान है. ताका यह **लछन है:**— वाम

पादकी एडी गुदा मेंढूके मध्य सीवनमैं दाबिकै धरै; दाछिन पादकी एडी मेंढूके ऊपरि दाबिकै धरै; भ्रकुटीके अंतर दृष्टि राखै; स्थानुकी नांई सरल निश्चल सरीरतैं, स्थितिकूं **सिद्धासन** कहै हैं. और

कोई ऐसै कहै है:- वामपादकी एडी सीवनमैं नही लगावै; किंतु, मेंढूके ऊपरि लगावै; ताके ऊपरि दाछिन एडी धरै. औ पूर्वकी नांई यह सिद्धासनही अति प्रधान है. काहेतैं, कितने आसन तौ रोग नासके हेतु हैं. और कोई आसन ऐसे है, प्रानायामादिक समाधिके अंग जिनतै होवै हैं. औ सिद्धासन समाधिकालमैं होवै है; यातैं अति प्रधान है. याहीकूं **वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन** कहै हैं; आसन सिद्धिसैं अनंतर,

४६३ प्रानायाम बी करै; सो प्रानायाम बहुत प्रकारका है, **तथापि** संछेपतैं यह लछन है:- नासाके वाम छिद्र द्वारा इडा नाम नाडीतैं वायुकूं पूरन करै; ताकूं **पूरक** कहै हैं. दछिनैंवं त्यागै, ताकूं **रेचक** कहै हैं. सुषुमनातैं रोकै ताकूं **कुंभक** कहै हैं. इसरीतिसैं पूरक रेचक कुंभककूं **प्रानायाम** कहै हैं. सो दो प्रकारका है:- एक अगर्भ है, तैसै दूसरा सगर्भ है. प्रनवके उच्चारन रहित **प्रानायाम अगर्भ** कहिये है. प्रवनके उच्चारन सहित **प्रानायाम सगर्भ** कहिये है.

४६४ विषयनतैं सकल इंद्रियके निरोधकूं **प्रत्याहार** कहै हैं. अंतराय रहित अंतकरनकी स्थिति **धारना** कहिये हैं. अंतराय सहित अद्वितीय वस्तुविषै, अंतःकरनका प्रवाह **ध्यान** कहिये है.

४६५ व्युत्थान संस्कारनका तिरस्कार, औ निरोध संस्कारनकी प्रगटता हुवा, अंतःकरनका एकाग्रतारूप परिनाम **समाधि** कहिये है. सो **समाधि दो प्रकारकी है:-** एक सविकल्प समा-

धि है, दूसरी निर्विकल्प समाधि है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटी भान सहित अद्वितीय ब्रह्मविषै, अंत:करनकी वृत्तिकी स्थिति, **सविकल्प समाधि** कहिये है. सो **सविकल्प समाधि दो प्रकारकी है:**— एक तो सब्दानुविद्ध है, दूसरी सब्दाननुविद्ध है. "अहं ब्रह्मास्मि," इस सब्दकरिके **अनुविद्ध** कहिये सहित होवै, सो **सब्दानुविद्ध** कहिये. सब्द रहितकूं **सब्दाननुविद्ध** कहै है. त्रिपुटी भान रहित अखंड ब्रह्माकार, अंत:करन वृत्तिकी स्थिति **निर्विकल्प समाधि** कहिये है. इस रीतिसैं सविकल्प औ निर्विकल्प समाधिके दो भेद हैं. तिनमैं सविकल्प समाधि साधन है; औ निर्विकल्प समाधि फल है. साधनरूप जो सविकल्प समाधि है, ताकै विषै **यद्यपि** त्रिपूटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है; **तथापि** सो द्वैत इस रीतिसैं ब्रह्मरूप करिकै प्रतीत होवै है:—जैसैं मृत्तिका विकारनकूं मृत्तिकारूप जानैतैं विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीत बी होवै हैं, परंतु मृत्तिकारूपही प्रतीत होवै है. तैसैं सविकल्प समाधिमैं त्रिपुटी द्वैत ब्रह्मरूपही प्रतीत होवै है. निर्विकल्प समाधि विषै बी सविकल्प समाधिकी नांई, त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान बी होवै है, तौ बी त्रिपुटी द्वैतकी प्रतीति होवै नहीं. जैसै जलमैं लवनकूं गेरे तहां लवन विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसैं लवनकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं. इस रीतिसैं सविकल्प निर्विकल्पका यह भेद सिद्ध हुवा:— सविकल्प समाधिमैं ब्रह्मरूप करिकै द्वैतकी प्रतीति, औ निर्विकल्प समाधिमैं त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति. तैसैं

४६६ **सुषुप्तिसैं निर्विकल्पका यह भेद है:**— सुषुप्तिमैं अंत:करनकी ब्रह्माकार वृत्तिका अभाव होवै है. औ निर्विकल्प समाधिमैं ब्रह्माकार वृत्ति तौ अंत:करनकी होवै है,ताका अभाव हो-

वै नहीं. इस रीतिसैं सुषुप्तिमैं तौ वृत्तिसहित अंतःकरनका अभाव होवै है; औ निर्विकल्प समाधिमैं वृत्तिसहित अंतःकरन तो होवै है; ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्प समाधिविषै अंतःकरनकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होवै है; ताका हेतु सविकल्प समाधिका अभ्यास है. यातैं साधनरूप अष्ट अंगनमैं सविकल्प समाधिगिनी है. निर्विकल्प समाधि फल है. सो

४६७ **निर्विकल्प समाधि बी दो प्रकारकी होवै है:—** एक अद्वैत भावनारूप, औ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. अद्वैत ब्रह्माकार अंतःकरनकी अज्ञात वृत्तिसहित होवै, सो **अद्वैतभावनारूप निर्विकल्प समाधि** कहिये है. या समाधिमैं अभ्यास अधिक हुयेतैं, ब्रह्माकार वृत्ति बी शांत होय जावै है. यातैं वृत्ति रहितकूं **अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्प समाधि** कहै है. जैसैं तप्त लोहके ऊपरि जलकी बुंद गेरी, तप्त लोहमैं प्रवेस करै है, तैसैं अद्वैत भावनारूप समाधिके दृढ अभ्यासतैं; अत्यंत प्रकासमान ब्रह्मविषै वृत्तिका लय होवै है. सो अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्प समाधि ताका साधन है.

४६८ **अद्वैतावस्थानरूप समाधि, औ सुषुप्तिका इतना भेद है:—** सुषुप्तिमैं वृत्तिका लय अज्ञानमैं होवै है; अद्वैतावस्थान समाधिमैं वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकासमैं होवै है. औ सुषुप्तिका आनंद, अज्ञान आवृत है; औ समाधिमैं निरावर्न ब्रह्मानंदका भान होवै है. परंतु

४६९ **निर्विकल्प समाधिमैं चारि विघ्न होवै हैं.** सो निषेध करनेकूं कहिये है:— लय १ विक्षेप २ कषाय ३ रसास्वाद ४. आलस्य करिके अथवा निद्रा करिके, वृत्तिके अभावकूं लय कहै है. ता लयतैं सुषुप्ति समान अवस्था होवै है; ब्रह्मानंदका भान होवै

नहीं. यातैं निद्रा आलस्यादिक निमित्ततैं, जब वृत्तिका अपने उपादान अंतःकरनमैं लय होता दीषै, तब योगी सावधान होय के, निद्रादिकनकूं रोकिके वृत्तिकूं जगावै. इसरीतिसैं लयरूप विघ्नका विरोधि, जो निद्रा आलस्य निरोध सहित, वृत्तिका प्रवाहरूप जागरन; ताकूं गौडपादाचार्य **चित्त संबोधन** कहे है.

४७० विछेपका यह अर्थ है:- जैसैं बाज वा मिल्लीतैं डरिके चटिका ग्रहमैं प्रवेस करै; तब भय व्याकुलकूं गृहके अंतर, तत्काल स्थान दीषै नहीं; यातैं फेरि बाहरि आयके, भय अथवा मरन रूप षेदकूं प्राप्त होवै है. तैसैं अनात्म पदार्थनकूं दुष हेतु जानिके, अद्वैतानंदकूं विषय करने वास्तै अंतर्मुष हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अति सूछम है; यातैं किंचित काल वृत्तिकी स्थिति विना, तत्कालही चेतन स्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवै है; यातैं वृत्ति बहिर्मुष होवै है. इसरीतिसैं बहिर्मुष वृत्ति **विछेप** कहिये है. सो वृत्तिकी स्थिरता विना स्वरूप आनंदका अलाभ होवै है. यातैं अंतर्मुष वृत्ति हुयेतैं बी जितने काल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतने काल बाह्य पदार्थनमैं दोष भावनातैं, वृत्तिकूं बहिर्मुषता योगी होने देवै नहीं, किंतु वृत्तिकी अंतर मुषताही स्थापन करै. विछेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौड पादाचार्यने **सम** कह्या है.

४७१ रागादिक दोषकूं **कषाय** कहे हैं. यद्यपि रागादिकदो प्रकारके हैं:-एक बाह्य हैं, औ दूसरे अंतर हैं. पुत्र स्त्री धन आदिक जिनके विषय वर्तमान होवैं, सो **बाह्य** कहिये है. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो **आंतर** कहिये है. सो दोनूं प्रकारके रागादिक, समाधिमैं प्रवृत्त योगी विषे संभवै नहीं. काहेतैं.

चित्तकी पांच भूमिका हैं:— तिनमैं एक छेप नाम भूमिका है, दूजी मूढता, तीजी विछेप, चोथी एकाग्रता, पांचमी निरोध भूमिका है. लोक वासना, देह वासना, सास्त्र वासना, इसतें आदिलेके रजोगुनका परिनाम जो दृढ अनात्म वासना; तांकूं **छेप** कहै हैं. निद्रा आलस्यादिक तमोगुन परिनामकूं **मूढता** कहै हैं. ध्यानमैं प्रवृत्त चित्तकी कदाचित बाह्य प्रवृत्तिकूं **विछेप** कहै हैं. अंत:करनका अतीत परिनाम औ वर्तमान परिनाम,समानाकार होवै ताकूं **एकाग्रता** कहै हैं. यह एकाग्रताका लछन योग सूत्रमैं पतंजलिनै कह्या है; ताका भाव यह है:— समाधि कालमैं योगिके अंत:करनमैं एकाग्रता होवै है; सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं; किंतु जितने अंत:करनके परिनाम समाधि कालमैं होवै है. सो सारे ब्रह्मकूंही विषय करै हैं. यातें अंत:करनके अतीत परिनाम औ वर्तमान परिनाम, केवल ब्रह्माकार होनेतें समानाकार होवै हैं. ता एकाग्रताकी वृद्धिकूं **निरोध** कहै हैं. ये पांच भूमिका अंत:करनकी हैं. **भूमिका** नाम अवस्थाका है. ये

पांच भूमिका सहित अंत:करनके, ये क्रमतें नाम हैं:— छिप्त १ मूढ २ विछिप्त ३ एकाग्र ४ निरुद्ध ५, तिनमैं छिप्त औ मूढ अंत:करनका तौ समाधि विषै अधिकार नहीं. विछिप्त अंत:करनकूं अधिकार है. एकाग्र औ निरुद्ध अंत:करन समाधि कालमैं होवै है, यह योग ग्रंथनमैं कह्या है. रागादिक दोष सहित **अंत:करन छिप्तही** है. ता छिप्त अंत:करनका योगमैं अधिकार नहीं. यातैं रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं; यह कहना संभवै नहीं; **तथापि** यह समाधान है:- बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक है, सो तो छिप्त अंत:करनमैंही होवै हैं; ताका अधिकार बी नहीं. तौ बी अनेक जन्मविषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्य अंतर राग

द्वेष, तिनके सूक्ष्म संस्कार, विक्षेपादिक अंतःकरनमैं बी संभवै हैं. यातैं राग द्वेषका नाम कषाय नहीं; किंतु राग द्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहिये है. सो संसकार अंतःकरन रहै जितनै दूरि होवै नहीं. यातैं समाधि कालमैं बी अंतःकरनमैं रहै हैं; परंतु राग द्वेषादिकनके उद्भुत संस्कार समाधिके विरोधी हैं; अनुद्भुत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उद्भुत कहै हैं; अप्रगटकूं अनुद्भुत कहै हैं. समाधिमैं प्रवृत जोगीकूं, जो राग द्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै, तौ विषयनमैं दोष दर्सनतैं दाबि देवै. विक्षेप कषायका यह भेद है:— बाह्य विषयाकार वृत्तिकूं विक्षेप कहै हैं; औ योगीके प्रयत्नतैं जहां वृत्ति अंतर्मुख तौ होवै, परंतु रागादिकनके उद्भुत संस्कारनतैं, अंतर्मुख हुई वृत्ति बी रूकि जावै, ब्रह्मकूं विषय करै नहीं; वाकूं कषाय कहै हैं. विषयमैं दोष दर्सन सहित योगीके प्रयत्नतैं, कषाय विघ्नकी निवृत्ति होवै है.

४७२ रसास्वादका यह अर्थ है:— योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है, औ विक्षेपरूप दुखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहूं दुखकी निवृत्तिसैं बी आनंद होवै है. जैसै भारवाही पुरुषका भार उतरेसैं ताकूं आनंद होवै, तहां आनंदमैं और तौ कोई विषय हेतु है नहीं; किंतु भार जन्य दुखकी निवृत्तिसैं यह कहै है:— "मेरेकूं आनंद हुवा है." यातैं दुखकी निवृत्ति बी आनंदका हेतु है. तैसैं जोगीकूं समाधिमैं विक्षेप जन्य दुखकी निवृत्तिसैं, जो आनंद होवै ताका अनुभव रसास्वाद कहिये है. जो दुख निवृत्ति जन्य आनंदके अनुभवसैंही योगी अलंबुद्धि करि लेवै, तौ सकल उपाधि रहित ब्रह्मानंदाकार वृत्तिके अभावतैं, ताका अनुभव समाधिमैं होवै नहीं. यातैं दुख निवृत्ति जन्य आनंदकौ अनुभवरूप, रसास्वाद बी समाधिमैं विघ्न है. वांछितकी प्राप्ति विना बी

विरोधीकी निवृत्तिसैं, आनंदकी उत्पत्तिमैं **अन्यदृष्टांतः**—जैसैं पृथी-वीमैं निधी होवै, सो निधी अत्यंत विषधर सर्पतैं रक्षित होवै, तहां निधि प्राप्तिसैं प्रथम बी, निधि प्राप्तिका विरोधी जो सर्प है; ताकी निवृत्तिसैं आनंद होवै है. तहां सर्प निवृत्तिके आनंदमैं जो अलंबुद्धि करै, तौ उद्यम त्यागनैतै निधि प्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं. तैसै अद्वैत ब्रह्मरूप निधि है; देहादिक अनात्म पदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप सो सर्प है, विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्ति जन्य जो अवांतर आनंदरूपी, रसका अनुभवरूप आस्वादन है, सो निधिरूपी अद्वैत ब्रह्मकी प्राप्ति जन्य जो महाआनंद है; ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनैतैं **विघ्न** कहिये है. अथवा।

रसास्वादका यह औौर अर्थ है:— सविकल्प समाधिसैं उत्तर निर्विकल्प समाधि होवै है. औ सविकल्प समाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै है. यातैं सविकल्प समाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधि सहित होनैतैं; **सोपाधिक** कहिये है. औ निर्विकल्प समाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं, यातैं **निरुपाधिक आनंद** निर्विकल्प समाधिमैं होवै है. इसरीतीसैं सविकल्प समाधिसैं उत्तर निर्विकल्प समाधिके आरंभमैं बी, सविकल्प समाधिके सोपाधिक आनंदकूं त्यागि सकै नहीं; किंतु ताहीकूं अनुभव करै; सो **रसास्वाद** कहिये है. यातैं विक्षेप निवृत्ति जन्य आनंदका अनुभव, अथवा सविकल्पक समाधिके आनंदका अनुभव, **रसास्वाद** कहिये है. सो दोनूं प्रकारका रसास्वाद, निर्विकल्प समाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनैतैं, विघ्न है यातैं ताकूं बी त्यागै. ऐसैं निर्विकल्प समाधिमैं च्यारि विघ्न होवै हैं. सो च्यारू विघ्न समाधिके आरंभमैं होवै हैं; यातैं सावधानतासैं च्यारू विघ्नकूं रोकिके,

४७१ समाधिमैं परमानंदकूं विद्वान अनुभव करै है. ताही-

कूं जीवन्मुक्त कहै हैं. इस रीतिसैं ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवै है. जब प्रारब्ध बलतैं समाधिसैं उत्थान होवै, तब बी समाधिमैं जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है. यातैं-उत्थान कालमैं बी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं. औ ज्ञानवानकी जो भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति होवै है; सो केवल प्रारब्धसैं होवै है; परंतु भोजनादिक व्यवहारमैं ज्ञानी षेद मानिके प्रवृत होवै है. काहेतैं भोजनादिकनमैं. प्रवृत्ति बी समाधि सुषकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक सरीर निर्वाहकी प्रवृत्तिही षेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिक प्रवृत्ति संभवै नहीं. इस रीतिसैं बहुत आचार्योंनै यही पक्ष लिष्या है. औ जीवन्मुक्तिका आनंद बी बाह्य प्रवृत्तिमैं होवै नहीं, किंतु निवृत्तिमैं होवै है. यातैं जीवन्मुक्तिके सुषार्थी ज्ञानवानकी बाह्य प्रवृत्ति संभवै नहीं.

४७४ **तथापि** ज्ञानवानके निवृत्तिका बी नियम कहना संभवै नहीं. काहेतैं निवृत्तिमैं अथवा प्रवृत्तिमैं वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं; जातैं ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम होवै. यातैं ज्ञानी निरंकुस है; ताका व्यवहार प्रारब्धसैं होवै है. जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षा भोजन मात्र फलका हेतु है; ताकी भिक्षा भोजन मात्रमैं प्रवृत्ति होवै है. जाका प्रारब्ध अधिक भोगका हेतु होवै, ताकी अधिकमैं बी प्रवृत्ति होवै है. और.

जो ऐसैं कहैं:—जाका प्रारब्ध भिक्षा भोजन मात्रका हेतु होवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै ताकूं ज्ञान होवै नहीं. यातैं भिक्षा भोजनादिक व्यवहारतैं अधिक व्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं. जाकी अधिक प्रवृत्ति होवै सो ज्ञानी नहीं.

सो संका बनै नहीं. काहेतैं याज्ञवल्क्य, जनकादिक ज्ञानी कहै हैं.

सभा विजयतैं धन संग्रह व्यवहार याज्ञवल्क्यका, तथा राज्यपाल न व्यवहार जनकका कह्या है. औ वासिष्ठ ग्रंथमैं अनेक ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार, नाना प्रकारके कहे हैं. यातैं **ज्ञानिके प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं.** यद्यपि याज्ञवल्क्यनैं सभा विजयतैं उत्तर, विद्वत संन्यासरूप निवृत्तिही धारी है; औ प्रवृत्तिमैं ग्लानिके हेतु नाना दोष कहे हैं; **तथापि** याज्ञवल्क्यकूं विद्वत संन्यासतैं पूर्व ज्ञान नही था; यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तो प्रथम बी था, परंतु विद्वत संन्यासतैं पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं. यातैं जीवन्मुक्तिकै आनंद वासतै सर्व संग्रहका त्याग किया है. याज्ञवल्क्यका प्रारब्ध कुछि काल अधिक भोगका हेतु था, औ उत्तर काल न्यून भोगका हेतु था. यातैं प्रथम तो याज्ञवल्क्यकूं ग्लानि विना अधिक भोग, औ आगे ग्लानितैं सर्व भोगनका त्याग हुवा है. औ जनकका प्रारब्ध मरन पर्यंत राज्य पालनादिक स्मृद्धि भोगका हेतु हुवा है. यातैं सदा त्यागका अभावही हुवा है; भोगनमैं ग्लानि बी हुई नहीं. औ वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यून भोगका हेतु हुवा है. तिनकूं सदा भोगनमैं ग्लानितैं प्रवृत्तिका अभावही कह्या है. औ वासिष्ठमैं ऐसा बी प्रसंग है:— सिषरध्वजकी ज्ञानतैं अनंतर अधिक प्रवृत्ति हुई है. इस रीतिसैं नाना प्रकारके विलछन व्यवहार ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं; तिन सर्वकूं ज्ञान समान है. औ ताका फल मोछ बी समान है; औ प्रारब्ध भेदसैं व्यवहारका भेद है. व्यवहारकी न्यूनतासैं जीवन्मुक्तिके सुषकी अधिकता, औ व्यवहारकी अधिकतासैं जीवन्मुक्तिके सुषकी न्यूनता होवै है. याकै विषे.

४७६ **कोई यह संका करै है:—** जो जीवन्मुक्तिके सुषकूं त्यागिके तुछ भोगनमैं प्रवृत्त होवे, सो विदेह मोछकूं बी त्यागिके, वै-

कुंठादिक लोककी इछा धारिकै जावैगा.

सो संका बनै नहीं. काहेतैं, जीवन्मुक्तिके सुषका त्याग, औ भोगनमैं प्रवृत्ति तौ ज्ञानीकी प्रारब्ध बलतैं संभवै है; औ विदेह मोछका त्याग औ परलोककूं गमन संभवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानीके प्रान बाहरि गमन करै नहीं; यातैं परलोककूं गमन संभवै नहीं. औ विदेह मोछका त्याग बी संभवै नहीं. काहेतैं ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृति होयके प्रारब्ध भोगतैं अनंतर स्थूल सूछम सरीराकार अज्ञानका, चेतनमैं लय **विदेह मोछ** कहिये है; सो अवस्य होवै है. जो मूल अज्ञान बाकी रहै, अथवा नष्ट अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै, तौ विदेह मोछका अभाव होवै. सो मूल अज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेतैं अज्ञान बाकी रहै नहीं. औ प्रमानतैं नास हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं विदेह मोछका अभाव होवै नहीं. औ विदेह मोछके त्यागमैं, तथा परलोकके गमनमैं, ज्ञानीकी इछा बी संभवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानीकूं इछा केवल प्रारब्धसैं होवै है. जितनी सामग्री विना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं, उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचै है. इछा विना भोग संभवै नहीं. यातैं **ज्ञानीकी इछा बी प्रारब्धका फल है.** औ अन्य लोकमैं अथवा इस लोकमैं, अन्य सरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं बी होवै नहीं. यह पूर्व इसी तरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं. यातैं ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं विदेह मोछके त्यागकी, वा परलोकके गमनकी इछा होवै नहीं.

४७६ जीवन्मुक्तिके सुषके विरोधी वर्त्तमान सरीरमैं, अधिक भोगनकी इछा तौ भिछा भोजनादिनकी नांई, जनकादिकनकूं संभवै है. या स्थानमैं यह रहस्य है:— ज्ञानिकी बाह्य प्रवृत्ती जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं; किंतु जीवन्मुक्तके विलछन सुषकी विरोधी है; काहेतैं, आत्मा नित्य मुक्त है, अविद्यासैं बंध प्रतीत होवै है,

जिस कालमें ज्ञान होवै है; तिसी कालमें अविद्याकृत बंध भ्रम नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेतैं फेरिबंध भ्रांति होवै नहीं. सरीर सहितकूं बंध भ्रमका अभावही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमें तथा निवृत्तिमें, ज्ञानीकूं बंध भ्रांति आत्मामें होवै नहीं. यातैं बाह्य प्रवृत्तिसैं बी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं. तौ बी बाह्य प्रवृतिमें जीवनमुक्तकूं विलछन सुष होवै नहीं; एकाग्रतारूप अंत:करन परिनामतैं सुष होवै है. सो एकाग्रता परिनाम बाह्य प्रवृत्तिमें होवै नहीं. इस रीतिसें प्रारब्ध भेदतैं, ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नाना प्रकारके हैं. परंतु जाका प्रारब्ध अधिक प्रवृत्तिका हेतु होवै है; ताका **मंद प्रारब्ध** कहिये है. काहेतैं, अधिक प्रवृति एकाग्रताकी विरोधी है. औ एकाग्रता बिना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधि निरूपनमें कही है. और

४७७ जो पूर्व कह्या "ज्ञानवानकूं सर्व अनात्म पदार्थनमें मिथ्या बुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं."

सो संका बी बनै नहीं. काहेतैं,जैसें देहविषै मिथ्या बुद्धि बी ज्ञानीकूं होवै है; तौ बी देहके अनुकूल जो भिछादिक हैं,तिनमें केवल प्रारब्धसें प्रवृत्ति होवै है. तैसें जिसका अधिक भोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिक प्रवृति बी होवै है. जैसें बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके, सर्व लोकनकी प्रवृत्ति होवै है; तैसें सर्व पदार्थनमें ज्ञानीकूं मिथ्या बुद्धि हुयेसें बी प्रवृत्ति संभवै है. और

४७८ जो ऐसें कहै, जाकूं जिस पदार्थमें दोष दृष्टि होवै; ताके विषै तिस पुरुषकी प्रवृति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्म पदार्थनमें, दोष दृष्टि होवै है; राग होवै नहीं. यातैं प्रवृति संभवै नहीं.

सो बी बनै नहीं. काहेतैं जिस अपथ्य सेवनमें, रोगीनै अन्वय व्यतिरेकतैं दोष निश्चै किया है; ता अपथ्य सेवनमें प्रारब्धतैं

जैसें रोगीकी प्रवृत्ति होवै है; तैसें प्रारब्धसें ज्ञानीकी सर्व व्यवहारमें प्रवृत्ति दोष दृष्टि हुये बी संभवै है. इस रीतिसें **ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं.** यह पक्ष **विद्यारन्य स्वामीनें** विस्तारसें, तृप्तिदीपमें प्रतिपादन किया है. यातें तत्वदृष्टिका व्यवहार नियम रहित है. समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्वदृष्टि हसै है.

४७९ **दोहा.**

भ्रमन करत कछु काल यूं, तत्व दृष्टि सुज्ञान;
भोगी निज प्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान. १७

टीका:– प्रारब्ध भोगतें अनंतर ज्ञानीके प्रान गमन करै नहीं. यातें तत्वदृष्टिके प्रान लीन हुये यह कह्या. औ ज्ञानीके सरीर त्यागमें काल विसेषकी अपेछा नहीं. उत्तरायनमें अथवा दछिनायनमें, देहपात होवै, सवर्था मुक्त है. तैसें देस विसेषकी अपेछा नहीं. कासी आदिक पुनित देसमें अथवा अत्यंत मलिन देसमें, ज्ञानीका देह पात होवै सर्वथा मुक्त है. तैसें आसन विसेषकी अपेछा नहीं. पृथिवीमें सव आसनतें, अथवा सिद्ध आसनतें देहपात होवै, तैसें सावधान ब्रह्म चिंतन करतेका, अथवा रोग व्याकुल हाहा सब्द पुकारतेका, देहपात होवै सर्वथा मुक्त है. काहेतें, जिस **कालमें ज्ञानतें अज्ञान निवृत्त हुया तिसी कालमें ज्ञानी मुक्त है.** यातें ज्ञानीकूं विदेह मोछमें, देस काल आसनादिकनकी अपेछा नहीं.जैसें ज्ञानीकूं देहपातमें देस कालादिकनकी अपेछा नहीं; तैसें ज्ञानके निमित्त श्रवनमें बी, देसकाल आसनादिकनकी अपेछा नहीं. औ

४८० उपासककूं देस कालादिकनकी अपेछा है, **यद्यपि** भीष्मा

दिक ज्ञानी कहे हैं; औ भीष्मनें उत्तरायन बिना प्राण त्याग किये नहीं; तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं. यातें उपासकनके उपदेस वासते, तिन्होंनें काल विसेषकी प्रतिज्ञा करी है. औ वसिष्ट भीष्मादिक अधिकारी हैं; यातेंही उनकूं अनेक जन्म हुये हैं. काहेतें; अधिकारी पुरुषनका एक कल्प पर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंत बिना विदेह मोछ होवै नहीं. औ कल्पके भीतरि तिनकूं इछा बलतें नाना सरीर होवै हैं. तथापि आत्म स्वरूप विषे तिनकूं जन्म मरन भ्रांति होवै नहीं; यातें जीवन्मुक्त हैं. तिन अधिकारी पुरुषनका व्यवहार संपूर्न अन्यके उपदेस निमित्त है. औ अन्य ज्ञानीके व्यवहारमें कोई नियम नहीं. इस अभिप्रायतें तत्वदृष्टिके देहपातका, देसकाल, आसनादिक कुछ कह्या नहीं.

४८१ **दोहा.**

दूजो सिष्य अदृष्ट तिहि, गंगा तट सुभ थान;
देस इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान. १८
सास्त्र रीति तजि देहकूं, पूरब कह्यो जु राह;
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिक उछाह. १९

टीका:– जैसैं ज्ञानीकूं देस कालकी अपेछा नहीं; तासैं विपरीत उपासककूं जाननी. उत्तम देसमैं, उत्तम उत्तरायनादिक कालमैं, उपासक सरीर तजै; तब उपासनाका फल होवै. औ ज्ञानीकूं मरन समै सावधानतासैं, ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेछा नहीं. उपासककूं मरन समै ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेछा है. जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरन समै होवै; तब उपासनाका फल होवै है. जैसैं ध्येयकी स्मृति चाहिये; तैसैं ध्येय ब्रह्मकी प्राप्तिका जो मारग, पंचम तरंगमैं कह्या है; ताकी बी स्मृति चाहिये. काहेतैं, मार्ग

चिंतन बी उपासनाका अंग है. औ ज्ञान निमित्त श्रवनमैं देस काल आसनकी अपेछा नहीं. ध्यानमैं उत्तम देस, निरंतर काल, सिद्धादिक आसनकी अपेछा है. यातैं अदृष्टिकूं उत्तम देस, गंगा तीरमैं स्थिति; औ मरन समै बी योगसास्त्र रीतिसैं देह पात कथा.

४८२ दोहा.

तर्कदिष्ट पुनि तीसरो, लहि गुरु मुष उपदेस;
अष्टादस प्रस्थान जिन, अवगाहन करि बेस२०
जेती बानी वैषरी, ताको अलं पिछान;
हेतु मुक्तिको ज्ञान लषि, अद्वय निश्चय ज्ञान.२१

टीका:— तर्कदृष्टि नाम तीसरा, गुरुद्वारा उपदेसकूं श्रवन करिके, सुने अर्थमैं अन्य सास्त्रनका विरोध दूरि करनेकूं, सर्व सास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय किया:—सकल सास्त्रनका परम प्रयोजन मोछ है. मोछका साधन ज्ञान है. सो ज्ञान अद्वय निश्चयरूप है. भेद निश्चय यथार्थ ज्ञान नहीं. सारे सास्त्र साछात अथवा परंपरातैं ब्रह्मज्ञानका हेतु है.

यद्यपि संस्कृत वैषरी बानीके अष्टादस प्रस्थान हैं; तिनमैं कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै है; कोई विषय सुषके उपायनकूं प्रतिपादन करै है; कोई ब्रह्म भिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै है. तैसैं ज्ञान निमित्त जो न्याय सांष्य आदिक सास्त्र हैं; सो बी भेदज्ञानकूंही यथार्थ ज्ञान कहै हैं. यातैं सर्वकूं अद्वैत ब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलसास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ हुये हैं; औ कृपालु हुये हैं. यातैं तिनके किये मूल सूत्रनका तौ, वेदके अनुसारही अर्थ है. परंतु तिनके व्याष्यान कर्त्ता भ्रांत हुये हैं. मूल सूत्रकारनके

अभिप्रायतें बिलछन अर्थ किया है. सो वेदसें विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं; किंतु सर्व सास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. **यह तर्क दृष्टिनें उत्तम संस्कारतें निश्चै किया.**

४८३ **विद्याके अष्टादस प्रस्थान** यह हैं:- चारि वेद, चारि उपवेद, षट् वेदके अंग, पुरान, न्याय, मीमांसा, धर्म सास्त्र, इस रीतिसें वैषरी बानीरूप विद्याके आठारह भेद हैं. तिन्हकूं **प्रस्थान** कहै हैं.

४८४ रिग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये **च्यारि वेद** हैं. तिनमैं कितने वचन ज्ञेय ब्रह्मकूं बोधन करै हैं; कितने ध्येयकूं बोधन करै हैं; औ बाकी कर्मकूं बोधन करै हैं. जो कर्मके बोधक वेद वचन हैं; तिनका बी अंत:करन सुद्धि द्वारा ज्ञानही प्रयोजन है. औ प्रवृत्तिमैं किसी वेद वचनका अभिप्राय नहीं. किंतु निषिद्ध स्वाभाविक प्रवृत्तिसें रोकनेमें अभिप्राय है. यातें अभिचारादि कर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है; ताका बी निवृत्तिमैं तात्पर्य है. जो द्वेषतें सत्रु मारनमैं प्रवृत्त होवै, तौ गरदानसें अथवा अग्नि दाहसें सत्रुकूं नही मारै; इस वासते अभिचार कर्म स्येन यागादिक कहै हैं. सत्रु मारनके निमित्त जो कर्म सो **अभिचार** कहिये हैं. ऐसा स्येन नाम यज्ञ है. स्येन यागका बोधक जो वेद वचन है; ताका यह अर्थ नहीं:- सत्रु मारन कामनावाला स्येन यागमैं प्रवृत्त होवै. किंतु सत्रु मारनकी जाकूं कामना होवै, सो स्येन यागतें भिन्न जो गरदानादिक सत्रु मारनके उपाय हैं, तिनमैं प्रवृत्त होवै नहीं. इस रीतिसें द्वेषतें प्राप्त जो गरदानादिक, तिनतें, निवृत्तिमैं स्येन याग बोधक वचनका अभिप्राय है, प्रवृत्तिमैं नहीं. काहेतें, प्रवृत्ति द्वेषतें प्राप्त है. जो अन्यतें प्राप्त होवै; तामैं वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं. इसरीतिसें **सारे अथर्ववेदका नि-**

वृत्तिमैं तात्पर्य है. और तीनि वेदनमैं कर्म बोधक वाक्यनका, अंतःकरन सुद्धि द्वारा ज्ञानमैं उपयोग स्पष्ट है. तैसैं,

४८९ च्यारि उपवेद हैं:— आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गांधर्ववेद ३, अर्थवेद ४. तिनमैं आयुर्वेदके कर्त्ता, ब्रह्मा, प्रजापति, अस्विनी कुमार, धन्वंतरि, आदिक हैं. चरक, वागभट्टादिक चिकित्सा सास्त्र आयुर्वेद हैं. औ वात्सायनकृत कामसास्त्र बी आयुर्वेदके अंतर्भूत है. काहितें, काम सास्त्रका विषय बाजीकरन स्तंभनादिक बी, चरकादिकूंनै कथन किये हैं. तिस आयुर्वेदका वैराग्यमैंही अभिप्राय है. काहेतें, आयुर्वेदकी रीतिसैं रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेतैं बी, फेरि रोगादिक उत्पन्न होवै हैं. यातैं लौकिक उपाय तुछ हैं: इस अर्थमैं आयुर्वेदका अभिप्राय है. औ औषध दानादिकनतैं पुन्य होयके, अंतःकरनकी सुद्धि द्वारा बी ज्ञानमैं उपयोग है. तैसैं,

विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमैं आयुध निरूपन किये हैं. आयुध च्यारि प्रकारके हैं:— मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, जंत्रमुक्त ४. चक्रादिक हाथसैं फेंकिये, सो मुक्त कहिये है. षडगादिक अमुक्त कहिये है. बरछी आदिक मुक्तामुक्त कहिये है. सर गोली आदिक जंत्रमुक्त कहिये हैं. इस रीतिसैं च्यारि प्रकारके आयुध हैं. तिनमैं मुक्त आयुधकूं अस्त्र कहै हैं. अमुक्तकूं सस्त्र कहै हैं. इन च्यारि प्रकारके आयुधनकूं, ब्रह्मा विष्णु पसुपति प्रजापति अग्नि वरुन आदिक देवता; मंत्र कहै हैं. छत्रिय कुमार अधिकारी कहै है. औ तिनके अनुसारी ब्राह्मनादिक बी अधिकारी कहै हैं. तिनके च्यारी भेद कहै हैं:- पदाति १, रथारूढ २, अस्वारूढ ३, गजारूढ ४. और युद्धमैं सकुन मंगल कहै हैं. इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथम पादमैं कह्या है. औ आचार्यका लछन तथा आचार्यतैं

सस्त्रोंके ग्रहनकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीय पादमैं कही है. औ गुरु संप्रदायतैं प्राप्त हुये सस्त्रोंका अभ्यास, तथा मंत्रसिद्धि देवता सिद्धिका प्रकार त्रतीय पादमैं कह्या हैं. सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थ पादमैं कह्या है. इतना अर्थ धनुर्वेदमैं है: सो ब्रह्मा प्रजापति आदिकनतें विश्वामित्रकूं प्राप्त हुवा है, तानैं प्रगट किया है. औ विस्वामित्रतें धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा. दुष्ट चौरादिकनतें प्रजा पालन छत्रियका धर्म बोधक धनुर्वेद है. यातैं ताका बी अंतःकरन सुद्धि करिके, ज्ञान द्वारा मोछमैंही अभिप्राय है. तैसैं,

गांधर्व वेद भरतनै प्रगट किया है. तामैं स्वर, ताल, मुर्छना, सहित, गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपन विस्तारसैं किया है. देवताका आराधन निर्विकल्प समाधिकी सिद्धि, गांधर्व वेदका प्रयोजन कह्या है. यातैं ताका बी अंतःकरनकी एकाग्रता करिके; ज्ञान द्वारा मोछही प्रयोजन है. तैसैं,

अर्थ वेद बी नाना प्रकारका है:— नीतिसास्त्र, अस्वसास्त्र, सिल्पिसास्त्र, सूपकार सास्त्रसैं आदिलेके धन प्राप्तिके उपाय बोधक सास्त्र अर्थवेद कहिये हैं. धन प्राप्तिके सकल उपायनमैं निपुन पुरुषकूं बी भाग्य बिना धनकी प्राप्ति होवै नहीं; यातैं अर्थ वेदका बी वैराग्यमैंही तात्पर्य है. तैसै,

४८६ च्यारिवेदनके षट अंग हैं:— सिक्षा१, कल्प२, व्याकरन३, निरूक्त४, ज्योतिष५, पिंगल६. ये छह वेदके उपयोगी होनेतैं. वेदके अंग कहिये हैं. तिनमैं,

सिछाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके सब्दनमैं अछरोंके स्थानका ज्ञान; औ उदात्त, अनुदात्त, स्वरितका ज्ञान, सिछातैं होवै है. वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रतिसाषा नाम ग्रंथ हैं; सो बी

सिक्षाके अंतर्भूत है.

तैसें वेद बोधित कर्मके अनुष्ठानकी रीति, कल्प सूत्रनतें जानी जावै है. यज्ञ करावनेवाले ब्राह्मण **ऋत्विक्** कहिये हैं. तिनके भिन्न भिन्न करने योग्य जो कर्म; तिनके प्रकारके बोधक **कल्पसूत्र** हैं. तिन कल्प सूत्रनके कर्त्ता कात्यायन आस्वलायनादिक मुनि हैं. यातें कल्पसूत्र बी वेदके उपयोगी होनेतें वेदके अंग हैं. तैसें,

व्याकरनतैं वेदके सब्दनका सुद्धताका ज्ञान होवै है. सो व्याकरन सूत्ररूप अष्ट अध्याय पाणिनि नाम मुनिने किया है. कात्यायन औ पतंजलिनैं तिन सूत्रनके; व्याख्यानरूप वार्त्तिक औ भाष्य किये हैं. और जो व्याकरन हैं, तिनमें वेदके सब्दनका विचार नहीं. यातें पुरानादिकनमैं उपयोगी तौ हैं; परंतु वेदके उपयोगी नहीं. औ पाणिनिकृत व्याकरन वेदके सब्दनकी बी सिद्धि करै है; यातें वेदका अंग है. तैसें यास्क नाम मुनिनैं त्रयोदस अध्यायरूप **निरुक्त** किया है. तहां वेदके मंत्रनमैं अप्रसिद्ध पदनके; अर्थ बोधके निमित्त नाम निरूपन किये हैं. यातें वैदिक-अप्रसिद्ध पदनके अर्थ ज्ञानमैं उपयोगी होनेतें, निरुक्त बी वेदका अंग है. संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कनैं किया है; सो बी निरुक्तके अंतरभूत है. और अमरसिंह, हेमादिकननै किये जो संज्ञाके बोधक कोस हैं, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं. तैसें,

पिंगल मुनिनैं सूत्र अष्ट अध्यायतें छंद निरूपन किये हैं; तिनतें वैदिक गायत्री आदिक छंदनका ज्ञान होवै है; यातें पिंगलकृत सूत्र बी वेदके अंग हैं. तैसें,

आदित्य गर्गादिककृत **ज्योतिष** बी वेदका अंग है. काहेतें, वै-

दिक कर्मके आरंभमैं कालका ज्ञान चाहिये. सो **कालज्ञान ज्योतिषतैं होवै है;** यातैं वेदका अंग है. यह षट जो वेदके अंग हैं तिनमैं वेदमैं उपयोगी जो अर्थ नहीं; ताका प्रसंगतैं निरूपन किया है, प्रधानतासैं नहीं. यातैं **वेदका जो प्रयोजनहै सोई इन षट् अंगनका प्रयोजन है;** प्रथक् नहीं.

४८७ **पुरान अष्टादस हैं.** व्यास नाम मुनिनैं किये हैं. तिनके ये नाम हैं:—ब्रह्म १, पद्म २, वैष्नव ३, शैव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कंद १३, वामन १४, कौर्म्य १५, मात्स्य १६, गारुड १७, ब्रह्मांड १८, ये अष्टादस पुरान व्यासनै किये हैं. तैसै काली पुरानादिक और बहुत हैं; सो **उपपुरान हैं.** कोई उपपुरान बी अष्टादस कहै हैं; सो नियम नहीं. उपपुरान बहुत हैं. **भागवत दो हैं:**—एक तौ वैष्नव भागवत है; औ दूसरा भगवती भागवत है. दोनूंकी समान संख्या अष्टादस सहस्र है. औ दोनूंके द्वादस स्कंध हैं. परंतु तिनमैं एक पुरान है, दूसरा उपपुरान है. दोनूं व्यासकृत हैं, यातैं दोनूं प्रमान हैं. जैसे व्यासनें पुरान किये हैं; तैसै उपपुरान बी कोई व्यासनैं किये हैं. कोई उपपुरान पारासर आदिक अन्य सर्वज्ञ मुनियोनैं किये हैं, यातै उपपुरान बी प्रमान हैं. जो उपनिषदनका अर्थ है. सोई उपपुरान सहित पुरानका अर्थ है; यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. तैसैं

४८८ पंच अध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमनैं किये हैं. तिनमैं जुक्ति प्रधान हैं. जुक्ति चिंतनतैं पुरुषकी तीव्र बुद्धि होवै; तब मनन करने विषे समर्थ होवै है. यातैं जुक्ति प्रधान न्याय सूत्रनका बी, मनन द्वारा वेदांत जन्य ज्ञानही फल है. औ कणाद नाम मुनिनैं दस अध्यायरूप बैसेषिक सूत्र किये हैं; तिनका बी न्यायमैं अंत-

र्भाव है. तैसैं,

४८९ मीमांसाके दो भेद हैं:- एक धर्म मीमांसा, दूसरी ब्रह्म मीमांसा. धर्म मीमांसाकूं **पूर्व मीमांसा** कहै हैं. ब्रह्म मीमांसाकूं **उत्तर मीमांसा** कहै हैं. धर्म मीमांसाके द्वादस अध्याय हैं; जैमिनी नाम ताका कर्त्ता है. कर्म अनुष्ठानकी रीति तामैं प्रतिपादन करी है. यातैं विधिसैं कर्ममैं प्रवृत्ति, धर्म मीमांसाका फल है. कर्ममैं प्रवृत्तिसैं अंतःकरन सुद्धि, तासैं ज्ञान औ, ज्ञानतैं मोछ. इस रीतिसैं **धर्म मीमांसाका मोछ फल है.** औ धर्म मीमांसाके द्वादस अध्यायनमैं, आपसमैं अर्थका भेद है, सो कठिन है; यातैं लिख्या नहीं. औ संकर्षन कांड पंच अध्यायरूप जैमिनिनैं किया है, ताकेविषे उपासना कही है. ताका बी धर्म मीमांसाके अंतर्भाव है. तैसैं,

ब्रह्म मीमांसाके च्यारि अध्याय हैं; ताका कर्त्ता व्यास है. एक एक अध्यायके चारि चारि पाद हैं. तहां प्रथम अध्यायमैं यह अर्थ है:—सारे उपनिषद वाक्य, ब्रह्मकूं प्रतिपादन करे हैं, अन्यकूं नहीं. औ उपनिषद वाक्यनका मंदबुद्धि पुरुषकूं आपसमैं विरोध प्रतीत होवे है; ताका परिहार द्वितीय अध्यायमैं कह्या है. औ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीय अध्यायमैं कह्या है. ज्ञान उपासनाका फल चतुर्थ अध्यायमैं कह्या है. यह ब्रह्म मीमांसारूप सारीरक सास्त्रही, सर्व सास्त्रनमैं प्रधान है. मुमुछूकूं येही उपादेय है. ताके व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना हैं; तथापि श्रीसंकर कृत्य भाष्य रूप व्याख्यानहीं; मुमुछुकूं श्रोतव्य है. ताका ज्ञान द्वारा मोछ फल स्पष्टही है. तैसैं,

४९० मनु, याज्ञवल्क्य, विष्नु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दछ, संवर्त्त, सातातप, परासर, गौतम, संषलिषित, हारीत, आपस्तंब,

सुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद, इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं. तिनोंनैं वेदके अनुसार **स्मृति** नाम ग्रंथ किये हैं. सो **धर्म सास्त्र** कहिये है. तिनमैं वर्न आश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहै हैं. तिनका बी अंतःकरन सुद्धि द्वारा ज्ञान होयके मोछही प्रयोजन है. तैसैं व्यासनै महाभारत, औ वाल्मिकीनै रामायन किया है; तिनका बी धर्म सास्त्रमैं अंतर्भाव है. औ देवता आराधनके निमित्त जो मंत्र सास्त्र है; ताका बी धर्म सास्त्रमैं अंतर्भाव है. देवता आराधनका अंतःकरन सुद्धि प्रयोजन है. तैसैं सांख्य सास्त्र, योग सास्त्र, वैष्नवतंत्र, सैवतंत्रादिक बी, धर्म सास्त्रके अंतर्भूत हैं- काहेतैं, इनमैं बी मानस धर्मका निरूपन है. तहां

४९१ सांख्य सास्त्र षट अध्याय रूप कपिलनैं किया है. ताके प्रथम अध्यायमैं विषय निरूपन किये हैं. द्वितीय अध्यायमैं महत्तत्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य कहै हैं. तृतीय अध्यायमैं विषयनतैं वैराग्य कह्या है. चौथे अध्यायमैं विरक्तोंकी आख्यायिका कही है. पंचमैं अध्यायमैं परपछका षंडन कह्या है. छठे अध्यायमैं सारे अर्थका संछेपतें संग्रह किया है. प्रकृति पुरुषके विवेकतैं पुरुषका असंग ज्ञान **सांख्य सास्त्रका प्रयोजन** है. ताका बी त्वंपदके लछ्य अर्थ सोधन द्वारा महावाक्य जन्य ज्ञानमैं उपयोग होनेतैं, मोछही फल है. तैसैं,

४९२ योग सास्त्र चारि पादरूप है. पतंजलि वाका कर्ता है. सो पतंजलि सेषका अवतार है. एक ऋषि संध्या उपासन करैथा, ताकी अंजलिमैं प्रगट होयकै पृथिवीमैं पड्या है; यातैं **पतंजलि** नाम कहिये है. तानै सरीरका रोगरूपी मल दूरि करने वास्ते चिकित्सा ग्रंथ किया है. औ असुद्ध सब्दका उच्चारनरूपी जो बानीका मल है, ताके नासकूं पाणिनी व्याकरनका भाष्य किया

है. तैसे विछेपरूप अंतःकरनका मल है; ताके नासकूं योग सूत्र किये हैं. तहां प्रथम पादमैं चित्त वृत्तिका निरोधरूप समाधि, औ ताके साधन अभ्यास वैराग्यादिक कहे हैं. तैसे विछिप्त चित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आसन, प्रानायाम, प्रत्याहार, धारना, ध्यान, समाधि, ये **आठ समाधिके अंग** द्वितीय पादमैं कहे हैं; तृतीय पादमैं योगकी विभूति कही है; चतुर्थ पादमैं **योगका फल** मोछ कह्या है. इस रीतिसैं योग सास्त्र बी ज्ञान साधन, निदिध्यासनकूं संपादन द्वारा मोछका हेतु है; औ सारीरक सूत्रनमैं जो सांख्य योगका षंडन किया है; सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदनसैं विरुद्ध किये हैं; तिनका षंडन किया है; सूत्रनका नहीं; तैसे.

४९३ न्याय वैसेषिकका षंडन बी विरुद्ध व्याख्यानका है. तैसे नारदने पंचरात्र नाम तंत्र किया है; तामैं वासुदेवमैं अंतःकरन स्थापन कह्या है; ताका बी अंतःकरनकी स्थिरतासैं ज्ञानद्वारा मोछही फल है. सारे वैष्नव ग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं. सो पंचरात्र धर्म सास्त्रके अंतर्भूत है. तैसे पासुपत तंत्रमैं पसुपतिका आराधन कह्या है; ताका कर्त्ता पसुपति है; ताका बी अंतःकरनकी निश्चलता द्वारा मोछ साधन, ज्ञान फल है. और,

४९४ जो सैव ग्रंथ हैं, सो सारे पसुपत तंत्रके अंतर्भूत हैं. तैसे गनेस, सूर्य, देवीकी उपासना बोधक ग्रंथनका; चित्तकी निश्चलता द्वारा ज्ञान फल है. औ सर्वका धर्म सास्त्रमैं अंतर्भाव है. परंतु,

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमैं, दो संप्रदाय हैं:— एक दछिन संप्रदाय, दूसरी उत्तर संप्रदाय है. उत्तर संप्रदायकूं **वाम मार्ग** कहे हैं. तिनमैं दछिन संप्रदायकी रीतिसैं जिन ग्रंथमैं देवी-

की उपासना है, सो ती धर्म सास्त्रके अंतर्भूत है. औ **वाममार्ग तिन ग्रंथनमें है, सो धर्म सास्त्रसैं विरुद्ध है; यातैं अप्रमान** हैं. **यद्यपि** वामतंत्र सिवनैं किया है, तथापि सकल सास्त्र औ वेदसैं विरुद्ध है; यातैं प्रमान नहीं. जैसैं विष्णुके बुद्ध अवतारनैं नास्तिक ग्रंथ किये हैं; सो वेद विरुद्ध हैं; यातैं प्रमान नहीं. तैसैं सिवकृत वाम तंत्र बी अत्यंत विरुद्ध है. मदिरादिक अत्यंत असुद्ध पदार्थनका तामैं ग्रहन लिष्या है. औ उत्तम पदार्थनके जो नाम हैं, सोई मलिन पदार्थनके नाम लोक वंचनके निमित्त कहे हैं. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम सुद्ध, मदिरा पात्रका नाम पद्म, प्याजका नाम व्यास, लसुनका नाम सुकदेव, मदिराकारि कलालका नाम दीक्षीत कहे हैं. तैसैं वेस्यासेवी चर्मकारी आदिक चांडालिसेवीकूं प्रागसेवी कासीसेवी कहे हैं. औ भैरवी चक्रमैं स्थित जो चांडालादिक हैं; तिनकूं ब्राह्मन कहे हैं. औ अत्यंत व्यभिचारिनीकूं योगिनी, औ व्यभिचारीकूं योगी कहे हैं. ऐसैं अनेक प्रकारसैं निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समै अनेक दोषवती स्त्रीकूं उत्तम सक्ति कहे हैं. जातिकी चांडाली अति व्यभिचारिनी, रजस्वला स्त्रीकूं देवी बुद्धिसैं पूजन करै हैं. ताका उच्छिष्ट मदिरापान करै हैं. औ अधिक मदिरापानसैं जो वमन करि देवे, ताकूं पृथिवीमैं नहीं गिरनै देवैं हैं; किंतु आचार्य सहित दूसरे सावधान भक्षन करै हैं. वमनकूं भैरवी कहे हैं. औ स्त्रीकी योनिमैं जिव्हा लगायके मंत्रनका जप करै हैं. मदिरा१, मांस २, मत्स्य ३, मुद्रा ४, मंत्र ५, इन पंच मकारनकूं भोग मोक्ष निमित्त सेवन करै हैं, प्रथमा द्वितियादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनतैं व्यवहार करै हैं. इसतैं आदिलेके वामतंत्रका सकल व्यवहार, इस लोकतैं औ परलोकतैं भ्रष्ट करै है. इसी कारनतैं,

कर्नछेदी योगी, औ अवधूत गुसांई, तैसें अनेक संन्यासी औ ब्राह्मनादिक वाममार्गकूं सेवन करै हैं. तौ बी लोक वेद निंदित जानिके गुप्त राषै हैं. अधिक क्या कहैं! वाम तंत्रकी रीति सुनिके, म्लेछके बी रोमांच होय जावै. ऐसा निंदित वाम तंत्र है. सर्वगी जो अभछन करै हैं; सो सारे निंदित मार्ग वामतंत्रमें कहे हैं. अति नीच व्यवहार लिषनें योग्य नहीं; यातें विसेष प्रकार लिष्या नहीं. **सर्वथा वाम तंत्र त्यागनें योग्य है.** तैसें,

४९९ नास्तिक मत बी त्यागने योग्य है. **नास्तिकनके षट भेद हैं:**— माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६. ये छह वेदकूं प्रमान नहीं मानै हैं; तिनका आपसमें विलछन सिद्धांत है. माध्यमिक सून्यवादी हैं; योगाचारके मतमें सारे पदार्थ विज्ञानसें भिन्न नहीं; विज्ञानही तत्व है; सो विज्ञान छनिक है. सौत्रांतिक मतमें विज्ञानका आकार बाह्य पदार्थ विषय विना होवै नहीं; यातें विज्ञानतें बाह्य पदार्थनका अनुमान होवै है; इस रीतिसें सौत्रांतिक मतमें अनुमान प्रमानके विषय, बाह्य पदार्थ हैं; प्रत्यछ नहीं; औ स्थिर नहीं; किंतु सारे पदार्थ छनिक हैं. औ वैभाषिक मतमें बाह्य पदार्थ छनिक तो हैं; परंतु प्रत्यछ प्रमानके विषय हैं; इतना भेद है. ये **चारि मत सुगतके हैं.** चार्वाक मतमें पदार्थ छनिक नहीं, परंतु तिसके मतमें देह आत्मा है. औ दिगंबर मतमें देह आत्मा नहीं; देहसें आत्मा भिन्न है; परंतु जितना देहका परिमान होवै, उतना आत्माका परिमान है. इस रीतिसें इनका आपसमें मतका भेद है; और बी इनकी आपसमें मतकी विलछनता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं; यातें **नास्तिक** हैं, इसी कारनतें तिनके मतका उप-

पादन, औ षंडन विसेष करिके लिष्या नहीं. इस रीतिसें,

४९६ वाम मार्ग औ नास्तिक मतनके ग्रंथ **यद्यपि** संस्कृत बानी-रूप हैं, **तथापि** वेद बाह्य हैं. यातें वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादसही हैं. और ममट आदिकनें जो साहित्य ग्रंथ किये हैं, तिनका बी काम सास्त्रमें, अंतर्भाव है. तैसें सकल काव्यनका बी; किसिका काम सास्त्रमें, किसिका धर्म सास्त्रमें, अंतर्भाव है. इस रीतिसें अष्टादस विद्याके प्रस्थान, सारे ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्षके हेतु हैं. कोई साक्षात ज्ञानका हेतु है, कोई परंपरातें ज्ञानका हेतु है. यह तर्कदृष्टिनें सकल सास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया। **यद्यपि** उत्तर मीमांसा बिना सारे सास्त्र जिज्ञासूकूं हेय हैं, यह सारीरकमें सूत्रकार भाष्यकारनें प्रतिपादन किया है. यातें अन्य सास्त्र बी मोक्षके उपयोगी हैं; यह कहना संभवे नहीं; **तथापि** सारग्राही दृष्टिसें तर्कदृष्टिनै यह सार निश्चय किया.

४९७

दोहा.

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहि जाय;
निश्चय अपनो तांहि तिहि, दीनो सकल सुनाय. २२

टीका:— गुरु द्वारा सुने अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त, सकल सास्त्रनका अभिप्राय विचार्‍या; तौ बी फेरि संदेह हुवा:— जो सास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है, अथवा अन्य अभिप्राय है काहेतें, तर्कदृष्टि कनिष्ट अधिकारी कह्या है; यातें बारंबार कुतर्कतें संदेह होवे है. ताकी निवृत्ति वासते अन्य विद्वानके निश्चयतें, अपने निश्चयकी एकता करनेकूं गया.

दोहा.

तर्क दृष्टिके बैन सुनि, सो बोल्यो बुध संत;

जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोइ मुष्य सिद्धांत. २३
संसय सकल नसाय यूं, लष्यो ब्रह्म अपरोछ;
जग जान्यो जिन सब असत, तैसैं बंध रु मोछ.२४
४१८ सेष रह्यो प्रारब्ध यूं, इछा उपजी येह;
चलि तत्कालहि देषियेजननि जनक जुत गेह.२५

टीका:- "ज्ञानीका सकल व्यवहार अज्ञानीकी नांई प्रारब्धसैं होवै है;" यह पूर्व कही है; यातैं इछा संभवै है. औ कहूं सास्त्रमैं ऐसा लिष्या है, "ज्ञानीकूं इछा होवै नहीं" ताका यह अभिप्राय नहीं:- ज्ञानीका अंत:करन पदार्थकी इछाँरूप परिनामकूं प्राप्त होवै नहीं. काहेतैं,

अंत:करनके इछादिक सहज धर्म हैं. औ अंत:करन यद्यपि भूतनके सत्वगुनका कार्य कह्या है; तथापि रजोगुन तमोगुन सहित, सत्वगुनका कार्य है; केवल सत्वगुनका नहीं. केवल सत्व गुनका कार्य होवै, तौ चल स्वभाव अंत:करनका नहीं हुवा चाहिये. तैसै राजसीवृत्ति; काम, क्रोधादिक; औ मूढतादिक, तामसी वृत्ति किसी अंत:करनकी नहीं हुई चाहिये. यातैं केवल सत्वगुनका अंत:करन कार्य नहीं. किंतु अप्रधान रजोगुन तमोगुन सहित; प्रधान सत्वगुनवाले भूतनतैं अंत:करन उपजै है. यातैं अंत:करनमैं तीनूं गुन रहै हैं. सो तीनूं गुन बी पुरुषनके जितने अंत:करन हैं, तिनमैं सम नहीं; किंतु न्यून अधिक हैं. यातैं गुनोंकी न्यूनता अधिकतासैं सर्वके विलछन स्वभाव हैं. इस रीतिसैं तीनूं गुनका कार्य अंत:करन है.

जितनें अंतःकरन रहै, उतने रजो गुनका परिनाम रूप इच्छाका अभाव बनै नहीं. यातैं ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं; ताका यह अभिप्राय है:— अज्ञानी औ ज्ञानी दोनूकूं इच्छा तौ समान होवै है, परंतु अज्ञानी तौ इच्छादिक आत्माके धर्म जानै हैं; औ ज्ञानीकूं जिस कालमैं इच्छादिक होवै है, तिस कालमैं बी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं. किंतु काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक; **अंतःकरनके परिनाम है**; यातैं अंतःकरनके धर्म जानै है. इस रीतिसैं इच्छादिक होवै बी हैं, आत्माके धर्म इच्छादिक ज्ञानीकूं प्रतीत होवै नहीं. यातैं ज्ञानीमैं इच्छाका अभाव कह्या है.तैसैं मन बानी तनसैं जो व्यवहार ज्ञानी करै, सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं. किंतु सारी क्रिया मन बानी तनमैं हैं. औ आत्मा असंग है, यह ज्ञानीका निश्चय है. यातैं **सर्व व्यवहार कर्त्ता बी ज्ञानी अकर्त्ता है**. इसी कारनतैं श्रुतिमैं **यह कह्या है**:—"ज्ञानतैं उत्तर किये जो वर्त्तमान सरीरमैं सुभ असुभ कर्म, तिनके फल पुन्य पापका संबंध होवै नहीं." प्रारब्ध बलतैं अज्ञानीकी नांई सर्व व्यवहार, औ ताकी इच्छा संभवै है.

४९९ सुभसंतति नाम राजाकूं त्यागिके तीनूं पुत्र निकसे, तहां पुत्रकी कथा कही, अब पिताका प्रसंग कहै हैं:—

दोहा.

पुत्र गये लषि गेहतैं, पितु चित उपज्यो षेद;
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहि यथार्थ निर्वेद. २६

टीका. पुत्र ग्रहतैं निकसे, तब राजाकूं तीव्र वैराग्यके अभावतैं तिनके वियोगका दुष हुवा. तैसैं मंद वैराग्य हुवा है; यातैं विषय

भोगका सुष होवै नहीं. औ बाहरि निकसनेकी इछा करी, सो पुत्रनके निकसनेतें सूना राज छोडि सकै नहीं; यातें बी दुष हुवा. जो तीव्र वैराग्य होता तौ सूना राज बी त्यागि देता; सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं; किंतु मंद हुवा है; यातें त्यागि सकै नहीं. औ भोगनमैं आसक्ति नहीं; यातें उभयथा षेदही है. यथार्थ निर्वेद कहिये, तीव्र वैराग्य नहीं. मंद वैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहै हैं:-

५०० **चौपाई**

सुभसंतति पितु सो बड भागा,
भयो प्रथम तिहिं मंद विरागा;
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं,
देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं? २७
पंडित निरनो करन बुलाये,
यथा योग्य आसन बैठाये;
प्रस्न कियो यह सबके आगे,
अस को देव न सोवे जागे? २८
पुरुषारथ हित जन जिहि जाचै,
भक्तिमानके मनमैं राचै;
सुनि यह पृथिवी पतिकी बानी,
इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी. २९

५०१ सुन राजा तुहि कहूं सु देवा,

सिव विरंचि लागे जिहि सेवा;
संष चक्र धारी हित कारी,
पद्म गदा धर पर उपकारी. ३०
मंगल मूर्त्ती विष्णु कृपालू,
निज सेवक लषि करत निहालू;
सक्ति गनेस सूर सिव जे हैं,
सब आज्ञा ताकीमैं ते हैं. ३१
भारत सकल ग्रंथ यह भाषैं,
पद्म पुरान तापनी आषैं;

टीका. तापनी कहिये नृसिंह तापनी, राम तापनी, गोपाल तापनी, उपनिषद.

चौपाई

विष्नु रूपतैं उपजत सबही,
परैं भीर जाचै तिहि तबही. ३२
विविध वेषको धरि अवतारा,
सब देवनकूं देत सहारा;
यातैं ताकी कीजै पूजा,
विष्नु समान सेव्य नहि दूजा. ३३
विष्नु भक्त सिव उत्तम कहिये,
तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये;

रूप अमंगल सिवको सब सम,
ध्यान करैं नहि ताको यूं हम. ३४
सब कहिये मुरदा, ताके सम अमंगल;

चौपाई

राष डमरु गज चर्म कपाला,
धरै आप किहिं करै निहाला!
ताको पूत गनेस हु तैसो,
रूप विलछन नर पसु जैसो. ३५
सठ हठतैं ध्यावत जो दैवी,
ता सम रूप धरत तिहिं सेवी;
तिय निंदित असुची न पवित्रा,
औगुन गिने न जात विचित्रा. ३६
कपट कूटको आकर कहिये,
पराधीन निज तंत्र न लहिये;
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं,
सो सेवहु नर षर सम ताकूं. ३७
भ्रमत फिरै निस दिन यह भानू,
रहत न निश्चल छन इक थानूं;
भ्रमतो फिरै उपासक ताको,
तिहि समान सेवक जो जाको. ३८

आन देव यातैं सब त्यागै,
सेवनीय इक हरि नित जागै;
पूजन ध्यान करन विधि जो है,
नारद पंच रात्रमैं सो है. ३९

टीका:— विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो च्यारि उपासना हैं; तिन एक एकका निषेध कियेतैं बी, स्मार्त उपासनाका बी निषेध किया. काहेतैं, पांचू देवनकूं सम बुद्धि करिके उपासै, ताकूं **स्मार्त उपासना** कहै हैं. सिव आदिक च्यारि देवनकूं विष्णुकी समता निषेधनैतैं, स्मार्त उपासनाका निषेध बी अर्थसैं किया है.

५०२ चौपाई

सिव सेवक मुनि सुनि तिहि बैना,
क्रोध सहित बोल्यो चल नैना;
सुन राजन बानी इक मोरी,
जामैं वचन प्रमान करोरी. ४०
सीव समान आनको कहिये!
मांगे देत जाहि जो चहिये;
सब बिभूति हरिकूं दै मागी,
धरत बिभूति आप नित त्यागी. ४१
चर्म कपाल हेतु इहि धारै,
सम नहि उत्तम अधम विचारै;

नग्न रहत उपदेसत येही,
नहि विराग सम सुष क्है केही. ४२ .

टीकाः— वैष्नवनें चर्म कपालादिक निंदित वस्तुका धारन आक्षेप किया, ताका यह समाधान हैः— महादेवकूं सर्व पदार्थनमें सम बुद्धि है. द्वितीय पादका अन्वय यह हैः— सम विचारैं उत्तम अधम नहीं विचारैं.

चौपाई

सदावर्त ऐसो दे भारी,
कासी पुरी मरै नर नारी;
सो सायुज्य मुक्तिकूं जावै,
गर्भ वास संकट नहि पावै. ४३

सिव समान नर नारी ते सब,
लहत सु दिव्य भोग सगरे तब;
करत आप अद्वय उपदेसा,
तजत लिंग यूं ब्रह्म प्रवेसा. ४४

ऊंच नीच रंचहु नहि देषै,
मुक्ति सबनकूं दै इक लेषै;
सिव समान राजन को दाता?
भक्त अभक्त सबनको त्राताः ४५

विष्नु सुभाव सुन्यो हम ऐसो,

जगमैं जन प्राकृत ज्है तैसो;
त्राता भक्त अभक्त न त्राता,
यह प्रसिद्ध सब जगमैं नाता. ४६
हरि सेवक हर सेव्य बषान्यो,
रामचंद्र रामेस्वर मान्यो;
स्कंद पुरान व्यास बहु भाष्यो,
हरि सेवक हर सेव्यहि राष्यो. ४७
कह्यो जु भारत पद्म पुराना,
सब देवनतैं हरि अधिकाना;
भारत तातपर्य नहि देष्यो,
जो अप्पय दीछित बुध लेष्यो. ४८

टीका:- वैष्नवनै यह कह्या:- "भारतादिक ग्रंथनमैं; विष्नु सर्व देवनका पूज्य कह्या है," सो बनै नहीं. काहेतैं, भारत ग्रंथका तात्पर्य देषैतैं सिवकूंहीं ईस्वरता प्रतीत होवै है; यह अप्पय दीछित नाम विद्वाननैं, सकल पुरान इतिहासका तात्पर्य लिष्या है. तहां भारतमैं यह प्रसंग है:-अस्वत्थामानै नारायन अस्त्र औ अग्नेय अस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सैनाका तौ संहार बी हुवा, परंतु पंच पांडवोमैं कोई मन्या नहीं; तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद औ आचार्यकूं धिकार करता, बनकूं चल्या. तहां व्यास भगवान ताकूं मिले, औ यह कह्या:- "हे ब्राह्मन तूं आचार्य औ वेदकूं धिकार मति कहू, यह अर्जुन कृष्न दोनूं नर नारायनरूप हैं. इनूंने सिवका पूजन बहुत किया है. यातें इनकी भक्तिके अधीन हुवा

त्रिसूली महादेव, इनके रथकूं आगे रहे हैं. यातें इन दोनूंके उप-रि प्रयोग किये, अनेक सस्त्र अस्त्रनकी सामर्थकूं महादेव नास करि देवै है." इस भारत प्रसंगतें, नारायनरूप कृष्नकी विभूति, महादेवकी कृपातें उपजी है; यह सिद्ध होवै है. यातें विष्नु चरित्रके प्र-तिपादक जो ग्रंथ हैं, सो सिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन क-रै हैं. काहेतें, तिन ग्रंथनमें विष्नु सेव्य कह्या है. सो विष्नु भारत प्रसंगतें सिवका भक्त है. यातें जिस सिवकी भक्तितें विष्नु सेव्य होवै है; सो सिवही परम सेव्य है. इस रीतीसें अप्पयदीक्षितनें सकल वैष्नव ग्रंथनका प्रतिपाद्य सिव कह्या है.

चौपाई

सिव सबको प्रतिपाद्य बषान्यो,
भक्तनमैं उत्तम हरि गान्यो;
ईस देव पद सबमैं कहिये,
महत सहित इक सिवमैं लहिये. ४९

टीकाः— महादेव, महेस सिवकूं कहे हैं. औरनकूं देव ईस कहे हैं.

चौपाई

सिवतें भिन्न असिव जो कहिये,
तिहिं तजि सिव कल्यानहि लहिये;
जलसायी जिहि नाम बषान्यो,
सो जागे यह मिथ्या गान्यो. ५०

टीकाः— कल्यानकूं सिव कहे हैं. तातें भिन्न असिव है. ताका

यह अर्थ सिद्ध हुवा:- सिवतैं भिन्न और देवता असिव कहिये अकल्यानरूप है. तिन अकल्यानरूप देववानकूं त्यागिके कल्यान-रूप सिवकूं उपासै.

चौपाई

विष लष जब सबकूं उपज्यौ डर,
निर्भय किये सकल गर धारि गर;
जाको पूत गनेस कहावै,
विघ्न जाल तत्काल नसावै. ५१
कारजमैं कारन गुन होवै,
यूं सिव विघ्न मूलतैं षोवै;
जन्म मरन दुष विघ्न कहावै,
तिहिं समूल सिव ध्यान नसावै. ५२
सेवन योग्य सदा सिव एका,
जागे सहित समाधि विवेका;
तंत्र पासुपत रीति जु गावै,
त्यूं पूजन करि ध्यान लगावै. ५३
नारद पंचरात्र मत झूठो,
यह परिमल परसंग अनूठो;
यातैं सिव सेवा चित लावै,
पुरुषारथ जो चहै सु पावै. ५४

टीकाः— नारद पंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमैं षंडन किया है. ताके अनुसारी रामानुज आदिक नवीन वैष्नवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमैं षंडन किया है.

५०३

चौपाई

सिवको पूत गनेस बतायो,
कारन गुन कारजमैं गायो ;
सुनि गनेसको पूजक बोल्यो,
अस किय कोप सिंहासन डोल्यो. ५५
राजन सुन दोनू ये झूठे,
वचन सत्य सम कहत अनूठे ;
सिवको पूत गनेस बतावै,
पराधीनता तामैं गावै. ५६
कहूं प्रसंग सुनहु इक ऐसो,
लिष्यो व्यास भगवत मुनि जैसो ;
चढे त्रिपुर मारनकूं सारे,
हरि हर सहित देव अधिकारे. ५७
नहि गनेसको पूजन कीनो,
त्रिपुर न रंचहु तिनतैं छीनो,
पुनि पछिताय मनाय गनेसा,
त्रिपुर विनास्यो रह्यो न लेसा. ५८

भये समर्थ किये जिहि पूजा,
सेवन योग्य सु इक नहि दूजा ;
राम पूत दसरथको जैसै,
विघ्न हरन सिवको सुत तैसै. ५९
व्यास गनेस पुरान बनायो,
सबको हेतु गनेस बतायो ;
हरि हर विधि रवि सक्ति समेता,
तुंडीतैं उपजत सब तेता. ६०
करत ध्यान जिहि छन जन मनमैं,
नासत विघ्न प्रधान गननमैं ;
विघ्न हरन यूं जागत निस दिन,
भक्ति सहित सेवहु तिहि अनछन. ६१
५०४ हेतु गनेस सक्तिको सुनिकै,
भगत भागवत उच्चर्‌यो गुनिकै ;
सुन राजन बानी मम साची,
तीनूं सकल कहत ये काची. ६२
टीका:- भगत भागवत कहिये भगवतीको भगत.

चौपाई

सूने देव सक्ति बिन सारे,
मृतक देह सम लपि हत्यारे;

सक्ति हीन असमर्थ कहावै,
सो कैसे कारज उपजावै. ६३
जिन बहु सक्ति उपासन धारी,
तातैं भये सकल अधिकारी ;
हरि हर सूर गनेस प्रधाना,
तिनमैं सक्ति देषियत नाना. ६४
सक्ति लोकमैं भाषत जाकूं,
रूप भगवतीको लषि ताकूं;

टीका. भगवतीके दो रूप हैं:— एक सामान्य औ विशेष. सब पदार्थनमें अपना कार्य करनेकी जो सामर्थ्य रूप सक्ति, सो **भगवतीका सामान्यरूप** है. औ अष्ट भूजादिक सहित मूर्ति विसेषरूप है. **सामान्यरूप सक्तिके** संष्या रहित अनंत अंस हैं. जामैं सक्तिकेन्यून अंस होवै सो अल्पसक्ति होवे है; **असमर्थ** कहिये है. जामैं सक्तिके अधिक अंस होवैं, सो **समर्थ** कहिये है. विष्नु सिव आदिकनमैं सक्तिके अंस अधिक हैं, यातैं अधिक समर्थ कहिये है. इस रीतिसैं भगवतीका सामान्यरूप जो सक्ति, ताके अंसनकी अधिकतासैं, विष्नु, सिव, गनेस, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है. औ सक्तिसैं रहित होवै तौ, जैसे प्रान बिना सरीर अमंगल रूप होवै है, तैसै सारे देव हत्यारे कहिये अमंगल रूप होय जावैं. यातैं जिस सक्तिकी अधिकतासैं देवनकी महिमा प्रसिद्ध है, सो महिमा सक्तिका है; तिन देवनका नहीं. विष्नु सिव आदिकननै भगवतीके, सामान्य रूप सक्तिकी अधिक उपासना करी है; यातैं तिनमैं

सक्तिके अंस अधिक हैं. यह पूर्व ग्रंथमै भगवती भक्तका अभिप्राय है.

जैसै भगवतीके निराकार रूप सक्तिके अनंत अंस हैं, तैसै साकाररूपके बी अनंत अंस हैं. तिन साकार अंसनमैं कालीरूप प्रधान है. औ माहेस्वरी, वैष्नवी, सौरी, गनेसी, आदिक बी प्रधान अंस हैं. विष्नुकूं भगवातिकी उपासनतैं, वैष्नवी नाम भगवतीके अंसका लाभ. तैसै अन्य देवनकूं भगवतीके उपासनतैं, निज निज माहेस्वरी आदिक अंसनका लाभ हुवा है. तिनमैं बी भगवतीके विष्नु सिव दोनूं प्रधान भक्त हैं. काहेतैं, ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति **उपासनाकी परम अवधि** है. विष्नु सिवकूं उपासनासैं ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है; यातैं प्रधान उपासक हैं. यह अढाई चौपाईतैं प्रतिपादन करे हैं:—

चौपाई.

लाष करोरि मात्रिका गन पुनि,
तंत्र ग्रंथ लषि अंस सकल गुनि. ६५
काली ताकी अंस प्रधाना,
माहेस्वरी आदि लषि नाना ;
हरि हर ब्रह्म सकल तिहि ध्यावैं,
निज निज अंस कृपा तिहि पावैं. ६६
ध्येय रूप ध्याता ह्वै जबही,
सिद्ध उपासन लषियै तबही;
अस उपासना हरि अरु हरकी,

नारी मूर्त्ति धरी तजि नरकी. ६७

दोहा.

अमृत मथन परसंगमैं, हरि मोहिनी स्वरूप;
अर्द्ध अंग सिवको लसै, देवीरूप अनूप. ६८

टीका. मथन करिके अमृत प्रगट किया, तब सुर असुरका विवाद मेटनैमैं विष्णु असमर्थ हुवा; तब अपनै उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्र चित्तसैं ध्यान किया, जातैं आप विष्णु उपास्य रूपकूं प्राप्त हुवा. ता रूपके महात्मसैं असुर बी ताके अनूकूल हुये. तैसे, सिवनै बी समाधिमैं ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जातैं अर्द्ध विग्रह सिवका उपास्यरूप हुवा. कदाचित विछेतैं समाधिका अभाव होवै है; यातैं सारा विग्रह सिवका उपास्यरूप नहीं. इस रीतिसैं सारे देव भगवतीके उपासक हैं. सो उपासना दो रीतिसैं कहीहै:— दाछिन आम्नायतैं, और उत्तर आम्नायतैं. पूर्व दाछिन आम्नाय कह्या; आगै उत्तर आम्नाय कहे हैं:—

चौपाई

भक्त भगवतीके हर हरि हैं,
इन सम कौन उपासन करि हैं;
तदपि महा माया जो ध्यावै,
तुरत सकल पुरुषारथ पावै. ६९
नहि साधन जगमैं अस औरा,
उपजै भोग मोछ इक ठौरा;

भक्त भगवतीको जो जगमें,
भोगै भोग न आवत भगमें. ७०
सिवकृत तंत्र रीति यह गाई,
भक्ति भगवती अति सुषदाई ;
पंच मकार न तजिये कबहू,
जिनहि सनातन सेवत सबहू. ७१
कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी,
प्रथमा पिवत सदा ज्यूं पानी ;
और प्रधान पुरातन जेते,
सेवत सकल मकारहि तेते. ७२
तिन सेवनकी जो विधि सारी,
सिव निज मुष भाषी उपकारी ;
सिवको वचन धरै जो मनमें,
लहै सु भोग मोछ इक तनमें. ७३
ग्रंथ भागवत व्यास बनायो,
उपपुरान काली समझायो ;
भक्ति भगवतीकी इक गाई,
पूजा विधि सगरी समुझाई: ७४
ध्याता सकल भगवतीके हैं,

हरि हर सूर गनेस जिते हैं;
सकल पिये प्रथमा मतिवारे,
पूजत सक्ति मग्न मन सारे. ७५
जग जननी जागै इक देवी,
परमानंद लहै तिहि सेवी ;
५०५ सूर्यभक्त भगवतीको यस सुनि,
क्रोध सहित बोल्यो इक मुनि पुनि. ७६
सुन राजन वानी इक मोरी,
भाषू झूठ न सपथ करोरी ;
अति पापिष्ट नीच मत याको,
श्रवन सनेह सुन्यो तैं जाको, ७७
औगुन जिते बषानत जगमैं,
ते गिनयत गुन गन या मगमैं ;
मद्य मलीनहि तीरथ राषत,
सुद्ध नाम आमिषको आषत. ७८
कहत और यूं सब विपरीता,
संभु तंत्र सेवी मति रीता ;
दछिन संप्रदाय जो दूजी,
यद्यपि श्रेष्ठ अनेक न पूजी. ७९

तथापि बिन भानू सब अंधे,
इन सबके मन जिनमैं बंधे ;
करत भानु सगरो उजियारो,
ता बिन होत तुरत अंधियारो. ८०
और प्रकासक जगमैं जे हैं,
अंस सबै सूरजके ते हैं ;
भानु समान कौन हितकारी,
भ्रमत आप पर हित मति धारी. ८१
काल अधीन होत सब कारज,
ताहि त्रिविध भाषत आचारज ;
वर्त्तमान भावी अरु भूता,
सूरज क्रिया करत यह सूता. ८२
या विधि सकल भानुतैं उपजै,
भस्म होत सब जब वह कुपिजै ;
भानु रूप है भांति पिछानहु,
निराकार साकारहि जानहु. ८३
निराकार परकास जु कहिये,
नाम रूपमैं व्यापक लहिये;
अधिष्ठान सबको सो एका,

जग विवर्त व्है जिहि अविवेका. ८४
अहं भानु अस वृत्ति उदे जब,
तामैं प्रगटि विनासत तम सब. ८५

टीका. सूर्यके दो रूप हैं:– निराकार प्रकास औ साकार प्रकास. तिन दोनूंमैं निराकार प्रकास सारे नामरूपमैं व्यापक है. जाकूं वेदांती भाति सब्द करिके व्यवहार करै हैं. सो निराकार प्रकास रूप जो सूर्यका सामान्यरूप है, सो सारे जगतका अधिष्ठान है. ताकै अज्ञानतैं जगतरूपी विवर्त उपजै है. सोई निराकार प्रकास अंत:करनकी वृत्तिमैं, प्रतिबिंब सहित ज्ञान कहिये है. "अहं भानु" ऐसी अंत:करनकी वृत्ति प्रकासके प्रतिबिंब सहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा जगतकी निवृत्ति होवै है.

चौपाई.

सुनि साकार रूप यह ताको,
होय चांदिना दिनमैं जाको;
ताके अंस और बहुतेरे,
चंद तारका दीप घनेरे. ८६
यातैं द्वै विध भानु बतायो,
ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो ;
वेद सकल याहीकूं भाषत,
रूप प्रकास सत्य तिहिं आपत. ८७

टीका. निराकार साकार भेदतैं भानके दो रूप हैं. तिनमैं नि-

राकार रूप ज्ञेय है. साकार रूप ध्येय है. याहीकूं वेदांतनमें निर्गुन सगुन भेदतें, दो प्रकारका ब्रह्म कहै है.

चौपाई.

जामें लेस न तमको कबही,
लषि तिहि जग जन जागत सबही. ८८
कबहु न सोवै सो यूं जागै,
ध्यान करत ताको तम भागै;
औरहि जागत भाषत सगरे,
राजन जानि झूठ ते झगरे. ८९
५०६ ऐसे पांच उपासक बोले,
निज गुन औगुन परके षोले;
पंडित और अनेक जु आये,
भिन्न भिन्न निज मत समझाये. ९०

टीका. जैसै पांच उपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोले, तैसें अनेक पंडित निज निज बुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोले. जैसै इन पांचूका परस्पर विरुद्ध मत है, तैसै स्मार्त जो पंडित, पांचु देवनमें भेद बुद्धि करै नहीं, ताका मत बी इन सबवें विरुद्ध है. काहेतें, **वैष्नवका यह मत है:—** विष्नु समान और देव नहीं; सारे विष्नुके भक्त हैं. और विष्नुके जो **रामकृष्ण, नारायन** आदिक नाम हैं, तिनकै समान जो अन्य देवनके नामकूं जानै, सो नामापराधी है. ताकूं रामादिक नाम उचारनका यथार्थ फल होवै नहीं. तैसै **सैव मतमें,** सिव समान अन्य देव नहीं; औ सिवके नाम उ-

चारनका फल विष्नु नाम उचारनतैं होनै नहीं. इस रीतिसैं सर्वके मतमैं अपने अपने, उपास्य देवके समान अन्य देव नहीं. औ **स्मार्त मतमैं** सारे देव सम हैं. यातैं ताका मत बी पांचूवातैं विरुद्ध है. तैसै,

५०७ सांप्य, पातंजल, न्याय, वैसेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, इन **षट सास्त्रनका मत** बी परस्पर विरुद्ध हैं. काहेतैं, **सांप्य सास्त्रमैं** ईस्वरका अंगीकार नहीं. योगमैं निरपेक्ष प्रकृति पुरूषके विवेक ज्ञानतैं मोक्ष मानी है. औ **पातंजल सास्त्रमैं** ईस्वरका अंगीकार, समाधितैं मोक्ष मानी है; यह विरोध है. **न्याय मतमें** च्यार प्रमान, औ **वैसेषिक मतमैं** दोय प्रमान, यह विरोध है. तैसैं न्याय वैसेषिकका और बी आपसमैं बहुत विरोध है, जिज्ञासूकू अपेक्षित नहीं; यातैं लिष्या नहीं. तैसै **पूर्व मीमांसामैं ईस्वरका** अंगीकार नहीं; मोक्षरूप नित्य सुषका अंगीकार नहीं. किंतु कर्मजन्य विषय सुषही पुरूषार्थ है. और **उत्तर मीमांसामैं**, ईस्वरका, मोक्षका अंगीकार; विषय सुष पुरूषार्थ नहीं. और **उत्तर मीमांसाका मत** या ग्रंथमैं स्पष्टही है, सर्व सास्त्रनका मत यातैं विरुद्ध है. औरनमैं भेद वाद है; यामैं भेदका षंडन औ अभेदनका प्रतिपादन है. इस रीतिसैं सकल सास्त्रनके सिद्धांत परस्पर विरुद्ध हैं.

५०८ **चौपाई.**

वचन विरुद्ध सुने जब राजा,
यह संसे उपज्यो तिहि ताजा;
इनमैं कौन सत्य बुध भाषत,

युक्ति प्रमान सकल स्म आषत. ९१
संसै सोक दुषित यूं जियमैं,
को उपास्य यह लष्यो न हियमैं;
चिंता हृदय हूई यह जाकूं,
निज संदेह सुनाउं काकूं. ९२
सास्त्र निपुन पंडित जग जेते,
सुने विरुद्ध बकत यह तेते;
यूं चिंतत बहु काल भयो जब,
तर्कदृष्टि तिहि आय मिल्यो तब. ९३

दोहा.

मिले परस्पर ते उभै, पुत्र पिता जिहि रीति;
करि प्रनाम आसिष दुहूं, आसन लहे सप्रीति. ९४
५०९ निज पितु चिंता सहित लषि, सुत बोल्यो यह बात;
को चिंता चित रावरे, मुष प्रसन्न नहि तात. ९५

चौपाई

सुभसंतति सुतकी सुनि बानी,
तिहिं भाषी निज सकल कहानी;
चित चिंताको हेतु सुनायो,
को उपास्य यह तत्व न पायो. ९६

तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना,
बोल्यो सुभसंतति सुप दैना;
कारन रूप उपास्य पिछानहु,
ताके नाम अनंतहि जानहु. ९७
कारज रूप तुछ लषि तजिये,
यह सिद्धांत वेदको भजिये;
रचे व्यास इतिहास पुराना,
तिनमैं यही मतो नहि नाना. ९८
मनमैं मर्म न लषत जु पंडित,
करत परस्पर मत ते षंडित;
नीलकंठ पंडित बुध नीको,
कियो ग्रंथ भारतको टीको. ९९
तिन यह प्रथमहि लिष्यो प्रसंगा,
श्रुति सिद्धांत कह्यो जो चंगा, १००

९१० टीका. यद्यपि सकल पुरानका कर्ता एक व्यास है; ताने स्कंद पुरानमैं सिवकूं स्वतंत्रतादिक ईस्वर धर्म कहे; औ अन्य देवनकूं सिव कृपातैं, सारी बिभूतिकी प्राप्ति कही; यातैं जीव धर्म कहे. तैसे विष्नु पुरान, पद्म पुरानमें विष्नुकूं ईस्वरता कही. तैसे किसीकूं पुरानमैं, किसीकूं उपपुरानमैं, विष्नु सिवतैं भिन्न जो गनेसादिक हैं, तिनकूं ईस्वतरा कही. इस रीतिसैं व्यास वाक्यनमैं बिरोध प्रतीत होवै है. ताका,

यह समाधान करे हैं:— सारेही ईश्वर है. जा प्रकरनमैं अन्य देवकी निंदा है ताकी निंदा करिकै, तिसकी उपासना त्यागमैं, व्यासका अभिप्राय नहीं; किंतु वैष्नव पुरानमैं सिवादिकनकी निंदा, विष्नुकी स्तुति करिकै, विष्नुकी उपासनामैं प्रवृत्तिकी हेतु है. तैसै सिव पुरानमैं विष्नु आदिकनकी निंदा बी, तिनकी उपासनाके त्याग अर्थ नहीं; किंतु तिनकी निंदा, सिवकी उपासनामैं प्रवृत्तिके अर्थ है. जो एक प्रकरनमैं अन्यकी निंदा त्याग वास्ते होवै, तौ सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा. यातैं **अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है, त्याग अर्थ नहीं.**

दृष्टांत. वेदमैं अग्नि होत्रके दो काल कहे हैं. एक तो सूर्य उदयसैं प्रथम, औ दूसरा सूर्य उदयतैं अनंतर काल कह्या है. तहां उदय कालके प्रसंगमैं, अनुदय कालकी निंदा करी है; औ अनुदय कालके प्रसंगमैं, उदय कालकी निंदा करी है. तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमैं होवै तौ, दोनूं कालमैं होमका त्याग होवैगा. औ नित्य कर्मका त्याग संभवै नहीं; यातैं उदय कालकी स्तुति वास्तै, अनुदय कालकी निंदा है. औ अनुदय कालकी स्तुति वास्तै, उदय कालकी निंदा है. तैसै एक देवकी उपासनाके प्रसंगमैं अन्यकी निंदाका, एककी स्तुतिमैं तात्पर्य है; अन्यकी निंदामैं तात्पर्य नहीं. जैसै साषा भेदतैं, कोई उदय कालमैं होम करै है, कोई अनुदय कालमैं करै है; फल दोनूंकूं समान होवै है. तैसै,

५११ इच्छा भेदतैं पांचू देवनमैं जाकी उपासना करै, तिन सबतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां भोग भोगिकै विदेह मोक्ष होवै है. **यद्यपि** विष्नु आदिकनकी उपासनातैं, वैकुंठ लोकादिकनकी प्राप्ति पुरानमैं कही है; ब्रह्मलोककी नहीं. **तथापि** उत्तम उपासक विदेह मुक्तिके अधिकारी **देवयान मार्गतैं सारे ब्रह्म**

लोककूंही जावै है. परंतु एकही ब्रह्मलोक वैष्नव उपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवे है; औ लोकवासी सारे तिसकूं, चतुर्भुज पार्षद रूप प्रतीत होवे है; औ आप बी चतुर्भुज मूर्ति होवे है. तैसें सैव उपासककूं ब्रह्मलोकही, सिवलोक प्रतीत होवे है; तिस लोक वासी सारे त्रिनेत्र मूर्ति अपने सहित प्रतीत होवे हैं. इस रीतिसें **सर्व उपासककूं ब्रह्मलोकही अपने उपास्यका लोक प्रतीत होवै है.** काहेतें **यह नियम है:**— देवयान मार्ग विना अन्यमार्गतें जो जावे हैं, तिनका संसारमें आगमन होवे है; औ देवयान मार्ग एक ब्रह्मलोकका है; यातें विदेह मोक्षके योग्य उपासक, सारे ब्रह्मलोककूं जावे हैं. तिस ब्रह्मलोकमें ऐसी अदभुत महिमा है:— उपासककी इच्छाके अनुसार सारी सामग्री सहित, वह ब्रह्मलोकही तिनकूं प्रतीत होवे है. इस रीतिसें पांचूदेवनके उपासकनकूं, सम फल होवे है. याकै विषै,

९१२ **यह संका होवै है:**— पांचू देवनके नाम रूप भिन्न भिन्न कहे हैं, और ईस्वर एक है; एक ईस्वरके नानारूप संभवै नहीं. ताका **यह समाधान है:**— परमार्थसें नामरूप कोई परमात्मामें है नहीं. मंदबुद्धिकूं उपासना वासतें, नामरूप रहित परमात्माके, मायाकृत कल्पित नामरूप कहे हैं. यातें एक परमात्मामें मायाकृत कल्पित नाम रूप नाना संभवै हैं. इस रीतिसें सर्व पुरान वाक्यनका विरोध दूरि होवे है. औ

९१३ **पुरान वाक्यनमें विरोध संकाका मुख्य समाधान तो यह है.** बिष्नु, सिव, गनेस, देवी, सूर्य, इसतें आदिलेकै, जितनें एक एकके नाम हैं; सो सारे कारनब्रह्मके नाम हैं. औ कार्य ब्रह्मके बी सो सारे नाम हैं. जैसे माया विसिष्ट कारनकूं ब्रह्म कहै है; औ हिरन्यगर्भ कार्य है, ताकूं बी ब्रह्म कहै है. इस रीतिसें

कारनब्रह्मकूं, विष्नु, सिव, गनेस, देवी, सूर्य पद बोधन करै है. औ कार्यब्रह्मकूं बी पांचू पद बोधन करै हैं. ऐसैं पांचू पदनके जो नारायन, नीलकंठ, विघ्नेस, सक्ति, भानु, इत्यादिक अनंत पर्याय हैं; सो सारे कारनब्रह्म औ कार्यब्रह्म दोनुवांकूं बोधन करै हैं. कहुं कारन ब्रह्मकूं, कहुं कार्यब्रह्मकूं प्रसंगतैं बोधन करै हैं. जैसै सैंधव पद, अस्व, लवन दोनूंवांकूं बोधन करै है. भोजन प्रसंगमैं सैंधव पद लवनकूं बोधन करै है; औ गमन प्रसंगमैं सैंधव पद अस्वकूं बोधन करै है. वैष्नव पुरानमैं विष्नु नारायनादिक पद, कारनब्रह्मके बोधक हैं. सिव, गनेस, सूर्यादिक पद, कार्य ब्रह्मके बोधक हैं. यातैं,

५१४ वैष्नव ग्रंथनमैं विष्नुकी स्तुति, औ सिवादिकनकी निंदातै व्यासका यह अभिप्राय है:— कारनब्रह्म उपास्य है; औ कार्यब्रह्म उपास्य नहीं. तैसै स्कंद पुरानादिक सैव ग्रंथनमैं, सिव महेसादिक पद कारन ब्रह्मके बोधक हैं. औ विष्नु गनेस देवी सूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं. यातैं तिनमैं बी कारनब्रह्मकी स्तुति औ कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसैं गनेस पुरानमैं गनेस पद, कारनब्रह्मका वाचक, औ विष्नु सिवादिक पद कार्य ब्रह्मके वाचक हैं. यातै **कारनकी स्तुति, कार्यकी निंदा है.** तैसै काली पुरानमैं काली, देवी, आदिक पद, कारनब्रह्मके बोधक; औ विष्नु सिव गनेस सूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक; यातै काली पद बोध्य, कारनकी स्तुति, औ विष्नु सिवादिक पद बोध्य कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसै सौर पुरानमैं, सूर्य भानु पद बोध्य कारनब्रह्म है; ताकी स्तुति, औ अन्य पद बोध्य, कार्यकी निंदा है. इस रीतिसैं सकल पुराननमैं, कार्य कारनकी संज्ञा रूप संकेतका तौ भेद है; उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं. सकल पुराननमैं, कारन

ब्रह्मकी उपासना उपादेय है; औ कार्यकी उपासना हेय है. यातैं सारे पुरान एक कारनब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करै हैं. तिनका आपसमैं विरोध नहीं.

५१५ यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुंड, अष्ट भुजादिक मूर्ति मायाके परिनाम हैं; औ चेतनके विवर्त हैं; यातैं कार्य हैं; औ तिनकी बी उपासना कही है. तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो माया विसिष्ट कारन है, तासैं विचार कियेतैं भेद नहीं. यातैं तिन आकारनकूं बाधिकै, कारनरूपतैं तिनकी उपासनामैं तात्पर्य है. काहेतैं आकार कार्य है; यातैं तुच्छ है; औ कारन सत्य है. औ जाकी मंद प्रज्ञा आकारमैंही स्थित होवै, सो सास्त्र उक्त आकारकीही उपासना करै; तासैं बी प्रज्ञा निश्चल होयकै, कारन ब्रह्मकी उपासनामैं स्थिति होवै है.

५१६ कारनब्रह्मकी उपासना इस रीतिसैं कही है:—ब्रह्म जगतका कारन है; सत्य काम है, सत्य संकल्प है, सर्वज्ञ है, स्वतंत्र है, सर्वका प्रेरक है, कृपालू है; ऐसै ईस्वरके धर्मनकूं चिंतन करै. मूर्ति चिंतनमैं सास्त्रका तात्पर्य नहीं. और अनेक मूर्ति जो सास्त्रमैं लिखि हैं; सो उपासनाके निमित्त नहीं; किंतु सारी मूर्ति कारनब्रह्मकी उपलच्छन है. जो वस्तु जाकै एक देसमैं होवै, औ कदाचित होवै औ व्यावर्तक होवै, सो उपलच्छन कहिये है. जैसै "काकवाला देवदत्तका ग्रह है." या वाक्यमैं देवदत्तकै ग्रहका काक उपलच्छन है. काहेतैं ग्रहकै एक देसमैं काक होवै है; औ कदाचित होवै है, सर्वदा नहीं. औ अन्य ग्रहतैं देवदत्तके ग्रहका व्यावर्तक है. तैसैं जगतका कारन ब्रह्म है, ताकै एक देसमैं मूर्ति होवै है, औ कदाचित होवै है. औ चतुर्भुजादिक मूर्ति कारन ब्रह्म विषैही होवै हैं; अन्यमैं नहीं. यातैं व्यावर्तक होनैतैं,

उपलछन है. उपलछनका यह प्रयोजन होवे है:— विसेष्य वस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवे. जैसें काकतें देवदत्तके ग्रहका ज्ञान होवे, अन्य प्रयोजन काकतै नहीं. तैसे चतुर्भुजादिक आकारनतैं, निराकार कारनब्रह्मका ज्ञानही, उपासनाके निमित्त मूर्ति प्रतिपादनका प्रयोजन है; अन्य नहीं. औ

९१७ मंद प्रज्ञावाले सास्त्र अभिप्रायकूं समझे विना, तिन आकारनमें आग्रह करे हैं. और **स्याल सारमेय न्यायतें** परस्पर कलह करे हैं. स्त्रीके भाईकूं **स्याल** कहे हैं; कुक्कुरकूं **सारमेय** कहे हैं. दृष्टांतकूं **न्याय** कहे हैं. किसीके सालेका नाम उत्फालक था, और सालेके सत्रुका नाम धावक था. तिस पुरुषके ग्रहके कुक्कुरका नाम धावक, औ दूसरे ग्रहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था. तहां तिस पुरुषकी स्त्री ग्रह विषे प्रथम आई, तब दोनूं कुक्कुर आपसमें हमेस लडै, तहां स्त्रीका पति सुसर आदिक उत्फालककूं गालि देवैं, औ अपने धावककी बडाई करैं. तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुई, मेरे भाईकूं गालि देवे हैं; ताके सत्रुकी बडाई करै हैं. तासें दूषित होयके भर्तासें क्लेस करती हुई. जैसें तिनके अभिप्राय जाने बिना, समान संज्ञातें भ्रम करिकै स्त्रीने क्लेस किया; तैसें वैष्नव ग्रंथनमें सिवादिक नामतें कार्यब्रह्मकी निंदा करी है; इस अभिप्रायकूं नहीं जानिकै सैवादिक दुःषित होवे हैं. और विष्नु नामतें कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिकै, वैष्नव दुःषित होवे है. और **सकल पुराननका यह अभिप्राय है:**—कारन ब्रह्म उपास्य है; कार्यब्रह्म त्याज्य है. माया विसिष्ट चेतन **कारनब्रह्म** कहिये है. माया कृत कार्य विसिष्ट चेतन **कार्यब्रह्म** कहिये है. यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमें लिख्या है. और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है.

५१८

चौपाई

सुभ संतति सुनि सुतके वैना,
उपज्यो जियमैं किंचित चैना;
पुनि तिन प्रस्न कियो निज पूतहि,
सास्त्र परस्पर कहत असूतहि. १०१

टीका. पुरानमैं विरोध संकाकी नासतैं, **चैन** कहिये सुष हुया. और षट् सास्त्रनकी परस्पर विरोध संका मिटि नहीं, यातैं किंचि-त चैन हुवा, सर्वथा नहीं. **असूत** कहिये विरुद्ध कहै है.

चौपाई

तिनमैं सत्य कौन सो कहिये,
जाको अर्थ बुद्धिमैं लहिये. १०२

५१९ तर्कदृष्टि सुनि निज पितु बानी,
बोल्यो वचन सु परम प्रमानी;
उत्तर मीमांसा उपदेसा,
वेद विरुद्ध न जामैं लेसा .१०३
सास्त्र पंच ते वेद विरुद्धं,
यातैं जानिहु तिनहि असुद्धं;
किंचित अंस वेद अनुसारी,
लषि बहु ग्रहत मंद अधिकारी. १०४

टीका. यद्यपि षट सास्त्रनके कर्ता, सर्वज्ञ कहै है. सांख्यका

कर्ता कपिल, पातंजलका कर्ता पतंजलि सेषका अवतार, न्याय- का कर्ता गौतम, वैसेषिक सास्त्रका कर्ता कणाद, पूर्वमीमांसा- का कर्ता जैमिनि, उतर मीमांसाका कर्ता व्यास. इन सबका माहात्म्य प्रसिद्ध है. यातैं इनके वचनरूप सास्त्र बी सारे समान प्रमान चाहिये; तथापि सर्व वाक्यनमैं प्रबल प्रमान, वेद वाक्य है. काहेतैं वेदका कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर है. ताकै विषै भ्रम संदेह, विप्रलिप्सा दोष संभवै नहीं. इन सास्त्रनके कर्ता जीव हैं; तिन विषै भ्रम आ- दिक दोषनका संभव है. यद्यपि सास्त्रकार बी सर्वज्ञ कहे हैं; तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योग माहात्म्यसैं हुई है; यातैं युंजानयो- गी हुये हैं. औ ईस्वरकूं सर्वज्ञता स्वभाव सिद्ध है, यातैं युक्त योगी है. जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय, सो युंजान योगी कहिये है. जाकूं सर्वदा एक रस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवै, सो युक्त योगी कहिये है; ऐसा ईस्वर है. युक्त योगी कृत वेद वचन प्रबल, औ युंजान योगी कृत सास्त्र वचन दुर्बल. यातैं,

९२० वेद अनुसारी सास्त्र प्रमान, औ वेद विरुद्ध अप्रमान. पांच सास्त्र जैसैं वेद विरुद्ध हैं, तैसैं सारीरक आदिक ग्रंथनमैं स्पष्ट है. औ उत्तर मीमांसा किसी अंसमैं वेद विरुद्ध नहीं; यातैं प्रमान है. और सास्त्र बी किसी अंसमैं वेदकै अनुसारी देषिकै, मंद बुद्धि तिनमैं विश्वास करै हैं; परंतु बहुत अंसमैं वेद विरुद्ध है; यातैं त्याज्य हैं. किसी अंसमैं वेद अनुसारी होनेतैं, उपादेय होवैं, तौ जैन सास्त्र बी अहिंसा अंसमैं वेद अनुसारी है; उपादेय हुआ चाहिये; और त्याज्य है; उपादेय नहीं. यद्यपि सुगत ईस्वर- का अवतार है, जाकूं बुद्ध कहै हैं; ताके वचन बी वेद समान प्रमान चाहिये. तथापि बुद्ध विप्रलिप्सा निमित्ततैं हुया है; यातैं ताके वचन सर्वथा अप्रमान हैं. वंचनकी इच्छाकूं विप्रलिप्सा कहै

हैं, ताकूं बहकावनेकी इच्छा करै है. यातैं सर्व अंसमैं वेद अनुसारि, उत्तर मीमांसाही सर्वथा मुमुछुकूं उपादेय है. यद्यपि उत्तर मीमांसा व्यास कृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यान बी अनेक पुरुषोने नाना रीतिसैं किया है. तथापि पूज्य चरन संकर कृत व्याख्यानही वेदानुसारी है; और नहीं; यह पंचम तरंगमैं प्रतिपादन करी है. यातैं और पंचसास्त्र अप्रमान. और

९२१ जो इस तरंगमैं पूर्व सारे सास्त्र मोछ उपयोगी कहे, सो तर्क दृष्टिकै सारग्राही विवेकतैं कहे. जैसे किसीका सत्रु तरवारि मारै, तासैं रुधिर निकसिकै, दैव गतिसैं रोग निवृत्त होय जावै; तब सार ग्राही पुरुष तरवारी मारनेका उपकार मानि लेवै; तैसै अन्य सास्त्रनसैं बी किसी रीतिसैं अंत:करनकी सुद्धि, वा निश्चलता हुयेतैं पुरुष निवृत्त होयकै, वेद अनुसार निश्चय करै तौ मोछ होवै है. सर्वथा तिनहीमैं आग्रह करै तौ, अंध गोलांगूल न्यायतैं अनर्थकूं प्राप्त होवै है. यातैं सकल सास्त्र त्यागिकै अद्वैत व्याख्यान रीतिसैं उत्तर मीमांसा उपादेय है.

९२२ **अंध गोलागुल न्याय यह है:**–किसी धनीकै भूषन युक्त पुत्रकूं चोर ले गये. वनमैं भूषन ले ताकै नेत्र फोडिके छोडि गये. तब ता रुदन करते बालककूं, कोई निर्दय वंचक बलु उन्मत बली बर्दकी लांगूल पकडाय देवै; और यह कहै:– तूं इसका लांगूल मति छोडियो, तेरे ग्राममैं यह पहुचाय देवैगा. सो दुषी बालक ताकै बचनमैं विश्वास करिकै, दु:ष अनुभव करिकै नष्ट होवै है. तैसैं विषयरूप चोर विवेकरूप नेत्रकूं, फोडिके संसार वनमैं गेरै है. तहां भेदवादी निर्दय वंचक, अन्य सास्त्रनकै सिद्धांतमैं आग्रह करवावै हैं; यह कहै हैं:– हमारा उपदेसही तेरेकूं परम सुष प्राप्तिका हेतु होवैगा; ताकूं छोडियो मति. तिनके

वाक्यनमैं विश्वास करिकै पुरुषार्थ सुष रहित होवै है; औ जन्म मरन रूप महा दुषकूं अनुभव करै है. यातैं अन्य सास्त्र त्याज्य है.

५२३ **दोहा.**

तर्कद्दष्टिके बचन सुनि, सुभसंतति तिहि तात;
संसै सोक नस्यो सकल, लह्यो हिये कुसलात. १०५
कारन ब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय;
तर्कद्दष्टि निज लषि गुरु, राज समाज चढाय. १०६

टीका.— यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था तथापि उपदेस उत्तम कन्या, यातैं गुरु पदवीकूं प्राप्त हुवा, यह ब्रह्मविद्याका महात्म्य है.

५२४ **दोहा.**

कछू वदीत्यों काल तब, तजि राजा निज प्रान;
ब्रह्म लोकमैं सो गयो, मुनि जह जात सध्यान. १०७

टीका.— राजाके मरनका देसकाल कह्या नहीं, ताका यह अभिप्राय है:— उपासकके मरनमैं देस कालकी अपेछा नहीं; दिनमैं मरे अथवा रात्रिमैं, दछिनायनमैं अथवा उत्तरायनमैं, पवित्र भूमिमैं अथवा अपवित्रमैं, सर्वथा उपासनाकै बलतैं देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. और अद्दष्टिकै प्रसंगमैं जो पूर्व देस कालकी अपेछा कही, सो योग सहित उपासककूं कही है. केवल ईस्वर सरन उपासककूं देस कालकी अपेछा नहीं, यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारनै प्रतिपादन किया है.

५२५ **दोहा.**

राज काज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुसियार;
लग्यो न रंचक रंग तिहि, लह्यो ब्रह्म निर्धार. १०८
अंत भयो प्रारब्धको, पायो निश्चल गेह;
आतम परमातम मिल्यो, देह पेहमैं छेह. १०९

टीका.– देहका **पेह** कहिये रापमैं, **छेह** कहिये अंत, **आत्मा** कहिये कूटस्थ साक्षी, ताका परमात्मासैं अभेद.

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासैं सदा अभेद है; तथापि उपाधिकृत भेद है. उपाधिके लयतैं उपाधिकृत भेदका अभाव होवै है. परमात्मासैं अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:– **विदेह मुक्तिमैं ईश्वरतैं अभेद होवै है, सुद्ध चेतन ब्रह्मसैं नहीं.** यह वार्ता सारीरकभाष्यके चतुर्थ अध्यायमैं प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग है:– विदेह मुक्तिमैं सत्य संकल्पादिक रूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतसैं कही है. औ डलोमिके मतमैं सत्य संकल्पादिकनका अभाव कह्या है. औ **सिद्धांत मतमैं** सत्य संकल्पादिकनका भाव अभाव दोनूं कहे हैं. ताका यह अभिप्राय है:– ईस्वरतैं अभेद होवै है. ईस्वरके सत्य संकल्पादिक, मुक्तमैं, अन्य जीवौं करी व्यवहार करिये हैं. सो ईस्वर परमार्थ दृष्टिसैं सुद्ध है. ताकै विषै कोई गुन है नहीं, किंतु निर्गुन है. यातैं सत्य संकल्पादिकनका अभाव है. **यद्यपि** संसार दसाविषै बी जीव परमार्थसैं निर्गुन है, सुद्ध है; **तथापि** जीवकूं संसार दसामैं, अविद्यासैं कर्तापना भोक्तापना प्रतीत होवै है. ईस्वरकूं कदे बी आत्मामैं अथवा अन्यमैं संसार प्रतीत होवै नहीं. यातैं सदा असं-

ग निर्गुन सुद्ध है. यातैं ईस्वरतैं जो अभेद है, सोई सुद्धसैं अभेद है. औ ईस्वरतैं अभेदकूं शुद्ध ब्रह्मसैं अभेद नहीं मानैं, तौ ईस्वरकूं सुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति कदे बी होवै नहीं. काहेतैं, जीवकी नांई ईस्वरकूं उपदेस जन्य ज्ञान, औ विदेह मोछ तौ कदे होवै नहीं. सदा प्राप्त जो ताका रूप सो सुद्ध नहीं; यातैं, जीवतैं बी न्यून ईस्वर सदा बद्ध है, यह सिद्ध होवैगा. यातैं यह मानना योग्य है:— ईस्वरकूं आवर्न नहीं; यातैं उपदेस ज्ञानकी अपेछा नहीं. आवर्नकै अभावतैं भ्रांति नहीं; यातैं नित्य सर्वज्ञ है; नित्य मुक्त है. माया औ ताका कार्य आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं; यातै सदा असंग है; याहीतैं सुद्ध है. इस रीतिसैं ईस्वरतैं अभेदही सुद्ध चेतनसैं अभेद है. औ दृष्टांतसैं बी ईस्वरतैंही अभेद सिद्ध होवै है. जैसैं मठमैं घटका अभाव होवै, तौ मठाकासमैं घटाकासका लय होवै है; महाकासमैं नहीं. तैसैं विद्वानका सरीर ईस्वरकृत ब्रह्मांडमैं नष्ट होवै है, औ ब्रह्मांड सारा, ईस्वर सरीर मायाकै अंतर्भूत है. विद्वानका आत्मा विदेह मोछमैं ब्रह्मांडके बाहरि गमन करै नहीं; यातैं ईस्वरतैं अभेद होवै है. परंतु जैसैं मठाकाससैं घटाकासका अभेद हुवा, सो मठाकास महाकासरूपही है. तैसैं ईस्वरतैं अभेद होवै है, सो ईस्वर सुद्ध ब्रह्मही है; यातैं सुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है.

५२६ **दोहा.**

यह विचार सागर कियो, जामैं रत्न अनेक;
गोप्य वेद सिद्धांततैं, प्रगट लहत सविवेक. ११०
सांष्य न्यायमै श्रम कियो, पढि व्याकरन असेष;

पढै ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकहु सेष. १११
कठिन जु और निबंध है, जिनमैं मतके भेद;
श्रमतैं अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद. ११२
तिन यह भाषा ग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज;
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म सिर ताज. ११३
बिन व्याकरन न पढि सकै, ग्रंथ संसकृत मंद;
पढै याहि अनयासही, लहैं सु परमानंद. ११४
५२७ दिल्लितैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम;
तामैं यह पुरो भयो, किहडौलो तिहि नाम. ११५
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं, जासौं होय अभेद;
दादु आदु रूप सौ, जाहि बषानत वेद. ११६
नाम रूप व्यभिचारिमैं, अनुगत एक अनूप;
दादू पदको लछ्य है, आस्ति भाति प्रियरूप. ११७
इति श्री विचार सागरे जीवनमुक्ति विदेहमुक्ति बर्ननं नाम सप्तमस्तरंग:

समाप्त: ७

समाप्तो ऽयं विचार सागरो ग्रंथ:

विचार सागरकी

पदार्थ दर्सक अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ऋ

ए

ओ

क

घ

च

छ

ज

ढ

त

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

स